हिन्दू कोड बिल

तथा

उसका उद्देश्य

भारत सरकार के कानून मन्त्रि विभाग के लिये
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, मिनिस्ट्री आफ़ इन्फार्मेशन
ऐण्ड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया
ओल्ड सेक्रेटैरियट, दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

मूल्य चार आने



यूनाइटेड प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

भारतीय राज्यव्यवस्थापिका में पास होने के लिए पेश किये हिन्दू कोड बिल पर जनता में जितना प्रचंड विवाद उत्पन्न हो चुका है, आधुनिक भारत के इतिहास में समाज-सुधार-सम्बन्धी किसी भी विषय पर इससे पहले शायद ही कभी ऐसा हुआ होगा। इस बिल के विरोधी आलोचक बिना किसी संकोच के बिल के प्रणेता, डाक्टर बी० आर० अम्बेडकर को धर्मशास्त्रों में भयानक हस्तक्षेप करने वाला अपराधी ठहराते हैं, जबकि दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने कि इस बिल का उत्साहपूर्वक स्वागत किया है और इसके प्रणेता को आधुनिक कालीन मनु के नाम से सत्कृत किया है। इन पक्षों के अलावा यहां ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो हिन्दू समाज के स्वरूप में प्रस्तुत बिल द्वारा चाहे गये सुधारों तथा संशोधनों में और भी अधिक प्रगति की गई होती तो उसे कहीं अधिक पसंद करते।

ऊपर कही विचार-धारा के अनुगामी दलों में हिन्दू जाति का एक ऐसा बहुसंख्यक पक्ष भी विद्यमान है जो कि किसी विचार-धारा को अपनाने के लिए अभी तक दुविधा में पड़ा दिखाई देता है। उनमें कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कि पुरानी प्रथाओं के कारागृह में बन्द हैं और जो विवादास्पद विषयों को सहर्ष धर्माचार्यों के निर्णय के लिए छोड़ देंगे, किन्तु ऐसा पक्ष जो आधुनिक बौद्धिक आलोक से प्रकाशित हो चुका है, प्रस्तुत विषय पर कुछ अधिक जानने के लिए इच्छुक है।

जिज्ञासु व्यक्तियों की सूचना तथा उन्हें निष्पक्ष भाव से विचार करने को प्रेरित करने के लिए प्रस्तुत पुस्तिका में कुछ ऐसी बातें संगृहीत की गई हैं, जो इस विषय में निश्चय पर पहुंचाने में अत्यन्त सहायक साबित होंगी।

इस पुस्तिका की विषय-सूची, डाक्टर, अम्बेडकर द्वारा भारतीय राज्यव्यवस्थापिका में दिये गये दो भाषणों, हिंदू कोड बिल के दो अविचल विरोधी स्वामी करपात्री जी तथा जगद्गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा दिये व्याख्यानों की रिपोर्टों, और श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति द्वारा हिन्दू कोड बिल के नानाविध पहलुओं पर लिखी समालोचनात्मक लेखमाला पर अवलम्बित है।

भिन्न-भिन्न समाचार पत्रों में इस बिल पर लिखे पक्ष तथा विपक्षसाधक अग्रलेखों का तात्त्विक सारांश तथा हिन्दू बिल का मूल पाठ इस पुस्तिका के साथ दो परिशिष्टों के रूप में जोड़ा गया है। यदि प्रस्तुत पुस्तिका हिन्दू कोड बिल के विषय में जनता की अभिरुचि को प्रोत्साहित करने में सहायक सिद्ध हुई तो हम इस प्रयत्न को सफल समझेंगे।

विषय-सूची

हिन्दू कोड १६४८

भाग १. आरम्भिक बातें

धारायें—

भाग २ : विवाह और विच्छेद (तलाक)

अध्याय १

विवाह

अध्याय २

खंडित तथा खंडित होने योग्य विवाह

अध्याय ३

दाम्पत्य अधिकारों का दिलवाना तथा विवाहों का परित्याग

अदालती अलहदगी (पृथकता)

के लिए साधिकार व्यक्ति। ३६. विवाह का विच्छेद। ३७. विवाह के व्यर्थ घोषित होने पर उसका प्रभाव। ३८. विवाह विच्छेद के लिए अधिक हेतु।

अधिकारक्षेत्र तथा कानूनी कार्यवाही

३९. इस भाग के अधीन सहायता देने के लिए अधिकारों का विस्तार क्षेत्र। ४०. जहां प्रार्थना पत्र देना होगा वह अदालत। ४१. प्रार्थना पत्रों के विषय और प्रमाणिकता। ४२. सिविल प्रोसीजर कोड की प्रभावकारिता। ४३. कानूनी कार्यवाही के सम्बन्ध में डिगरी। ४४. जिला जज द्वारा विवाह-समाप्ति के लिए दी डिगरी को पक्का करना। ४५. विवाह-विच्छेद अभियोग का खर्चा देना। ४६. विवाह-विच्छेद पर स्थायी गुजारा देना। ४७. बच्चों का संरक्षण। ४८. अभियोग बन्द द्वारों के भीतर सुने जायेंगे। ४९. आर्डरों तथा डिग्रियों का प्रभावकारी होना और उन पर अपील दायर करना। ५०. दोनों पक्षों को पुनर्विवाह की स्वतन्त्रता। ५१. अपवाद।

भाग ३ : गोद लेना (*ADOPTION*)

अध्याय १

सामान्यत: गोद लेना

५२. इस भाग का उल्लंघन करके गोद लेने का निषेध। ५३. जायज गोद लेने की अनिवार्यता।

गोद लेने के लिए योग्यता

५४. गोद लेने के विषय में एक हिन्दू पुरुष की योग्यता। ५५. गोद लेने में एक विधवा की योग्यता। ५६. गोद लेने के मामले में प्रामाणिकता या निषेध। ५७. प्रामाणिक सत्ता देने अथवा निषेध लागू करने की रीति या उनका रद करना। ५८. दो अथवा अधिक विधवाओं में से गोद लेने के लिए अधिकार। ५९. पत्नियों और विधवाओं में मुख्यता। ६०. विधवा का गोद लेने का अधिकार पहले प्रयोग द्वारा समाप्त नहीं होगा। ६१. विधवा के अधिकार की समाप्ति।

गोद देने के लिए योग्यता

६२. गोद देने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति। ६३. गोद कौन लिया जा सकेगा। ६४. कुछ व्यक्ति गोद लिए जाने योग्य निर्धारित होंगे। ६५. गोद लेने की प्रक्रिया की सम्पूर्णता।

भाग ६ : स्त्री सम्पत्ति

भाग ७ : उत्तराधिकार

अध्याय १

सामान्य

अध्याय २

वसीयतहीन उत्तराधिकार

(परिशिष्ट)

हिंदू कोड बिल का लक्ष्य

[राज्यव्यवस्थापिका में हिंदू कोड बिल को प्रवर समिति (सेलेक्ट कमेटी) के सुपुर्द करते हुए भारत सरकार के कानून मन्त्री डा० बी० आर० अम्बेडकर का भाषण]

मानननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर (कानून मन्त्री) : मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"हिन्दू कानून की कुछ शाखाओं को नियमबद्ध करने तथा उनमें संशोधन करने के इस बिल को एक प्रवर समिति के सुपुर्द कर दिया जाय जिसके ये सदस्य हों : श्री अल्लादि कृष्णस्वामी ऐय्यर, डा० बक्शी टेकचन्द, श्री अनंतशयनम् आयंगर, श्रीमती जी० दुर्गाबाई, श्री एल० कृष्णस्वामी भारती, श्री यू० श्रीनिवास मल्लैय्या, श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय, डा० पी० एस० देशमुख, श्रीमती रेणुका राय, डा० पी० के० सेन, बाबू रामनारायण सिंह, श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी, श्रीमती अम्मु स्वामिनाथन्, पंडित बालकृष्ण शर्मा, श्री खुर्शीद लाल, श्री ब्रजेश्वरप्रसाद, श्री बी० शिवराव, श्री बलदेवस्वरूप, श्री बी० सी० केशवराव और इस [illegible] प्रस्तावक। इस समिति से यह कहा जाय कि लोक सभा के अगले [illegible] शन के प्रथम सप्ताह के अन्तिम दिन तक यह अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दे। इस समिति की बैठकों में ९ सदस्यों का कोरम माना जायगा।"

श्रीमान्, मेरे लिए और मेरे विचार में इस सभा के सदस्यों के लिये यह पश्चात्ताप और खेद का विषय है कि हिन्दू कानून को नियमबद्ध करने वाला ऐसा महत्वपूर्ण बिल इस सभा के सम्मुख वर्तमान अधिवेशन के बिलकुल अंत में आया है। आज प्रातःकाल माननीय अध्यक्ष द्वारा घोषित व्यवस्था के

अनुसार, हमें इस प्रस्ताव पर सात बजे (इस समय सायंकाल के ४ बजे थे) तक बहस समाप्त कर देनी है। बीच में डेढ़ घण्टे का विश्राम काल भी रहेगा। मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूं कि हमारे पास जो थोड़ा सा समय है उसमें इस बिल के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में इस सभा के सदस्यों को विचार प्रकट करने का अधिक समय दूं। मैं भी इस विषय पर बोलना चाहूंगा। ऐसा करने का एक ही मार्ग है और वह यह है कि प्रारम्भ में मैं यथासम्भव संक्षिप्त भाषण देकर एक उदाहरण उपस्थित करूं। ऐसा निर्णय करने के लिये बाध्य होने का मुझे बहुत दुःख है। क्योंकि इस बिल का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि इसकी कोई पूरी तरह विवेचना करना प्रारम्भ करे और वर्तमान हिन्दू कानून की पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर इसकी व्यवस्था करने लगे तो उसमें निसन्देह ४ या ५ घण्टे लग जायेंगे। किन्तु यह इस समय असम्भव है और इसलिए यह सभा मुझे क्षमा करेगी यदि मैं इसके समक्ष केवल उन्हीं मुख्य बातों को पेश करूं जो आज के वर्तमान कानून से भिन्नता प्रकट करती हैं।

श्रीमान्! यह बिल, जिसका उद्देश्य हाईकोर्टों तथा प्रिवी कौंसिल के असंख्य निर्णयों में फैले हुए हिन्दू कानून के उन विषयों को शृंखलाबद्ध करना है जो साधारण व्यक्ति के लिये आश्चर्यजनक मिश्रण हैं और जिनके कारण निरन्तर मुकदमेबाजी होती है, सात विभिन्न मामलों सम्बन्धी कानून को नियमबद्ध करने जा रहा है। पहले इस बिल का उद्देश्य एक उस मृत हिन्दू के सम्पत्ति के अधिकारों सम्बन्धी कानून को नियमबद्ध करना है, जो अपना उत्तराधिकारी निश्चित किये बिना, किसी लड़की या लड़के के नाम वसीयतनामा लिखे बिना मर गया है। दूसरे, यह बिल उत्तराधिकारीविहीन एक मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के विभिन्न उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार क्रम का एक कुछ परिवर्तित स्वरूप निर्धारित करता है। इससे आगे इस बिल में गुजारा (भरण-पोषण), विवाह, तलाक, गोद लेना, नाबालिगपन और अभिभावकता के कानून पर विचार किया गया है। राज्यव्यवस्थापिका इस बिल के विस्तार तथा सीमा पर विचार करेगी। पहले उत्तराधिकार के प्रश्न को लीजिये, इस विषय के अन्तर्गत इस बिल में कम से कम ब्रिटिश भारत के कुछ भागों के लिये एक नया सिद्धान्त निर्धारित किया गया है। राज्यव्यवस्थापिका में जितने वकील सदस्य हैं वे यह जानते हैं कि उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हिन्दुओं पर दो भिन्न पद्धतियां लागू होती हैं। एक पद्धति को "मिताक्षरा" कहते हैं और दूसरी को "दायभाग"। दोनों पद्धतियों में एक आधारभूत भेद है। मिताक्षरा

के अनुसार एक हिन्दू की सम्पत्ति उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं है। यह सम्पत्ति पैतृक है, जिसके भागीदार पिता और पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र हैं। इस सम्पत्ति में इन व्यक्तियों का जन्मगत अधिकार है और पैतृक सम्पत्ति के किसी भी एक सदस्य की मृत्यु पर यह सम्पत्ति उत्तरजीवी रूप में पीछे जीवित रहने वाले सदस्यों को मिल जाती है और मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को नहीं मिलती। इस बिल में सम्मिलित हिन्दू कोड दायभाग सिद्धांत को स्वीकार करता है जिसके अनुसार उत्तराधिकारी की सम्पत्ति उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति होती है और उसे यह पूर्ण अधिकार होता है कि वह जैसे चाहे दान रूप में वसीयतनामे द्वारा या किसी अन्य प्रकार से सम्पत्ति को किसी को दे सकता है।

यह बिल एक आधारभूत परिवर्तन करना चाहता है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रदेश में इस समय मिताक्षरा नियम लागू होता है उसमें दायभाग नियम लागू करके यह बिल उत्तराधिकार कानून को एक जैसा बना देता है।

उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार क्रम के प्रश्न के विषय में भी मिताक्षरा नियम और दायभाग नियम में एक सामान्य प्रकार का आधारभूत भेद है। मिताक्षरा नियम के अधीन एक मृत व्यक्ति के पितृपक्ष के सम्बन्धियों को उसके मातृपक्ष के सम्बन्धियों की अपेक्षा तरजीह दी जाती है। दायभाग नियम के अनुसार उत्तराधिकार का आधार मृत व्यक्ति के साथ एक सम्बन्ध और पितृपक्ष या मातृपक्ष सम्बन्ध पर आश्रित सम्बन्ध नहीं। इस बिल से होने वाला एक परिवर्तन यह है; दूसरे शब्दों में यहां भी यह बिल मिताक्षरा नियम की तुलना में दाय भाग नियम को ही स्वीकार करता है।

एक मृत हिन्दू के उत्तराधिकार क्रम में यह साधारण परिवर्तन करने के अतिरिक्त यह बिल चार और भी परिवर्तन करता है। पहला परिवर्तन यह है कि विधवा, पुत्री, एक पूर्वमृत पुत्र की विधवा, इन सबको उत्तराधिकार के सम्बन्ध में पुत्र के समान ही स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुत्री को भी उसके पिता की सम्पत्ति में एक भाग दिया गया है, उसका भाग पुत्र के भाग से आधा निर्धारित किया गया है। यहां फिर मैं यह बता देना चाहता हूं कि सभी उत्तराधिकारियों के विषय में यह बिल जो नया परिवर्तन करना चाहता है वह पुत्री के विषय में ही है। अन्य स्त्री उत्तराधिकारी १९३७ के हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार ऐक्ट द्वारा स्वीकार किये ही जा चुके हैं। इसलिए बिल के उस भाग का जहां तक सम्बन्ध है वहां तक बिल में वस्तुतः

कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया। बिल में केवल ऐक्ट की वे व्यवस्थायें हैं-- जिनका मैंने उल्लेख किया है। स्त्री उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बिल ने जो दूसरा परिवर्तन किया है वह यह है कि मिताक्षरा या दायभाग में स्वीकृत सभी उत्तराधिकारियों की संख्या की अपेक्षा अब उनकी स्वीकृत संख्या बहुत अधिक है।

बिल ने तीसरा परिवर्तन यह किया है कि पुराने मिताक्षरा या दायभाग कानून के अधीन स्त्री उत्तराधिकारियों में यह भेद किया जाता था कि वसीयत करने वाले की मृत्यु के समय एक विशेष स्त्री धनी या गरीब, विवाहित या अविवाहित या सन्तानवाली या सन्तानविहीन है। इन सब कारणों से स्त्री उत्तराधिकारियों में जो भेद किया जाता था उन्हें अब इस बिल द्वारा समाप्त कर दिया गया है। एक स्त्री को जिसे उत्तराधिकार का अधिकार है केवल उत्तराधिकारी घोषित होने पर अपना अधिकार और इसमें किन्हीं अन्य कारणों को ध्यान में नहीं रखा जाता।

अन्तिम परिवर्तन दायभाग में उत्तराधिकार के नियम के सम्बन्ध में किया गया है। दायभाग के अनुसार माता की तुलना में पिता को पहले उत्तराधिकार मिलता है पर वर्तमान बिल के अनुसार स्थिति बदल गई है जिससे कि माता का स्थान पिता से पहले आता है।

इतना तो एक मृत पुरुष हिन्दू के उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकार के क्रम के सम्बन्ध में हुआ। अब मैं बिल की उन धाराओं को लेता हूं जो स्त्रियों के ऐसे उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हैं जिनके विषय में कोई वसीयतनहीं की गई। जैसा कि इस सभा के हिन्दू कानून से परिचित सदस्य जानते हैं, वर्तमान कानून के अधीन एक हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति की दो श्रेणियां हैं; एक श्रेणी उसका "स्त्रीधन" कहलाती है और दूसरी "स्त्री की सम्पत्ति"। पहले स्त्रीधन के प्रश्न को लीजिए, वर्तमान कानून के अधीन स्त्रीधन की कई श्रेणियां हैं, यह एक ही श्रेणी नहीं और वर्तमान कानून के अनुसार एक स्त्री के स्त्रीधन के उत्तराधिकार का क्रम स्त्रीधन की श्रेणी के अनुसार भिन्न होता है। स्त्रीधन की एक श्रेणी के उत्तराधिकार का कानून दूसरी श्रेणी के उत्तराधिकार के कानून से भिन्न है और ये नियम जैसे मिताक्षरा के विषय में हैं वैसे ही दायभाग के। स्त्रीधन के सम्बन्ध में वर्तमान बिल दो परिवर्तन करता है। यह बिल एक परिवर्तन तो यह करता है कि स्त्रीधन की विभिन्न श्रेणियों को सम्पत्ति की केवल एक श्रेणी में आबद्ध कर देता है और

उत्तराधिकार का एक जैसा नियम निश्चित करता है, स्त्रीधन की भिन्न श्रेणियों के अनुसार स्त्रीधन के उधराधिकारियों का भेद नहीं रहता—समस्त स्त्रीधन एक है और उत्तराधिकार का नियम एक है।

उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बिल जो दूसरा परिवर्तन करना चाहता है वह यह है कि अब पुत्र को भी स्त्रीधन के उत्तराधिकार पाने का एक अधिकार दिया गया है। उसे पुत्री के भाग से आधा भाग दिया गया है। सदस्य यह अनुभव करेंगे कि यह बिल बनाते हुए और उत्तराधिकार के नियमों में परिवर्तन करते हुए यह व्यवस्था की गई है कि जब पुत्री को पिता की सम्पत्ति में आधा भाग मिल रहा है तो पुत्र को भी माता की सम्पत्ति में आधा भाग मिलेगा जिससे कि कुछ अंश में बिल का उद्देश्य पुत्र और पुत्री के बीच समान स्थिति बनाये रखना है।

स्त्री की जायदाद के प्रश्न के विषय में जैसा कि इस सभा के सदस्य जानते हैं कि हिन्दू कानून के अनुसार जब एक स्त्री को उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिलती है तो वह केवल अपने जीवन पर्यन्त ही उस सम्पत्ति की मालिक होती है। वह सम्पत्ति की आमदनी का उपभोग कर सकती है किन्तु कानूनी आवश्यकता के अतिरिक्त वह उस सारी सम्पत्ति के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कर सकती। स्त्री की मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उसके पति के उत्तराधिकारियों को मिल जानी चाहिए। इस विषय में भी यह बिल दो परिवर्तन करता है। इस बिल द्वारा यह सीमित सम्पत्ति का अधिकार पूर्ण सम्पत्ति के अधिकार में बदल दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि एक पुरुष को उत्तराधिकार मिलने पर सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है और दूसरा परिवर्तन यह है कि यह बिल विधवा के बाद सम्पत्ति के लिये दावा करने के उत्तराधिकारियों के अधिकार को समाप्त कर देता है।

इस बिल में विद्यमान उत्तराधिकार में सम्पत्ति प्राप्त करने के स्त्रियों के अधिकारों के अधीन एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था दहेज के सम्बन्ध में है। इस सभा के सब सदस्य जानते हैं कि यह दहेज कैसा गर्हित मामला है। उदाहरण के तौर पर अपने माता-पिताओं से दहेज या स्त्रीधन या उपहार रूप में बहुत सारी सम्पत्ति लाने पर भी लड़कियों के साथ कैसी घृणा, अत्याचार और क्रूरता का बर्ताव किया जाता है।

मेरे विचार में इस बिल ने एक बहुत हितकर व्यवस्था है और वह यह है कि विवाह के समय लड़की को जो सम्पत्ति दी जाय उसे ट्रस्ट सम्पत्ति समझा

जाय। उसके उपयोग से वह अभ्यस्त हो जायगी और १८ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर उसे वह सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा। इस प्रकार न तो उसके पति को और न उसके पति के सम्बन्धियों को ही उस सम्पत्ति में लोभ होगा। और न ही उस सम्पत्ति को बरबाद करके उस लड़की को जीवन भर के लिये असहाय बनाने का उन्हें अवसर मिलेगा।

भरण-पोषण के सम्बन्ध में इस बिल में जो व्यवस्था की गयी है वह अधिकांश में नयी नहीं है। इस बिल में कहा गया है कि मृतक व्यक्ति के आश्रितों को उन व्यक्तियों से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होगा जो वसीयत द्वारा अथवा उत्तराधिकार द्वारा मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति के अधिकारी होंगे। इस बिल में ११ विविध आश्रितों का उल्लेख किया गया गया है। मेरे विचार में यह खेद की बात है कि आश्रितों में रखेलियों (concubine) को भी शामिल किया गया है। कुछ भी हो इस पर विचार करना होगा। भरण-पोषण का दायित्व उस पर है जो मृतक की सम्पत्ति प्राप्त करता है। जैसा कि मैंने कहा है, इस बिल में कोई अधिक नयी बात नहीं है।

इस बिल का एक महत्त्वपूर्ण भाग उस पत्नी के अधिकारों के सम्बन्ध में है जो अपने पति से अलग रह कर भरण-पोषण की पृथक् व्यवस्था चाहती है। साधारणतः हिन्दू कानून में उस पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार नहीं है जो अपने पति के साथ उसके घर में नहीं रहती। फिर भी, यह बिल यह स्वीकार करता है कि निस्सन्देह कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जिनमें यदि पत्नी अपने पति से अलग रहती है तो अवश्य ही वह ऐसे ही कारणों से होगा जो उसके नियंत्रण से बाहर होंगे। इन कारणों को न मानना और उसे पृथक् भरण पोषण मांगने का अधिकार न देना गलत होगा। फलतः इस बिल में व्यवस्था की गयी है कि यदि (१) पति घृणित रोग से ग्रस्त है, (२) यदि वह रखेली रखता है, (३) यदि वह क्रूरतापूर्ण व्यवहार का दोषी है, (४) यदि उसने अपनी पत्नी को दो वर्ष तक छोड़ दिया है, (५) यदि उसने दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है, (६) यदि वह कोई ऐसा कार्य करता है जिसमें पत्नी का पृथक् रहना उचित प्रमाणित होता हो तो पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण का पृथक् व्यय मांगने का अधिकार होगा।

अब मैं विवाह के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस कोड में दो प्रकार के विवाहों को स्वीकार किया गया है। एक का नाम "शास्त्रीय" (Sacramental) विवाह और दूसरे का नाम "सिविल" विवाह है। वर्तमान कानून में ऐसी व्यवस्था नहीं है यह बात सदस्य लोगों को मालूम हो जायगी।

उसमें तो केवल शास्त्रीय विवाह को ही माना है। सिविल मैरिज को स्वीकार नहीं किया गया है। वैध शास्त्रीय विवाह और वैध रजिस्टर्ड विवाह के लिये कोड के अन्तर्गत जो शर्तें रखी गयीं हैं उन पर यदि ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि दोनों में वास्तविक अन्तर बहुत कम है। शास्त्रीय विवाह के लिये पांच शर्तें रखी गयी हैं। पहले वर १८ वर्ष का और वधू १४ वर्ष की होनी चाहिये। दूसरे, विवाह के समय वर की पत्नी और वधू का पति जीवित नहीं होना चाहिये। तीसरे, वर और वधू का ऐसा सम्बन्ध नहीं होना चाहिए जो विवाह की निषेधात्मक कोटियों के अन्तर्गत आता हो। चौथे, वर और वधू परस्पर सपिंड नहीं होने चाहिएं। पांचवें, दोनों में से कोई वज्रमूर्ख अथवा पागल नहीं होना चाहिये। शास्त्रीय विवाह और सिविल विवाह में एक तो अंतर यह है कि रजिस्टर्ड विवाह में सपिंडत्व की समानता से कोई बाधा नहीं पड़ती। दूसरे बिल की व्यवस्था के अन्तर्गत रजिस्टर्ड विवाह को अवश्य ही रजिस्टर्ड कराना चाहिए। शास्त्रीय विवाह को, यदि वर-वधू चाहें तो रजिस्टर्ड कराया जा सकता है। इस प्रकार विवाह के सम्बन्ध में वर्तमान कानून से इस बिल में तीन बातें भिन्न हैं। एक तो यह कि शास्त्रीय विवाह के लिए वर और वधू समान वर्ण और उपवर्ण के होने चाहिएं। इस बिल में इस प्रतिबन्ध को हटा दिया गया है। वर और वधू चाहे एक वर्ण और उपवर्ण के हों या नहीं, इस बिल के अन्तर्गत उनका विवाह हो सकता है।

पंडित ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाबः जनरल): यदि विवाह दो विभिन्न जातियों के वर और वधू में हो तब क्या यह वैध माना जायगा।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: मुझे आगे बढ़ने दीजिये। यदि माननीय सदस्य अपना भाषण देते समय यह प्रश्न करेंगे तो मैं उसका उत्तर दूंगा।

दूसरी व्यवस्था इस बिल में यह है कि एक ही गोत्रप्रवर के वर और वधू में विवाह हो सकता है। वर्तमान कानून इस बात की अनुमति नहीं देता। तीसरी विशिष्ट बात यह है कि पहले वाले कानून में बहुपत्नीत्व की अनुमति थी, नये कानून में एकपत्नीत्व की अनुमति दी गयी है। शास्त्रीय विवाह अविच्छेद्य है; इसमें तलाक की व्यवस्था नहीं है। प्रस्तुत बिल में विवाह विच्छेद की व्यवस्था कर दी गयी है। नये कोड के अन्तर्गत विवाह करने पर वर और वधू को तीन उपायों द्वारा विवाह-विच्छेद करने का अधिकार होगा। एक उपाय तो यह है कि विवाह को रद्द घोषित करवाया जा सकता है, दूसरे, विवाह को अवैध घोषित करवाया जा सकता है और तीसरे, विवाह-विच्छेद

किया जा सकता है। विवाह को अवैध घोषित करवाने के लिए दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि यदि विवाह के समय वर की पत्नी या वधू का पति जीवित हो तो वह विवाह रद्द हो जायगा। दूसरे, वर और वधू का परस्पर सम्बन्ध ऐसा हो जो विवाह के लिये निषिद्ध है तो विवाह रद्द किया जा सकता है। विवाह को अवैध घोषित करवाने के चार कारण हो सकते हैं। पहले, प्रजनन-शक्ति-हीनता; दूसरे, वर और वधू का सपिंडत्व; तीसरे, यदि वर या वधू वज्रमूर्ख या पागल हो; चौथे, यदि अभिभावक (वली) की अनुमति जबरन या धोखे से प्राप्त की गयी हो। विवाह-विच्छेद की आशंका सदा न बनी रहे, इसलिए बिल में यह व्यवस्था कर दी गयी है कि विवाह को रद्द करवाने के लिए विवाह से तीन वर्ष तक की अवधि में मुकदमा दायर करना चाहिए, अन्यथा मुकदमा नहीं चल सकेगा और यह समझा जायगा कि विवाह की अवैधता के लिए कोई कारण मौजूद नहीं है। बिल में यह भी व्यवस्था की गयी है कि विवाह को चाहे अदालत द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया हो, फिर भी विवाह की अवैधता का वैध बच्चों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और उन्हें वैध माना जायगा।

सात कारणों के आधार पर तलाक दिया जा सकता है :

१. परित्याग २. धर्म-परिवर्तन ३. रखेली रखना या रखेली बन जाना ४. असाध्य उन्माद ५. भयंकर और असाध्य कुष्ठ रोग ६. संक्रामक गुप्त रोग और ७. क्रूरतापूर्ण व्यवहार।

गोद के सम्बन्ध में भी इस बिल के अधिकांश नियम वर्तमान कानून के नियमों से कोई भिन्न नहीं हैं। इस विषय में दो नये नियम प्रस्तुत किये गये हैं। एक तो यह कि यदि पति किसी को गोद लेना चाहता है तो कोड के अन्तर्गत इसके लिए उसे अपनी पत्नी से स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होगा। यदि उसके एक से अधिक पत्नियां हैं तो उस अवस्था में उसे उनमें से एक की स्वीकृति अवश्य प्राप्त करनी होगी। दूसरे, इस बिल में यह भी कहा गया है कि विधवा केवल उसी हालत में गोद ले सकती है जब कि पति इसके लिए निश्चित आदेश छोड़ गया हो। इस मुकदमेबाजी की रोकथाम के लिए कि मृत पति अपनी पत्नी के लिए कोई आदेश छोड़ गया है या नहीं, इस बिल में यह व्यवस्था की गयी है कि इस सम्बन्ध में वही आदेश वैध माना जायगा जिसकी रजिस्टरी हो चुकी है या वसीयतनामे में जिसका उल्लेख है। कोई मौखिक गवाही नहीं मानी जायगी। इस प्रकार इस क्षेत्र में मुकदमेबाजी की

बहुत कम गुंजाइश रह जायगी। कोड में यह भी कहा गया है कि गोद को रजिस्टर्ड अवश्य कराना चाहिए। इस देश में बहुत से मुकदमों की जब गोद का प्रश्न होता है; सब तरह की काल्पनिक गवाही तैयार की जाती है, गवाह पेश किये जाते हैं और विधवाओं को बहकाया जाता है। एक दिन वे कहती हैं कि उन्होंने अमुक को गोद ले लिया है और कुछ ही दिन बाद वे कहती हैं कि उन्होंने किसी को गोद नहीं लिया है। इस सारी मुकदमेबाजी को दूर करने के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि गोद को अवश्य रजिस्टर्ड करवाया जाय। अब बिल के अंतर्गत अंतिम विषय अल्पवयस्कता और अभिभावकत्व (वलीपन) का है। कोड के इस अंग के सम्बन्ध में कोई नयी बात नहीं है, अतएव मैं बिल के इस भाग के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता।

जैसा कि सदस्यगण अनुभव करेंगे इस बिल से उठने वाली नई और विचारणीय बातें ये हैं : प्रथम, जन्म सिद्ध अधिकार की समाप्ति और उत्तराधिकार के अनुसार सम्पत्ति की प्राप्ति; दूसरी पुत्री को सम्पत्ति का आधा भाग देने के सम्बन्ध में; तीसरी, स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी सीमित अधिकार का पूर्णाधिकार में परिवर्तन; चौथी, विवाह तथा गोद लेने के सम्बन्ध में जातपांत के भेद की समाप्ति; पांचवीं, एक पत्नी रखने का सिद्धान्त और छठी, तलाक का सिद्धान्त है। मैंने इन बातों की अलग-अलग व्याख्या इस कारण की है कि मैं यह अनुभव करता था कि अपने पास सीमित समय होने के कारण यदि मैं सभा के सदस्यों को यह बता दूंगा कि विचारणीय विषय क्या-क्या हैं तो इससे उन्हें सहायता मिलेगी। बिल में जो परिवर्तन किये गये हैं निश्चय ही उन्हें न्यायोचित सिद्ध करना होगा किन्तु यदि मैं इस समय इन परिवर्तनों के पक्ष में अपने प्रमाण उपस्थित करूं तो मेरे विचार से यह समय गंवाना होगा। मैंने जो कुछ कहा है उसके विषय में मैं माननीय सदस्यों के विचार जानना चाहता हूँ। और यदि मैं समझूंगा कि इसके पक्ष में प्रमाण उपस्थित करना आवश्यक है तो अपने उत्तर में ऐसा करने का मेरा विचार है।

प्रामाणिक स्पष्टीकरण

[कानून मंत्री डा० बी० आर० अम्बेडकर द्वारा राज्यव्यवस्थापिका में २४-२-४९ को बहस के लिये बिल पेश करते हुए भाषण]

श्री डिप्टी स्पीकर : ३१ अगस्त, १९४८ के राज्यव्यवस्थापिका के कार्यविवरण में ये वाक्य दिये हुए हैं:—

"माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान् ! मेरा प्रस्ताव है :

"हिन्दू क़ानून के कुछ अंशों में संशोधन करने और उन्हें नियमबद्ध करने सम्बन्धी बिल पर, जिस रूप में वह प्रवर समिति से प्राप्त हुआ है, विचार किया जाय।"

माननीय डी० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान् ! इस सभा में जो प्रस्ताव उपस्थित किये गये हैं, उनके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना है। कुछ प्रस्ताव तो ऐसे हैं, जिनपर विचार होना ही चाहिये। परन्तु कुछ ऐसे हैं, जिनपर विचार कराना या न कराना आपकी इच्छा पर निर्भर है। यदि आप यह समझते हों कि प्रस्ताव सारपूर्ण है और केवल कार्य को विलम्बित करने की दृष्टि से नहीं लाया गया है, तो आप उस पर विचार करने की आज्ञा दे सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह प्रस्ताव कि इस समय बिल पर विचार नहीं होना चाहिये, बाद में होना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव है जो आपकी इच्छा पर निर्भर करता है। बिल को पुनः प्रवर समिति के सुपुर्द करने सम्बन्धी प्रस्ताव भी ऐसा ही है।

श्री डिप्टी स्पीकर : मैं जो करना चाहता हूँ वह यह है कि…

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : मैं इस सम्बन्ध में आपका निर्देश चाहता हूँ ।

श्री डिप्टी स्पीकर : मैंने इस मामले पर और प्रस्तावों की सूची पर विचार कर लिया है इनमें से तीन प्रस्ताव ऐसे हैं, जिनपर कि क़ानून-मंत्री द्वारा अपना वक्तव्य जारी करने से पूर्व विचार होना आवश्यक है । इन प्रस्तावों के द्वारा विवाद स्थगित किया जा सकता है । जब तक कि ये उपस्थित नहीं किये गये, तब तक मैं चुप रहा । परन्तु अब प्रस्तावों के द्वारा ये प्रस्ताव वापस ले लिये गये हैं । इसलिये अब रास्ता साफ हो गया है । कुछ प्रस्ताव बिल को पुनः प्रचारित करने अथवा प्रवर समिति के पास पुनर्विचारार्थ भेजने के सम्बन्ध में हैं । नियमानुसार इन प्रस्तावों को कोई भी व्यक्ति उपस्थित कर सकता है । परन्तु ऐसा करना सभा के निर्णय पर निर्भर है । साथ ही प्रवर समिति सम्बन्धी प्रस्ताव के सम्बन्ध में सबसे पहले मुझे भी सन्तोष हो जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त पुनः प्रचारण के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव और है, परन्तु जहां तक मैं समझता हूँ ऐसे प्रस्ताव के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है । अतः ऐसी स्थिति में मैं क़ानून मंत्री से कहूंगा कि वे अपना वक्तव्य दें, और जब वे वक्तव्य दे चुकें, तब प्रवर समिति एवं प्रचारण सम्बन्धी प्रस्ताव बिना किसी वक्तव्य के उपस्थित किये जा सकते हैं । तत्पश्चात् सभी प्रस्तावों पर विचार होगा और मैं उन्हें क्रमशः उपस्थित करूंगा ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान् ! मैं आपके निर्देश के लिये बहुत आभारी हूं । श्रीमान् ! ऐसी प्रथा है कि जब प्रवर समिति की सिफ़ारिशों युक्त बिल पर विचार करने के लिये कोई प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है, तो सबसे पहले प्रवर समिति का अध्यक्ष उन परिवर्तनों की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करता है, जो प्रवर समिति द्वारा मूल बिल में किये जाते हैं । अतः मैं भी इस प्रथा का अवलम्बन करना चाहूंगा ।

श्रीमान् ! बिल के प्रथम भाग में विवाह और विवाह-विच्छेद का वर्णन है । इस भाग में प्रवर समिति ने दो धारायें बढ़ाई हैं, एक धारा वैवाहिक अधिकारों के सम्बन्ध में है, और दूसरी कानूनी विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में । मूल

बिल में ऐसी कोई स्पष्ट व्यवस्था न थी । उसमें तो केवल १८६० के भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत कर दिया गया था, जिसमें वैवाहिक अधिकारों की पुनः प्राप्ति एवं कानूनी विवाह-विच्छेद सम्बन्धी व्यवस्था है । मूल बिल के प्रस्तोताओं ने यह समझा था कि इसमें भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत कर देना ही उसकी इन दोनों धाराओं को लागू करने के लिये पर्याप्त होगा, अतः उन्होंने इन दोनों धाराओं को स्पष्ट रूप से हिन्दू कोड में रखना आवश्यकता नहीं समझा, परन्तु प्रवर समिति का विचार इससे भिन्न था । प्रवर समिति ने सोचा कि जब हिन्दू कानून की पूरी पद्धति बननी ही है तो किसी दूसरे क़ानून की ओर संकेत करके उसे अधूरी छोड़ देना ठीक नहीं । अतः उसने भारतीय विवाह-विच्छेद क़ानून की विवाह और विच्छेद सम्बन्धी व्यवस्थाओं को इस बिल में स्पष्ट रूप से सम्मिलित करना ही उचित समझा । सभा देखेगी कि वास्तव में मूल बिल और प्रवर समिति द्वारा संशोधित बिल में कोई अन्तर नहीं है । जो बात मूल बिल में भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत करके की गई थी, वही प्रवर समिति ने तत्सम्बन्धी दो स्पष्ट धारायें जोड़ कर की है ।

दत्तक प्रथा में प्रवर समिति ने कुछ परिवर्तन किये हैं । पहला परिवर्तन यह है कि जब पिता धर्मपरिवर्तन कर ले और हिन्दू न रहे, तो माता अपने लड़के को दत्तक दे सकेगी । दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि जो पिता हिन्दूधर्म को छोड़ कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार कर लेगा वह अपने पुत्र को दत्तक देने का अधिकारी न रहेगा और ऐसी स्थिति में माता को दत्तक देने का अधिकार होगा । इसी प्रकार, यदि पिता मर जाय, तो उसकी विधवा स्त्री को अपने लड़के को दत्तक देने का अधिकार होगा । परन्तु यदि विधवा स्त्री हिन्दू न रहेगी तो उसको अपने लड़के को दत्तक देने का अधिकार न रहेगा ।

दूसरा परिवर्तन गोद लेने की भिन्न-भिन्न प्रथाओं के सम्बन्ध में है । इस समय, जैसा कि सभा को विदित है, देश

में गोद लेने की अनेक प्रथायें प्रचलित हैं। स्मृतियों में केवल दत्तक नाम की प्रथा को स्वीकार किया गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में कुछ अन्य रिवाजी प्रथायें भी प्रचलित हो गई हैं; जैसे गोद लेने की प्रथा, कृत्रिम दत्तक प्रथा, और द्वैमुष्यायन दत्तक प्रथा आदि। प्रवर समिति ने सोचा कि जब क़ानून बनाया जा रहा है तो रीति-रिवाजों को चालू रखने का अवसर न देना चाहिए। क्योंकि यदि इनको पनपने दिया गया तो क़ानून की जड़ें खोखली हो जायेंगी और कुछ समय बाद वे निरर्थक हो जायेंगी। अतः प्रवर समिति ने निश्चय किया कि यदि कोई गोद लेना चाहे तो वह इस क़ानून के अनुसार ही ले सकता है, और दत्तक प्रथा के अतिरिक्त गोद लेने की और कोई प्रथा क़ानून द्वारा मान्य न होगी।

अब हम दत्तक पुत्र के उस अधिकार पर विचार करेंगे, जिसके द्वारा वह उन व्यक्तियों को अधिकारच्युत कर सकता है, जो उसके गोद लिये जाने से पूर्व सम्पत्ति के अधिकारी थे। वर्तमान हिन्दू कानून के अनुसार गोद लिया हुआ लड़का, चाहे वह कभी गोद लिया गया हो, अपनी विधवा माता द्वारा जिसने उसे गोद लिया है, हस्तान्तरित की हुई अथवा दूसरे के अधिकार में दी हुई सम्पत्ति को वापिस लेने के लिये अभियोग चला सकता है। ऐसा लड़का यदि पति की मृत्यु के ४० वर्ष बाद भी गोद लिया गया हो तब भी उसके अधिकारों में कोई अन्तर नहीं आता। हिन्दुओं में जितने अभियोग इस सम्बन्ध में चलते हैं, उतने अन्य किसी अधिकार के लिये नहीं चलते। अतः यह आवश्यक है कि यह झगड़ा सदा के लिये तय कर दिया जाय। राव समिति ने पुत्रदान की दो श्रेणियां बनाई थीं—पहली श्रेणी में उन लड़कों को रखा था, जो अपने नये पिता की मृत्यु से पहले तथा हिन्दू कोड लागू होने से ३ वर्ष पहले गोद लिये जा चुके हों, और दूसरी श्रेणी में उन्हें रखा था, जो कोड लागू होने के बाद गोद लिये गये हों। जो लड़के कोड लागू होने से ३ वर्ष पहले गोद लिये जा चुके हों, उन्हें राव-समिति ने हिन्दू कोड के अनुसार दत्तक पुत्र को मिलने वाले

सब मौलिक अधिकार दे दिये थे; परन्तु जो लड़के कोड लागू होने के बाद गोद लिये गये हों, उन्हें हस्तान्तरित सम्पत्ति की पुनः वापसी का अधिकार नहीं दिया था।

हिन्दू कानून के अनुसार गोद लेने का एक दूसरा भयानक परिणाम यह होता है कि गोद लिया हुआ लड़का अपनी नयी विधवा माता से सारी सम्पत्ति छीन कर अपने अधिकार में कर लेता है। वास्तव में तो वह एक दूसरे परिवार से ही आया हुआ होता है। इसलिये यहां वह अपने को एक अद्भुत स्थिति में पाता है और इस बात की चिन्ता न करके कि मैं गोद लिया जा चुका हूँ, अपने असली परिवार से ही प्रेम और सहानुभूति रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि गोद लेने के बाद गोद लेने वाली माता को ऐसी कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं होती, जैसी कि एक स्वाभाविक माता को अपने स्वाभाविक पुत्र से होती है। इसके विपरीत, ऐसा देखने में आता है कि दत्तक पुत्र सारी सम्पत्ति को लेकर भाग जाता है और उसकी नई माता को जीवन निर्वाह करना भी कठिन हो जाता है। हमने सोचा कि स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से ऐसी स्थिति वांछनीय नहीं है, अतः, कुछ परिवर्तन किये गये। राव समिति ने दत्तक पुत्रों की जो दो श्रेणियां बनाई थीं, वे समाप्त कर दी गईं और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दत्तक पुत्र को उसके अधिकार अपने नये पिता की मृत्यु की तारीख से न मिल कर गोद लेने की तारीख से मिलेंगे। इससे गोद लेने से पूर्व हस्तान्तरित की हुई सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह कोई झगड़ा खड़ा न कर सकेगा।

दूसरी व्यवस्था हमने यह दी की कि दत्तक पुत्र अपनी नई माता की सारी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं कर सकेगा। वह केवल आधी सम्पत्ति ले सकेगा, शेष आधी पर विधवा का अधिकार रहेगा। हिन्दू समाज यह समझता है कि वंश-क्रम जारी रखने के लिये दत्तक प्रथा आवश्यक है। अतः प्रवर-समिति ने इसकी आज्ञा दे दी है, पर साथ ही इस बात का ध्यान रखा है कि दत्तक लेने से कहीं माता ही भिखारिणी न बन जाय।

श्री डिप्टी स्पीकरः क्या देशमुख ऐक्ट से यह बात सम्भव नहीं है ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : नहीं, उससे तो उसे केवल जीवन-निर्वाह के लिए कुछ पैसा मिलता है ।

श्री डिप्टी स्पीकर (श्री एम० अनन्तशयनम् आयंगर) : उससे लड़की को सम्पत्ति का आधा भाग मिलता है ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : ज्योंही लड़का गोद लिया जाता है वह सारा भाग लड़के को मिल जाता है ।

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका : १९३७ के एक्ट के अनुसार वह लड़के के समान हिस्सेदार है ।

श्री एल० कृष्ण स्वामी भारती : उत्तराधिकार में लड़के का स्थान बाद में आता है ।

माननीय डा० आर० अम्बेडकर : ऐसा हो सकता है ।

अब मैं वयस्कता (बालिगपन) और अभिभावकता (वलीपन) का जिक्र करता हूं । बिल के इस भाग में प्रवर समिति ने केवल दो परिवर्तन किये हैं । पहला परिवर्तन तो यह है कि यदि कोई हिन्दू पिता संन्यास ले लेता है या हिन्दू धर्म छोड़ देता है तो अपने नाबालिग पुत्र के एक स्वाभाविक अभिभावक होने का अधिकार उससे छीन लिया गया है । पहले कानून के अनुसार पिता अपने नाबालिग पुत्र का स्वाभाविक अभिभावक था और उस की स्थिति में उसके धर्म अथवा किसी अन्य रूप से चाहे कोई परिवर्तन हो वह तब भी अपने नाबालिग पुत्र का स्वाभाविक अभिभावक बना रहता था । कमेटी ने अनुभव किया कि क्योंकि इस कोड का उद्देश्य हिन्दुओं का संगठन करना है और इस कानून को हिन्दूओं पर लागू करना है, इसलिए इस शर्त को लागू करना वांछनीय समझा गया कि पिता जब तक हिन्दू रहे तब तक वह स्वाभाविक अभिभावक होगा । कोड के परिवर्तित स्वरूप में एक और परिवर्तन भी किया गया है और वह यह है कि यदि एक हिन्दू विधवा के पति ने वसीयतनामे में कोई अभिभावक नियुक्त नहीं किया तो उसे वसीयतनामा सम्बन्धी अभिभावक नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है । उसे ऐसा कोई अधिकार नहीं था और यह अधिकार प्रवर समिति ने उसे दिया है ।

श्रीमान् ! अब मैं बिल के उत्तराधिकार सम्बन्धी भाग की ओर आता हूं और पहले मैं पुरुषों के अधिकार में किए गये परिवर्तनों का जिक्र करूंगा । हिन्दू कानून में जहां तक उत्तराधिकारियों की मिश्रित श्रेणी का सम्बन्ध है जिन्हें राव कमेटी ने प्रथम श्रेणी में रखा है उसमें प्रवर समिति ने कोई भी परिवर्तन नहीं किया । उस मिश्रित श्रेणी में उत्तराधिकारियों की पीढ़ी और उत्तराधिकारियों के क्रम की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं हुआ । उस विषय में कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया । परन्तु राव कमेटी की पहली से चौथी धाराओं में सम्मिलित व्यक्तियों की उत्तराधिकार की पीढ़ी और उत्तराधिकार की प्राथमिकता दोनों के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन किये गये हैं । कमेटी ने दोनों सिद्धान्तों, अर्थात् सामीप्य और स्वाभाविक स्नेह तथा प्रेम का अनुकरण किया है और इस आधार पर प्रवर समिति ने मूल बिल की पहली से चौथी धाराओं में उल्लिखित उत्तराधिकारियों में कुछ परिवर्तन किया है । प्रवर समिति ने एक बात और भी की है, उस ने गोत्रजों और बन्धुओं की कड़ियों की संख्या कम कर दी है जो मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी हो सकते हैं, और कमेटी ने अन्य उत्तराधिकारियों को भी हटा दिया है जैसे कि वे उत्तराधिकारी जो सम्बन्धी नहीं है और जैसे स्वयं ब्रह्मचारी, गुरु तथा अन्य । प्रवर समिति ने उत्तराधिकारियों की संख्या कम क्यों की है इसका कारण जैसा कि मूल बिल में बताया गया है वह यह है । इस कोड के अधीन हम प्रत्येक हिन्दू को एक वसीयत करने का अधिकार दे रहे हैं । एक बड़े महत्त्वपूर्ण पत्र में जिसका नाम 'जर्नल आफ कम्परेटिव लेजिस्लेशन' अर्थात् तुलनात्मक कानून का पत्र है, समालोचना की गई है । जिसमें एक प्रसिद्ध वकील ने कहा है कि जब आप एक वसीयत करने का अधिकार देते हैं तो उत्तराधिकारियों की एक इतनी लम्बी सूची निर्धारित करना अनावश्यक है जो मृत व्यक्ति से १४ वीं कड़ी तक पहुंचती है । यदि मृत व्यक्ति एक ऐसे पुरुष में दिलचस्पी रखता है जो उसकी १४वीं कड़ी में उनका सम्बन्धी है और उसकी मृत्यु के समय जीवित है तो वह एक वसीयत कर सकता है और उस विशेष व्यक्ति को

हिंदू कोड बिल का लक्ष्य

[राज्यव्यवस्थापिका में हिंदू कोड बिल को प्रवर समिति (सेलैक्ट कमेटी) के सुपुर्द करते हुए भारत सरकार के कानून मन्त्री डा० बी० आर० अम्बेडकर का भाषण]

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर (कानून मन्त्री) : मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"हिन्दू कानून की कुछ शाखाओं को नियमबद्ध करने तथा उनमें संशोधन करने के इस बिल को एक प्रवर समिति के सुपुर्द कर दिया जाय जिसके ये सदस्य हों : श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐय्यर, डा० बक्शी टेकचन्द, श्री अनंत-शयनम् आयंगर, श्रीमती जी० दुर्गाबाई, श्री एल० कृष्णास्वामी भारती, श्री यू० श्रीनिवास मल्लैय्या, श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय, डा० पी० एस० देशमुख, श्रीमती रेणुका राय, डा० पी० के० सेन, बाबू रामनारायण सिंह, श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी, श्रीमती अम्मु स्वामिनाथन, पंडित बालकृष्ण शर्मा, श्री खुर्शीद लाल, श्री ब्रजेश्वरप्रसाद, श्री बी० शिवराव, श्री बलदेवस्वरूप, श्री बी० सी० केशवराव और इस प्रस्ताव का प्रस्तावक। इस समिति से यह कहा जाय कि लोक सभा के अगले अधिवेशन के प्रथम सप्ताह के अन्तिम दिन तक यह अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दे। इस समिति की बैठकों में ९ सदस्यों का कोरम माना जायगा।"

श्रीमान्, मेरे लिए और मेरे विचार में इस सभा के सदस्यों के लिये यह पश्चात्ताप और खेद का विषय है कि हिन्दू कानून को नियमबद्ध करने वाला ऐसा महत्वपूर्ण बिल इस सभा के सम्मुख वर्तमान अधिवेशन के बिल्कुल अंत में आया है। आज प्रातःकाल माननीय अध्यक्ष द्वारा घोषित व्यवस्था के

अनुसार, हमें इस प्रस्ताव पर सात बजे (इस समय सायंकाल के ४ बजे थे) तक बहस समाप्त कर देनी है। बीच में डेढ़ घण्टे का विश्राम काल भी रहेगा। मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि हमारे पास जो थोड़ा सा समय है उसमें इस बिल के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में इस सभा के सदस्यों को विचार प्रकट करने का अधिक समय दूं। मैं भी इस विषय पर बोलना चाहूंगा। ऐसा करने का एक ही मार्ग है और वह यह है कि प्रारम्भ में मैं यथासम्भव संक्षिप्त भाषण देकर एक उदाहरण उपस्थित करूं। ऐसा निर्णय करने के लिये बाध्य होने का मुझे बहुत दुःख है। क्योंकि इस बिल का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि इसकी कोई पूरी तरह विवेचना करना प्रारम्भ करे और वर्तमान हिन्दू कानून की पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर इसकी व्यवस्था करने लगे तो उसमें निसन्देह ४ या ५ घण्टे लग जायेंगे। किन्तु यह इस समय असम्भव है और इसलिए यह सभा मुझे क्षमा करेगी यदि मैं इसके समक्ष केवल उन्हीं मुख्य बातों को पेश करूं जो आज के वर्तमान कानून से भिन्नता प्रकट करती हैं।

श्रीमान्! यह बिल, जिसका उद्देश्य हाईकोर्टों तथा प्रिवी कौंसिल के असंख्य निर्णयों में फैले हुए हिन्दू कानून के उन विषयों को शृंखलाबद्ध करना है जो साधारण व्यक्ति के लिये आश्चर्यजनक मिश्रण हैं और जिनके कारण निरन्तर मुकदमेबाजी होती है, सात विभिन्न मामलों सम्बन्धी कानून को नियमबद्ध करने जा रहा है। पहले इस बिल का उद्देश्य एक उस मृत हिन्दू के सम्पत्ति के अधिकारों सम्बन्धी कानून को नियमबद्ध करना है, जो अपना उत्तराधिकारी निश्चित किये बिना, किसी लड़की या लड़के के नाम वसीयत-नामा लिखे बिना मर गया है। दूसरे, यह बिल उत्तराधिकारीविहीन एक मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के विभिन्न उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार क्रम का एक कुछ परिवर्तित स्वरूप निर्धारित करता है। इससे आगे इस बिल में गुजारा (भरण-पोषण), विवाह, तलाक, गोद लेना, नाबालिगपन और अभिभावकता के कानून पर विचार किया गया है। राज्यव्यवस्थापिका इस बिल के विस्तार तथा सीमा पर विचार करेगी। पहले उत्तराधिकार के प्रश्न को लीजिये, इस विषय के अन्तर्गत इस बिल में कम से कम ब्रिटिश भारत के कुछ भागों के लिये एक नया सिद्धान्त निर्धारित किया गया है। राज्यव्यवस्थापिका में जितने वकील सदस्य हैं वे यह जानते हैं कि उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हिन्दुओं पर दो भिन्न पद्धतियां लागू होती हैं। एक पद्धति को "मिताक्षरा" कहते हैं और दूसरी को "दायभाग"। दोनों पद्धतियों में एक आधारभूत भेद है। मिताक्षरा

के अनुसार एक हिन्दू की सम्पत्ति उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं है। यह सम्पत्ति पैतृक है, जिसके भागीदार पिता और पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र हैं। इस सम्पत्ति में इन व्यक्तियों का जन्मगत अधिकार है और पैतृक सम्पत्ति के किसी भी एक सदस्य की मृत्यु पर यह सम्पत्ति उत्तरजीवी रूप में पीछे जीवित रहने वाले सदस्यों को मिल जाती है और मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को नहीं मिलती। इस बिल में सम्मिलित हिन्दू कोड दायभाग सिद्धांत को स्वीकार करता है जिसके अनुसार उत्तराधिकारी की सम्पत्ति उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति होती है और उसे यह पूर्ण अधिकार होता है कि वह जैसे चाहे दान रूप में वसीयतनामे द्वारा या किसी अन्य प्रकार से सम्पत्ति को किसी को दे सकता है।

यह बिल एक आधारभूत परिवर्तन करना चाहता है। दूसरे शब्दों में, जिस प्रदेश में इस समय मिताक्षरा नियम लागू होता है उसमें दायभाग नियम लागू करके यह बिल उत्तराधिकार कानून को एक जैसा बना देता है।

उत्तराधिकारियों में उत्तराधिकार क्रम के प्रश्न के विषय में भी मिताक्षरा नियम और दायभाग नियम में एक साधारण प्रकार का आधारभूत भेद है। मिताक्षरा नियम के अधीन एक मृत व्यक्ति के पितृपक्ष के सम्बन्धियों को उसके मातृपक्ष के सम्बन्धियों की अपेक्षा तरजीह दी जाती है। दायभाग नियम के अनुसार उत्तराधिकार का आधार मृत व्यक्ति के साथ एक सम्बन्ध और पितृपक्ष या मातृपक्ष सम्बन्ध पर आश्रित सम्बन्ध नहीं। इस बिल से होने वाला एक परिवर्तन यह है; दूसरे शब्दों में यहां भी यह बिल मिताक्षरा नियम की तुलना में दाय भाग नियम को ही स्वीकार करता है।

एक मृत हिन्दू के उत्तराधिकार क्रम में यह साधारण परिवर्तन करने के अतिरिक्त यह बिल चार और भी परिवर्तन करता है। पहला परिवर्तन यह है कि विधवा, पुत्री, एक पूर्वमृत पुत्र की विधवा, इन सबको उत्तराधिकार के सम्बन्ध में पुत्र के समान ही स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुत्री को भी उसके पिता की सम्पत्ति में एक भाग दिया गया है, उसका भाग पुत्र के भाग से आधा निर्धारित किया गया है। यहां फिर मैं यह बता देना चाहता हूं कि सभी उत्तराधिकारियों के विषय में यह बिल जो नया परिवर्तन करना चाहता है वह पुत्री के विषय में ही है। अन्य स्त्री उत्तराधिकारी १९३७ के हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार ऐक्ट द्वारा स्वीकार किये ही जा चुके हैं। इसलिए बिल के उस भाग का जहां तक सम्बन्ध है वहां तक बिल में वस्तुतः

कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया। बिल में केवल ऐक्ट की वे व्यवस्थायें हैं-- जिनका मैंने उल्लेख किया है। स्त्री उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बिल ने जो दूसरा परिवर्तन किया है वह यह है कि मिताक्षरा या दायभाग में स्वीकृत सभी उत्तराधिकारियों की संख्या की अपेक्षा अब उनकी स्वीकृत संख्या बहुत अधिक है।

बिल ने तीसरा परिवर्तन यह किया है कि पुराने मिताक्षरा या दायभाग कानून के अधीन स्त्री उत्तराधिकारियों में यह भेद किया जाता था कि वसीयत करने वाले की मृत्यु के समय एक विशेष स्त्री धनी या गरीब, विवाहित या अविवाहित या सन्तानवाली या सन्तानविहीन है। इन सब कारणों से स्त्री उत्तराधिकारियों में जो भेद किया जाता था उन्हें अब इस बिल द्वारा समाप्त कर दिया गया है। एक स्त्री को जिसे उत्तराधिकार का अधिकार है केवल उत्तराधिकारी घोषित होने पर अपना अधिकार और इसमें किन्हीं अन्य कारणों को ध्यान में नहीं रखा जाता।

अन्तिम परिवर्तन दायभाग में उत्तराधिकार के नियम के सम्बन्ध में किया गया है। दायभाग के अनुसार माता की तुलना में पिता को पहले उत्तराधिकार मिलता है पर वर्तमान बिल के अनुसार स्थिति बदल गई है जिससे कि माता का स्थान पिता से पहले आता है।

इतना तो एक मृत पुरुष हिन्दू के उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकार के क्रम के सम्बन्ध में हुआ। अब मैं बिल की उन धाराओं को लेता हूं जो स्त्रियों के ऐसे उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हैं जिनके विषय में कोई वसीयतनहीं की गई। जैसा कि इस सभा के हिन्दू कानून से परिचित सदस्य जानते हैं, वर्तमान कानून के अधीन एक हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति की दो श्रेणियां हैं; एक श्रेणी उसका "स्त्रीधन" कहलाती है और दूसरी "स्त्री की सम्पत्ति"। पहले स्त्रीधन के प्रश्न को लीजिए, वर्तमान कानून के अधीन स्त्रीधन की कई श्रेणियां हैं, यह एक ही श्रेणी नहीं और वर्तमान कानून के अनुसार एक स्त्री के स्त्रीधन के उत्तराधिकार का क्रम स्त्रीधन की श्रेणी के अनुसार भिन्न होता है। स्त्रीधन की एक श्रेणी के उत्तराधिकार का कानून दूसरी श्रेणी के उत्तराधिकार के कानून से भिन्न है और ये नियम जैसे मिताक्षरा के विषय में हैं वैसे ही दायभाग के। स्त्रीधन के सम्बन्ध में वर्तमान बिल दो परिवर्तन करता है। यह बिल एक परिवर्तन तो यह करता है कि स्त्रीधन की विभिन्न श्रेणियों को सम्पत्ति की केवल एक श्रेणी में आवद्ध कर देता है और

उत्तराधिकार का एक जैसा नियम निश्चित करना है, स्त्रीधन की भिन्न श्रेणियों के अनुसार स्त्रीधन के उत्तराधिकारियों का भेद नहीं रहता—समस्त स्त्रीधन एक है और उत्तराधिकार का नियम एक है।

उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बिल जो दूसरा परिवर्तन करना चाहता है वह यह है कि अब पुत्र को भी स्त्रीधन के उत्तराधिकार पाने का एक अधिकार दिया गया है। उसे पुत्री के भाग से आधा भाग दिया गया है। सदस्य यह अनुभव करेंगे कि यह बिल बनाते हुए और उत्तराधिकार के नियमों में परिवर्तन करते हुए यह व्यवस्था की गई है कि जब पुत्री को पिता की सम्पत्ति में आधा भाग मिल रहा है तो पुत्र को भी माता की सम्पत्ति में आधा भाग मिलेगा जिससे कि कुछ अंश में बिल का उद्देश्य पुत्र और पुत्री के बीच समान स्थिति बनाये रखना है।

स्त्री की जायदाद के प्रश्न के विषय में जैसा कि इस सभा के सदस्य जानते हैं कि हिन्दू कानून के अनुसार जब एक स्त्री को उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिलती है तो वह केवल अपने जीवन पर्यन्त ही उस सम्पत्ति की मालिक होती है। वह सम्पत्ति की आमदनी का उपभोग कर सकती है किन्तु कानूनी आवश्यकता के अतिरिक्त वह उस सारी सम्पत्ति के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कर सकती। स्त्री की मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उसके पति के उत्तराधिकारियों को मिल जानी चाहिए। इस विषय में भी यह बिल दो परिवर्तन करता है। इस बिल द्वारा यह सीमित सम्पत्ति का अधिकार पूर्ण सम्पत्ति के अधिकार में बदल दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि एक पुरुष को उत्तराधिकार मिलने पर सम्पत्ति में पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है और दूसरा परिवर्तन यह है कि यह बिल विधवा के बाद सम्पत्ति के लिये दावा करने के उत्तराधिकारियों के अधिकार को समाप्त कर देता है।

इस बिल में विद्यमान उत्तराधिकार में सम्पत्ति प्राप्त करने के स्त्रियों के अधिकारों के अधीन एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था दहेज के सम्बन्ध में है। इस सभा के सब सदस्य जानते हैं कि यह दहेज कैसा गर्हित मामला है। उदाहरण के तौर पर अपने माता-पिताओं से दहेज या स्त्रीधन या उपहार रूप में बहुत सारी सम्पत्ति लाने पर भी लड़कियों के साथ कैसी घृणा, अत्याचार और क्रूरता का बर्ताव किया जाता है।

मेरे विचार में इस बिल ने एक बहुत हितकर व्यवस्था है और वह यह है कि विवाह के समय लड़की को जो सम्पत्ति दी जाय उसे ट्रस्ट सम्पत्ति समझा

जाय। उसके उपयोग से वह अभ्यस्त हो जायगी और १८ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर उसे वह सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा। इस प्रकार न तो उसके पति को और न उसके पति के सम्बन्धियों को ही उस सम्पत्ति में लोभ होगा। और न ही उस सम्पत्ति को बरबाद करके उस लड़की को जीवन भर के लिये असहाय बनाने का उन्हें अवसर मिलेगा।

भरण-पोषण के सम्बन्ध में इस बिल में जो व्यवस्था की गयी है वह अधिकांश में नयी नहीं है। इस बिल में कहा गया है कि मृतक व्यक्ति के आश्रितों को उन व्यक्तियों से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार होगा जो वसीयतें द्वारा अथवा उत्तराधिकार द्वारा मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति के अधिकारी होंगे। इस बिल में ११ विविध आश्रितों का उल्लेख किया गया गया है। मेरे विचार में यह खेद की बात है कि आश्रितों में रखेलियों (concubine) को भी शामिल किया गया है। कुछ भी हो इस पर विचार करना होगा। भरण-पोषण का दायित्व उस पर है जो मृतक की सम्पत्ति प्राप्त करता है। जैसा कि मैंने कहा है, इस बिल में कोई अधिक नयी बात नहीं है।

इस बिल का एक महत्वपूर्ण भाग उस पत्नी के अधिकारों के सम्बन्ध में है जो अपने पति से अलग रह कर भरण-पोषण की पृथक् व्यवस्था चाहती है। साधारणतः हिन्दू कानून में उस पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार नहीं है जो अपने पति के साथ उसके घर मे नहीं रहती। फिर भी, यह बिल यह स्वीकार करता है कि निस्सन्देह कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जिनमें यदि पत्नी अपने पति से अलग रहती है तो अवश्य ही यह ऐसे ही कारणों से होगा जो उसके नियंत्रण से बाहर होंगे। इन कारणों को न मानना और उसे पृथक् भरण पोषण मांगने का अधिकार न देना गलत होगा। फलतः इस बिल में व्यवस्था की गयी है कि यदि (१) पति घृणित रोग से ग्रस्त है, (२) यदि वह रखेली रखता है, (३) यदि यह क्रूरतापूर्ण व्यवहार का दोषी है, (४) यदि उसने अपनी पत्नी को दो वर्ष तक छोड़ दिया है, (५) यदि उसने दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है, (६) यदि वह कोई ऐसा कार्य करता है जिसमें पत्नी का पृथक् रहना उचित प्रमाणित होता हो तो पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण का पृथक् व्यय मांगने का अधिकार होगा।

अब मैं विवाह के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस कोड में दो प्रकार के विवाहों को स्वीकार किया गया है। एक का नाम "शास्त्रीय" (Sacramental) विवाह और दूसरे का नाम "सिविल" विवाह है। वर्तमान कानून में ऐसी व्यवस्था नहीं है यह बात सदस्य लोगों को मालूम हो जायगी।

उसमें तो केवल शास्त्रीय विवाह को ही माना है। सिविल मैरिज को स्वीकार नहीं किया गया है। वैध शास्त्रीय विवाह और वैध रजिस्टर्ड विवाह के लिये कोड के अन्तर्गत जो शर्तें रखी गयीं हैं उन पर यदि ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि दोनों में वास्तविक अन्तर बहुत कम है। शास्त्रीय विवाह के लिये पांच शर्तें रखी गयी हैं। पहले वर १८ वर्ष का और वधू १४ वर्ष की होनी चाहिये। दूसरे, विवाह के समय वर की पत्नी और वधू का पति जीवित नहीं होना चाहिये। तीसरे, वर और वधू का ऐसा सम्बन्ध नहीं होना चाहिए जो विवाह की निषेधात्मक कोटियों के अन्तर्गत आता हो। चौथे, वर और वधू परस्पर सपिंड नहीं होने चाहिएं। पांचवें, दोनों में से कोई वज्रमूर्ख अथवा पागल नहीं होना चाहिये। शास्त्रीय विवाह और सिविल विवाह में एक तो अंतर यह है कि रजिस्टर्ड विवाह में सपिंडत्व की समानता से कोई बाधा नहीं पड़ती। दूसरे बिल की व्यवस्था के अन्तर्गत रजिस्टर्ड विवाह को अवश्य ही रजिस्टर्ड कराना चाहिए। शास्त्रीय विवाह को, यदि वर-वधू चाहें तो रजिस्टर्ड कराया जा सकता है। इस प्रकार विवाह के सम्बन्ध में वर्तमान कानून से इस बिल में तीन बातें भिन्न हैं। एक तो यह कि शास्त्रीय विवाह के लिए वर और वधू समान वर्ण और उपवर्ण के होने चाहिएं। इस बिल में इस प्रतिबन्ध को हटा दिया गया है। वर और वधू चाहे एक वर्ण और उपवर्ण के हों या नहीं, इस बिल के अन्तर्गत उनका विवाह हो सकता है।

पंडित ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाबः जनरल): यदि विवाह दो विभिन्न जातियों के वर और वधू में हो तब क्या यह वैध माना जायगा।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: मुझे आगे बढ़ने दीजिये। यदि माननीय सदस्य अपना भाषण देते समय यह प्रश्न करेंगे तो मैं उसका उत्तर दूंगा।

दूसरी व्यवस्था इस बिल में यह है कि एक ही गोत्रप्रवर के वर और वधू में विवाह हो सकता है। वर्तमान कानून इस बात की अनुमति नहीं देता। तीसरी विशिष्ट बात यह है कि पहले वाले कानून में बहुपत्नीत्व की अनुमति थी, नये कानून में एकपत्नीत्व की अनुमति दी गयी है। शास्त्रीय विवाह अविच्छेद्य हैं; इसमें तलाक की व्यवस्था नहीं है। प्रस्तुत बिल में विवाह विच्छेद की व्यवस्था कर दी गयी है। नये कोड के अन्तर्गत विवाह करने पर वर और वधू को तीन उपायों द्वारा विवाह-विच्छेद करने का अधिकार होगा। एक उपाय तो यह है कि विवाह को रद्द घोषित करवाया जा सकता है, दूसरे, विवाह को अवैध घोषित करवाया जा सकता है और तीसरे, विवाह-विच्छेद

किया जा सकता है। विवाह को अवैध घोषित करवाने के लिए दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि यदि विवाह के समय वर की पत्नी या वधू का पति जीवित हो तो वह विवाह रद्द हो जायगा। दूसरे, वर और वधू का परस्पर सम्बन्ध ऐसा हो जो विवाह के लिये निषिद्ध है तो विवाह रद्द किया जा सकता है। विवाह को अवैध घोषित करवाने के चार कारण हो सकते हैं। पहले, प्रजनन-शक्ति-हीनता; दूसरे, वर और वधू का सपिंडत्व; तीसरे, यदि वर या वधू वज्रमूर्ख या पागल हो; चौथे, यदि अभिभावक (वली) की अनुमति जबरन या धोखे से प्राप्त की गयी हो। विवाह-विच्छेद की आशंका सदा न बनी रहे, इसलिए बिल में यह व्यवस्था कर दी गयी है कि विवाह को रद्द करवाने के लिए विवाह से तीन वर्ष तक की अवधि में मुकदमा दायर करना चाहिए, अन्यथा मुकदमा नहीं चल सकेगा और यह समझा जायगा कि विवाह की अवैधता के लिए कोई कारण मौजूद नहीं है। बिल में यह भी व्यवस्था की गयी है कि विवाह को चाहे अदालत द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया हो, फिर भी विवाह की अवैधता का वैध बच्चों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और उन्हें वैध माना जायगा।

सात कारणों के आधार पर तलाक दिया जा सकता है:

१. परित्याग २. धर्म-परिवर्तन ३. रखेली रखना या रखेली बन जाना ४. असाध्य उन्माद ५. भयंकर और असाध्य कुष्ठ रोग ६. संक्रामक गुप्त रोग और ७. क्रूरतापूर्ण व्यवहार।

गोद के सम्बन्ध में भी इस बिल के अधिकांश नियम वर्तमान कानून के नियमों से कोई भिन्न नहीं हैं। इस विषय में दो नये नियम प्रस्तुत किये गये हैं। एक तो यह कि यदि पति किसी को गोद लेना चाहता है तो कोड के अन्तर्गत इसके लिए उसे अपनी पत्नी से स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होगा। यदि उसके एक से अधिक पत्नियां हैं तो उस अवस्था में उसे उनमें से एक की स्वीकृति अवश्य प्राप्त करनी होगी। दूसरे, इस बिल में यह भी कहा गया है कि विधवा केवल उसी हालत में गोद ले सकती है जब कि पति इसके लिए निश्चित आदेश छोड़ गया हो। इस मुकदमेबाजी की रोकथाम के लिए कि मृत पति अपनी पत्नी के लिए कोई आदेश छोड़ गया है या नहीं, इस बिल में यह व्यवस्था की गयी है कि इस सम्बन्ध में वही आदेश वैध माना जायगा जिसकी रजिस्टरी हो चुकी है या वसीयतनामे में जिसका उल्लेख है। कोई मौलिक गवाही नहीं मानी जायगी। इस प्रकार इस क्षेत्र में मुकदमेबाजी की

बहुत कम गुंजाइश रह जायगी। कोड में यह भी कहा गया है कि गोद को रजिस्टर्ड अवश्य कराना चाहिए। इस देश में बहुत से मुकदमों की जड़ गोद का प्रश्न होता है; सब तरह की काल्पनिक गवाही तैयार की जाती है, गवाह पेश किये जाते हैं और विधवाओं को बहकाया जाता है। एक दिन वे कहती हैं कि उन्होंने अमुक को गोद ले लिया है और कुछ ही दिन बाद वे कहती हैं कि उन्होंने किसी को गोद नहीं लिया है। इस सारी मुकदमेबाजी को दूर करने के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि गोद को अवश्य रजिस्टर्ड करवाया जाय। अब बिल के अंतर्गत अंतिम विषय अल्पवयस्कता और अभिभावकत्व (वलीपन) का है। कोड के इस अंग के सम्बन्ध में कोई नयी बात नहीं है, अतएव मैं बिल के इस भाग के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता।

जैसा कि सदस्यगण अनुभव करेंगे इस बिल से उठने वाली नई और विचारणीय बातें ये हैं : प्रथम, जन्म सिद्ध अधिकार की समाप्ति और उत्तराधिकार के अनुसार सम्पत्ति की प्राप्ति; दूसरी पुत्री को सम्पत्ति का आधा भाग देने के सम्बन्ध में; तीसरी, स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी सीमित अधिकार का पूर्णाधिकार में परिवर्तन; चौथी, विवाह तथा गोद लेने के सम्बन्ध में जातपांत के भेद की समाप्ति; पांचवीं, एक पत्नी रखने का सिद्धान्त और छठी, तलाक का सिद्धान्त है। मैंने इन बातों की अलग-अलग व्याख्या इस कारण की है कि मैं यह अनुभव करता था कि अपने पास सीमित समय होने के कारण यदि मैं सभा के सदस्यों को यह बता दूंगा कि विचारणीय विषय क्या-क्या हैं तो इससे उन्हें सहायता मिलेगी। बिल में जो परिवर्तन किये गये हैं निश्चय ही उन्हें न्यायोचित सिद्ध करना होगा किन्तु यदि मैं इस समय इन परिवर्तनों के पक्ष में अपने प्रमाण उपस्थित करूं तो मेरे विचार से यह समय गंवाना होगा। मैंने जो कुछ कहा है उसके विषय में मैं माननीय सदस्यों के विचार जानना चाहता हूँ। और यदि मैं समझूंगा कि इसके पक्ष में प्रमाण उपस्थित करना आवश्यक है तो अपने उत्तर में ऐसा करने का मेरा विचार है।

प्रामाणिक स्पष्टीकरण

[कानून मंत्री डा० बी० आर० अम्बेडकर द्वारा राज्यव्यवस्थापिका में २४-२-४६ को बहस के लिये बिल पेश करते हुए भाषण]

श्री डिप्टी स्पीकर : २१ अगस्त, १६४८ के राज्यव्यवस्थापिका के कार्यविवरण में ये वाक्य दिये हुए हैं:—

"माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान् ! मेरा प्रस्ताव है :

"हिन्दू कानून के कुछ अंशों में संशोधन करने और उन्हें नियमबद्ध करने सम्बन्धी बिल पर, जिस रूप में वह प्रवर समिति से प्राप्त हुआ है, विचार किया जाय।"

माननीय डी० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान् ! इस सभा में जो प्रस्ताव उपस्थित किये गये हैं, उनके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना है। कुछ प्रस्ताव तो ऐसे हैं, जिनपर विचार होना ही चाहिये। परन्तु कुछ ऐसे हैं, जिनपर विचार कराना या न कराना आपकी इच्छा पर निर्भर है। यदि आप यह समझते हों कि प्रस्ताव सारपूर्ण है और केवल कार्य को विलम्बित करने की दृष्टि से नहीं लाया गया है, तो आप उस पर विचार करने की आज्ञा दे सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह प्रस्ताव कि इस समय बिल पर विचार नहीं होना चाहिये, बाद में होना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव है जो आपकी इच्छा पर निर्भर करता है। बिल को पुनः प्रवर समिति के सुपुर्द करने सम्बन्धी प्रस्ताव भी ऐसा ही है।

श्री डिप्टी स्पीकर : मैं जो करना चाहता हूँ वह यह है कि···

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : मैं इस सम्बन्ध में आपका निर्देश चाहता हूँ।

श्री डिप्टी स्पीकर : मैंने इस मामले पर और प्रस्तावों की सूची पर विचार कर लिया है इनमें से तीन प्रस्ताव ऐसे हैं, जिनपर कि क़ानून-मंत्री द्वारा अपना वक्तव्य जारी करने से पूर्व विचार होना आवश्यक है। इन प्रस्तावों के द्वारा विवाद स्थगित किया जा सकता है। जब तक कि ये उपस्थित नहीं किये गये, तब तक मैं चुप रहा। परन्तु अब प्रस्तावों के द्वारा ये प्रस्ताव वापस ले लिये गये हैं। इसलिये अब रास्ता साफ हो गया है। कुछ प्रस्ताव बिल को पुनः प्रचारित करने अथवा प्रवर समिति के पास पुनर्विचारार्थ भेजने के सम्बन्ध में हैं। नियमानुसार इन प्रस्तावों को कोई भी व्यक्ति उपस्थित कर सकता है। परन्तु ऐसा करना सभा के निर्णय पर निर्भर है। साथ ही प्रवर समिति सम्बन्धी प्रस्ताव के सम्बन्ध में सबसे पहले मुझे भी सन्तोष हो जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त पुनः प्रचारण के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव और है, परन्तु जहां तक मैं समझता हूँ ऐसे प्रस्ताव के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में मैं क़ानून मंत्री से कहूंगा कि वे अपना वक्तव्य दें, और जब वे वक्तव्य दे चुकें, तब प्रवर समिति एवं प्रचारण सम्बन्धी प्रस्ताव बिना किसी वक्तव्य के उपस्थित किये जा सकते हैं। तत्पश्चात् सभी प्रस्तावों पर विचार होगा और मैं उन्हें क्रमशः उपस्थित करूंगा।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान्! मैं आपके निर्देश के लिये बहुत आभारी हूँ। श्रीमान्! ऐसी प्रथा है कि जब प्रवर समिति की सिफ़ारिशों युक्त बिल पर विचार करने के लिये कोई प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है, तो सबसे पहले प्रवर समिति का अध्यक्ष उन परिवर्तनों की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करता है, जो प्रवर समिति द्वारा मूल बिल में किये जाते हैं। अतः मैं भी इस प्रथा का अवलम्बन करना चाहूँगा।

श्रीमान्! बिल के प्रथम भाग में विवाह और विवाह-विच्छेद का वर्णन है। इस भाग में प्रवर समिति ने दो धारायें बढ़ाई हैं, एक धारा वैवाहिक अधिकारों के सम्बन्ध में है, और दूसरी कानूनी विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में। मूल

बिल में ऐसी कोई स्पष्ट व्यवस्था न थी। उसमें तो केवल १८६० के भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत कर दिया गया था, जिसमें वैवाहिक अधिकारों की पुनः प्राप्ति एवं कानूनी विवाह-विच्छेद सम्बन्धी व्यवस्था है। मूल बिल के प्रस्तोताओं ने यह समझा था कि इसमें भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत कर देना ही उसकी इन दोनों धाराओं को लागू करने के लिये पर्याप्त होगा, अतः उन्होंने इन दोनों धाराओं को स्पष्ट रूप से हिन्दू कोड में रखना आवश्यकता नहीं समझा, परन्तु प्रवर समिति का विचार इससे भिन्न था। प्रवर समिति ने सोचा कि जब हिन्दू कानून की पूरी पद्धति बननी ही है तो किसी दूसरे क़ानून की ओर संकेत करके उसे अधूरी छोड़ देना ठीक नहीं। अतः उसने भारतीय विवाह-विच्छेद क़ानून की विवाह और विच्छेद सम्बन्धी व्यवस्थाओं को इस बिल में स्पष्ट रूप से सम्मिलित करना ही उचित समझा। सभा देखेगी कि वास्तव में मूल बिल और प्रवर समिति द्वारा संशोधित बिल में कोई अन्तर नहीं है। जो बात मूल बिल में भारतीय विवाह-विच्छेद कानून की ओर संकेत करके की गई थी, वही प्रवर समिति ने तत्सम्बन्धी दो स्पष्ट धारायें जोड़ कर की है।

दत्तक प्रथा में प्रवर समिति ने कुछ परिवर्तन किये हैं। पहला परिवर्तन यह है कि जब पिता धर्मपरिवर्तन कर ले और हिन्दू न रहे, तो माता अपने लड़के को दत्तक दे सकेगी। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि जो पिता हिन्दूधर्म को छोड़ कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार कर लेगा वह अपने पुत्र को दत्तक देने का अधिकारी न रहेगा और ऐसी स्थिति में माता को दत्तक देने का अधिकार होगा। इसी प्रकार, यदि पिता मर जाय, तो उसकी विधवा स्त्री को अपने लड़के को दत्तक देने का अधिकार होगा। परन्तु यदि विधवा स्त्री हिन्दू न रहेगी तो उसको अपने लड़के को दत्तक देने का अधिकार न रहेगा।

दूसरा परिवर्तन गोद लेने की भिन्न-भिन्न प्रथाओं के सम्बन्ध में है। इस समय, जैसा कि सभा को विदित है, देश

में गोद लेने की अनेक प्रथायें प्रचलित हैं। स्मृतियों में केवल दत्तक नाम की प्रथा को स्वीकार किया गया है। परन्तु इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में कुछ अन्य रिवाजी प्रथायें भी प्रचलित हो गई हैं; जैसे गोद लेने की प्रथा, कृत्रिम दत्तक प्रथा, और द्वैमुष्यायन दत्तक प्रथा आदि। प्रवर समिति ने सोचा कि जब क़ानून बनाया जा रहा है तो रीति-रिवाजों को चालू रखने का अवसर न देना चाहिए। क्योंकि यदि इनको पनपने दिया गया तो क़ानून की जड़ें खोखली हो जायेंगी और कुछ समय बाद वे निरर्थक हो जायेंगी। अतः प्रवर समिति ने निश्चय किया कि यदि कोई गोद लेना चाहे तो वह इस क़ानून के अनुसार ही ले सकता है, और दत्तक प्रथा के अतिरिक्त गोद लेने की और कोई प्रथा क़ानून द्वारा मान्य न होगी।

अब हम दत्तक पुत्र के उस अधिकार पर विचार करेंगे, जिसके द्वारा वह उन व्यक्तियों को अधिकारच्युत कर सकता है, जो उसके गोद लिये जाने से पूर्व सम्पत्ति के अधिकारी थे। वर्तमान हिन्दू कानून के अनुसार गोद लिया हुआ लड़का, चाहे वह कभी गोद लिया गया हो, अपनी विधवा माता द्वारा जिसने उसे गोद लिया है, हस्तान्तरित की हुई अथवा दूसरे के अधिकार में दी हुई सम्पत्ति को वापिस लेने के लिये अभियोग चला सकता है। ऐसा लड़का यदि पति की मृत्यु के ४० वर्ष बाद भी गोद लिया गया हो तब भी उसके अधिकारों में कोई अन्तर नहीं आता। हिन्दुओं में जितने अभियोग इस सम्बन्ध में चलते हैं, उतने अन्य किसी अधिकार के लिये नहीं चलते। अतः यह आवश्यक है कि यह झगड़ा सदा के लिये तय कर दिया जाय। राव समिति ने पुत्रदान की दो श्रेणियां बनाई थीं—पहली श्रेणी में उन लड़कों को रखा था, जो अपने नये पिता की मृत्यु से पहले तथा हिन्दू कोड लागू होने से ३ वर्ष पहले गोद लिये जा चुके हों, और दूसरी श्रेणी में उन्हें रखा था, जो कोड लागू होने के बाद गोद लिये गये हों। जो लड़के कोड लागू होने से ३ वर्ष पहले गोद लिये जा चुके हों, उन्हें राव-समिति ने हिन्दू कोड के अनुसार दत्तक पुत्र को मिलने वाले

सब मौलिक अधिकार दे दिये थे; परन्तु जो लड़के कोड लागू होने के बाद गोद लिये गये हों, उन्हें हस्तान्तरित सम्पत्ति की पुनः वापसी का अधिकार नहीं दिया था।

हिन्दू कानून के अनुसार गोद लेने का एक दूसरा भयानक परिणाम यह होता है कि गोद लिया हुआ लड़का अपनी नयी विधवा माता से सारी सम्पत्ति छीन कर अपने अधिकार में कर लेता है। वास्तव में तो वह एक दूसरे परिवार से ही आया हुआ होता है। इसलिये यहां वह अपने को एक अद्भुत स्थिति में पाता है और इस बात की चिन्ता न करके कि मैं गोद लिया जा चुका हूँ, अपने असली परिवार से ही प्रेम और सहानुभूति रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि गोद लेने के बाद गोद लेने वाली माता को ऐसी कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं होती, जैसी कि एक स्वाभाविक माता को अपने स्वाभाविक पुत्र से होती है। इसके विपरीत, ऐसा देखने में आता है कि दत्तक पुत्र सारी सम्पत्ति को लेकर भाग जाता है और उसकी नई माता को जीवन निर्वाह करना भी कठिन हो जाता है। हमने सोचा कि स्त्रियों की सुरक्षा की दृष्टि से ऐसी स्थिति वांछनीय नहीं है, अतः, कुछ परिवर्तन किये गये। राव समिति ने दत्तक पुत्रों की जो दो श्रेणियां बनाई थीं, वे समाप्त कर दी गईं और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दत्तक पुत्र को उसके अधिकार अपने नये पिता की मृत्यु की तारीख से न मिल कर गोद लेने की तारीख से मिलेंगे। इससे गोद लेने से पूर्व हस्तान्तरित की हुई सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह कोई झगड़ा खड़ा न कर सकेगा।

दूसरी व्यवस्था हमने यह की कि दत्तक पुत्र अपनी नई माता की सारी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं कर सकेगा। वह केवल आधी सम्पत्ति ले सकेगा, शेष आधी पर विधवा का अधिकार रहेगा। हिन्दू समाज यह समझता है कि वंश-क्रम जारी रखने के लिये दत्तक प्रथा आवश्यक है। अतः प्रवर-समिति ने इसकी आज्ञा दे दी है, पर साथ ही इस बात का ध्यान रखा है कि दत्तक लेने से कहीं माता ही भिखारिणी न बन जाय।

श्री डिप्टी स्पीकर: क्या देशमुख ऐक्ट से यह बात सम्भव नहीं है ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : नहीं, उससे तो उसे केवल जीवन-निर्वाह के लिए कुछ पैसा मिलता है ।

श्री डिप्टी स्पीकर (श्री एम० अनन्तशयनम् आयंगर) : उससे लड़की को सम्पत्ति का आधा भाग मिलता है ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : ज्योंही लड़का गोद लिया जाता है वह सारा भाग लड़के को मिल जाता है ।

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका : १९३७ के एक्ट के अनुसार वह लड़के के समान हिस्सेदार है ।

श्री एल० कृष्ण स्वामी भारती : उत्तराधिकार में लड़के का स्थान बाद में आता है ।

माननीय डा० आर० अम्बेडकर : ऐसा हो सकता है ।

अब मैं वयस्कता (बालिगपन) और अभिभावकता (वलीपन) का जिक्र करता हूं । बिल के इस भाग में प्रवर समिति ने केवल दो परिवर्तन किये हैं । पहला परिवर्तन तो यह है कि यदि कोई हिन्दू पिता संन्यास ले लेता है या हिन्दू धर्म छोड़ देता है तो अपने नाबालिग पुत्र के एक स्वाभाविक अभिभावक होने का अधिकार उससे छीन लिया गया है । पहले कानून के अनुसार पिता अपने नाबालिग पुत्र का स्वाभाविक अभिभावक था और उस की स्थिति में उसके धर्म अथवा किसी अन्य रूप से चाहे कोई परिवर्तन हो वह तब भी अपने नाबालिग पुत्र का स्वाभाविक अभिभावक बना रहता था । कमेटी ने अनुभव किया कि क्योंकि इस कोड का उद्देश्य हिन्दुओं का संगठन करना है और इस कानून को हिन्दूओं पर लागू करना है, इसलिए इस शर्त को लागू करना वांछनीय समझा गया कि पिता जब तक हिन्दू रहे तब तक वह स्वाभाविक अभिभावक होगा । कोड के परिवर्तित स्वरूप में एक और परिवर्तन भी किया गया है और वह यह है कि यदि एक हिन्दू विधवा के पति ने वसीयतनामे में कोई अभिभावक नियुक्त नहीं किया तो उसे वसीयतनामा सम्बन्धी अभिभावक नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है । उसे ऐसा कोई अधिकार नहीं था और यह अधिकार प्रवर समिति ने उसे दिया है ।

श्रीमान् ! अब मैं बिल के उत्तराधिकार सम्बन्धी भाग की ओर आता हूं और पहले मैं पुरुषों के अधिकार में किए गये परिवर्तनों का जिक्र करूंगा । हिन्दू कानून में जहां तक उत्तराधिकारियों की मिश्रित श्रेणी का सम्बन्ध है जिन्हें राव कमेटी ने प्रथम श्रेणी में रखा है उसमें प्रवर समिति ने कोई भी परिवर्तन नहीं किया । उस मिश्रित श्रेणी में उत्तराधिकारियों की पीढ़ी और उत्तराधिकारियों के क्रम की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं हुआ । उस विषय में कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया । परन्तु राव कमेटी की पहली से चौथी धाराओं में सम्मिलित व्यक्तियों की उत्तराधिकार की पीढ़ी और उत्तराधिकार की प्राथमिकता दोनों के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन किये गये हैं । कमेटी ने दोनों सिद्धान्तों, अर्थात् सामीप्य और स्वाभाविक स्नेह तथा प्रेम का अनुकरण किया है और इस आधार पर प्रवर समिति ने मूल बिल की पहली से चौथी धाराओं में उल्लिखित उत्तराधिकारियों में कुछ परिवर्तन किया है । प्रवर समिति ने एक बात और भी की है, उस ने गोत्रजों और बन्धुओं की कड़ियों की संख्या कम कर दी है जो मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी हो सकते हैं, और कमेटी ने अन्य उत्तराधिकारियों को भी हटा दिया है जैसे कि वे उत्तराधिकारी जो सम्बन्धी नहीं है और जैसे स्वयं ब्रह्मचारी, गुरु तथा अन्य । प्रवर समिति ने उत्तराधिकारियों की संख्या कम क्यों की है इसका कारण जैसा कि मूल बिल में बताया गया है वह यह है । इस कोड के अधीन हम प्रत्येक हिन्दू को एक वसीयत करने का अधिकार दे रहे हैं । एक बड़े महत्वपूर्ण पत्र में जिसका नाम 'जर्नल आफ कम्परेटिव लेजिस्लेशन' अर्थात् तुलनात्मक कानून का पत्र है, समालोचना की गई है । जिसमें एक प्रसिद्ध वकील ने कहा है कि जब आप एक वसीयत करने का अधिकार देते हैं तो उत्तराधिकारियों की एक इतनी लम्बी सूची निर्धारित करना अनावश्यक है जो मृत व्यक्ति से १४ वीं कड़ी तक पहुंचती है । यदि मृत व्यक्ति एक ऐसे पुरुष में दिलचस्पी रखता है जो उसकी १४वीं कड़ी में उनका सम्बन्धी है और उसकी मृत्यु के समय जीवित है तो वह एक वसीयत कर सकता है और उस विशेष व्यक्ति को

जिसमें उसकी दिलचस्पी है, अपनी सम्पत्ति का एक भाग दे सकता है। यदि मृत व्यक्ति ने ही अपने जीवन काल में एक ऐसे सम्बन्धी का उल्लेख नहीं किया जो १४ वीं कड़ी में उसका सन्बन्धी है तो फिर ऐसा कोई विशेष कारण नहीं कि केवल उत्तराधिकारी का अभाव होने से ही उस व्यक्ति को एक भाग दिया जाय। इस कारण प्रवर समिति ने यह व्यवस्था स्वीकार की है।

मैं सभा का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं कि विधवाओं के विषय में प्रवर समिति ने यह शर्त लागू की है कि पुनर्विवाह कर लेने पर एक विधवा को उत्तराधिकार का अधिकार नहीं रहेगा। पुत्री के भाग के विषय में जो निस्सन्देह मूल बिल में भी विद्यमान था, प्रवर समिति ने कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है। मूल बिल में कहा गया था कि पुत्री को पुत्र के भाग के आधे के समान एक भाग मिलेगा और स्त्री को (स्त्री धन) सम्पत्ति की उत्तराधिकार पीढ़ी निश्चय करने में निष्पक्ष न्याय के लिये यह व्यवस्था भी की गई कि इस अवस्था में पुत्री को जितना भाग मिलेगा उससे आधा पुत्र को मिलेगा जिससे कि पुत्री को पिता की सम्पत्ति में और पुत्र को माता की सम्पत्ति में आधा भाग मिलेगा। मैं नहीं कह सकता कि व्यवस्था न्यायसंगत नहीं थी किन्तु प्रवर समिति ने अपने उत्साह में पिता की सम्पत्ति में पुत्र के भाग से आधे, पुत्री के भाग को बढ़ा कर अब पुत्र के भाग के बराबर ही कर दिया है।

एक माननीय सदस्य: पुत्र को भी भाग दिया गया है।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: मैं यह जानता हूं। परिवारोंके उत्तराधिकार के सम्बन्ध में प्रवर समिति ने केवल दो परिवर्तन किये हैं। वर्तमान नियम के अनुसार कुटुम्बों के उत्तराधिकार के मामले में एक स्त्री के पति की स्थिति बहुत पीछे है और वह धारा पुरानी राव कमेटी द्वारा सम्मिलित की गई थी। प्रवर समिति ने अनुभव किया कि वह न्याय नहीं है क्योंकि ऐसा हो सकता है और प्रायः यह सम्भव है कि बहुत सारी सम्पत्ति जो स्त्री धन कहलाती है या वह सम्पत्ति जो एक स्त्री के हाथ में आती है वह अधिकांश में पति से प्राप्त होती है और यदि पति सम्पत्ति का प्रधान

स्रोत है तो वह स्त्री को मिलती है और तब यह उचित नहीं कि उसे अन्य उत्तराधिकारियों को दिया जाय। परिणामतः प्रवर समिति ने वह व्यवस्था परिवर्तित कर दी और पति को अन्य स्त्री धन उत्तराधिकारियों के समान ही कर दिया जिससे कि अब पति स्त्री धन सम्पत्ति के भागी एक स्त्री के उत्तराधिकारियों के साथ सम्पत्ति का भागी होता है। जैसा कि मैंने कहा कि क्योंकि इससे पिता की सम्पत्ति में पुत्री का भाग बढ़ गया इसलिये उन्होंने माता के स्त्री धन में पुत्र का भाग पुत्री के समान कर दिया।

श्री डिप्टी स्पीकर: उन्होंने पुत्र और पुत्री को बराबर कर दिया।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: पालन-पोषण सम्बन्धी कानून में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया गया है जो इस सभा के समक्ष उल्लेखनीय हो। मैं अब संयुक्त परिवार के प्रश्न को लेता हूं। ऐसा कहा गया है कि प्रवर समिति से वापस आने पर बिल में संयुक्त परिवार सम्बन्धी ऐसी धाराएँ हैं जो बिल्कुल नई हैं। मैं इस धारणा का खंडन करना चाहता हूं। प्रवर समिति ने कोई परिवर्तन नहीं किया है। राव कमेटी ने जैसा बिल बनाया था उसमें मिताक्षरा संयुक्त परिवार की धारायें मूल रूप में विद्यमान थीं और ६ अगस्त को सभा के सामने बिल पेश किया गया था जिसे सभा ने स्वीकार किया था और प्रवर समिति को भेज दिया था।

कुछ माननीय सदस्य: ६ अप्रैल।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: इसलिये पहले मेरा यह कहना है कि इस प्रवर समिति ने कोई नया परिवर्तन नहीं किया है। प्रवर समिति ने केवल दो नई उपधारायें—उपधारा संख्या ८८ और उपधारा संख्या ८९ जोड़ दी हैं। उपधारा संख्या ८८ धार्मिक कर्तव्यों के सिद्धान्त के सम्बन्ध में है। उपधारा संख्या ८९ संयुक्त परिवार के ऋणों को अदा करने के संयुक्त परिवार के दायित्व के सम्बन्ध में है। इन उपधाराओं को सम्मिलित करना आवश्यक था। क्योंकि जब एक बार आप दाय सम्पत्ति को विभक्त कर देते हैं। तब धार्मिक कर्तव्य के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई निश्चित व्यवस्था करना आवश्यक नहीं क्योंकि पवित्र कर्तव्य का सिद्धान्त वहीं आवश्यक है जहां उत्तरजीवी सम्पत्ति हो। क्योंकि जब उत्तरजीवी के नाते 'अ' को 'ब' की सम्पत्ति मिलती

है और 'ब' की सम्पत्ति पर ऋण चढ़ा हुआ है तो 'अ' पर एक दायित्व लागू करने के लिये कोई विशेष सिद्धान्त आवश्यक नहीं, क्योंकि एक व्यक्ति को उत्तराधिकार में सभी प्रकार की जो सम्पत्ति मिलती है, उसका वह लाभ भी उठाता है और भार भी। किन्तु मिताक्षरा के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक साझीदार को उत्तरजीवी सम्पत्ति मिलती है जो मृत व्यक्ति की नहीं होती, इस सम्बन्ध में पटना हाईकोर्ट और बम्बई हाईकोर्ट बार ने बहुत जोर दिया है कि इन दो चीजों का जिनका आशय संयुक्त परिवार के मिताक्षरा सिद्धान्त में निहित है, कोड में निश्चित उल्लेख करना वांछनीय है जिससे कि कभी कानूनी व्याख्या का प्रश्न उपस्थित होने पर किसी प्रकार के झगड़े, संदेह या विवाद का अवकाश न रहे। क्योंकि कोड का एक उद्देश्य कानून को न केवल वकीलों के लिये ही अपितु साधारण नागरिकों के लिये स्पष्ट करना है और चूंकि पटना हाईकोर्ट तथा बम्बई हाईकोर्ट बार जैसी प्रामाणिक संस्थाओं ने यह सुझाव रखा इसलिये हमने इन दो चीजों को सम्मिलित करना वांछनीय समझा अर्थात् धार्मिक कर्तव्य के मौलिक आधार पर ऋण अदा करने का कोई दायित्व न होना और परिवार के प्रारम्भिक ऋणों को अदा करने की जिम्मेवारी। इसके अतिरिक्त कोई भी परिवर्तन नहीं किया गया है। यदि अब भी इस विषय में मेरे कुछ मित्रों को सन्देह हो कि हमने मिताक्षरा के संयुक्त परिवार के सम्बन्ध में आधारभूत परिवर्तन किये हैं तो मैं उनका ध्यान धारा ८६ (भाग ५ संयुक्त परिवार सम्पत्ति) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। प्रवर समिति से वापस आने पर नये बिल की धारा ८६ अक्षरशः वही है, साधारण शाब्दिक परिवर्तन हुए हैं, जैसा कि भाग ३ (अ) धारा २, राव कमेटी द्वारा निर्मित मूल बिल के १२ वें पृष्ठ पर। इसी प्रकार संयुक्त परिवार विषयक धारा ८७ भाग ३ (अ) धारा २, पृष्ठ १ के जैसा है। यदि कोई व्यक्ति इन दोनों को मिलाये तो मुझे विश्वास है कि वह सभा में कही गई मेरी इस बात को स्वीकार करेगा कि प्रवर समिति ने यह कोई नई बात नहीं की है किन्तु वे राव कमेटी द्वारा बनाये गये मौलिक बिल के अंग है।

राव कमेटी की रिपोर्ट (पृ० १३) का उद्धरण देकर मैं इस विषय में होने वाले और अधिक संदेह को दूर कर देना चाहता हूं। इस रिपोर्ट के पैराग्राफ ५१ में इस प्रकार से कहा गया है।

ड्राफ्ट कोड के विषयों के सम्बन्ध में जिन मुख्य प्रस्तावों पर मतभेद प्रकट हुआ है वे निम्न हैं :

१. जन्मगत अधिकार और उत्तरजीवी सिद्धान्त की समाप्ति और मिताक्षरा प्रान्तों में मिताक्षरा के स्थान पर दायभाग।

२. पुत्री को आधा भाग देना।

३. हिन्दू स्त्री के सीमित सम्पत्ति अधिकार को पूर्ण सम्पत्ति अधिकार में बदल देना।

४. कानूनी तौर पर एक विवाह की व्यवस्था।

५. तलाक के लिये कुछ धाराओं की व्यवस्था।

मेरा विचार है कि माननीय सदस्य यह जानते हैं कि राव कमेटी ने अपना कार्य प्रारम्भ करते हुए इस देश में सबको पूरी तरह से यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्होंने जो कोड बनाया है और बाद में जिसे उन्होंने एक निश्चित रूप दिया हैं, उसमें विशेष व्यवस्था विद्यमान है। मुझे इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि इस सभा द्वारा नियुक्त संयुक्त प्रवर समिति, राव कमेटी और शासनादेश द्वारा इस सरकार द्वारा पहले संकलित किये गये प्रमाणों को यदि किसी व्यक्ति ने पढ़ा है तो वह यह अनुभव करेगा कि कोड के इस भाग की ओर ज़रा भी ध्यान देने वाला सभा में या सभा के बाहर ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसकी यह भ्रान्तिमूलक धारणा हो कि राव कमेटी ने इस साझेदारी को नष्ट न किये जाने का निश्चय या प्रस्ताव किया था। इसलिये यह प्रवर समिति द्वारा की गई कोई नई चीज़ बिलकुल नहीं है।

हिन्दू कोड के लागू होने के सम्बन्ध में प्रवर समिति ने कुछ परिवर्तन किये हैं। राव कमेटी के बिल में एक व्यवस्था यह थी कि उन प्रदेशों में बिल लागू नहीं होना चाहिये जहाँ मरुमक्कतायम् और अलियासन्तानम् कानून लागू होते हैं।

मैं किसी अवज्ञा के बिना यह कहना चाहता हूं कि

प्रवर समिति अपने उत्साह में औचित्य की सीमाओं का अति-क्रमण कर इस परिणाम पर पहुँची कि कोई भी प्रदेश इस कोड के लागू होने से मुक्त नहीं होना चाहिये। परिणामतः उन्होंने उस व्यवस्था को हटा दिया।

श्री डिप्टी स्पीकर : समानरूपता रखने के लिये ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : मैं नहीं जानता कि यह ठीक किया गया या गलत; एक ऐसे मामले में जिस पर बाद में सभा विचार करेगी।

पं० मुकुटबिहारी लाल भार्गव (अजमेर-मेरवाड़ा) : क्या मैं पूछ सकता हूँ कि माननीय वक्ता उन विचारों से असहमत थे ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : सम्भवतः बाद में मैं सहमत हूँगा। मेरा मस्तिष्क विचार शून्य नहीं है किन्तु अब भी मैं अन्य बातों पर विचार कर सकता हूँ।

श्री एच० वी० कामठ : एक खाली दिमाग नहीं।

पं० ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : साधारण) : मेरी सम्मति में प्रत्येक प्रश्न पर

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : श्रीमान्। साधारणतः मैंने जो भाषण दिया है। वह उचित ही नहीं है अपितु इस अवसर के लिये पर्याप्त भी है। किन्तु मेरे लिये यह तथ्य छिपाना व्यर्थ होगा कि यदि बहुत अधिक नहीं तो सभा में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें बिल के कुछ भागों पर कुछ खेद है। और न मैं अपने आप से यह बात छिपा ही सकता हूँ कि सभा से बाहर बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी बिल में केवल दिलचस्पी ही नहीं है किन्तु इसके विषय में बहुत अधिक चिन्तित हैं। इसलिये यदि आप आज्ञा दें तो मुझे विवाद के, उन प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें कह देना उचित ही होगा कि जिन्हें मैं बिल के तैयार होने की अवस्था से अब तक कई समाचार पत्रों में देखता आया हूँ। इस विषय को भी मैं एक एक भाग और एक एक धारा करके लूंगा। मैं केवल उन्हीं चीजों को लूंगा जिन्हें विवाद का प्रश्न समझा गया है। विवाह और तलाक को मैं लेता हूँ। इस विषय में मैं विवाद की तीन बातें अनुभव करता हूँ। विवाद का पहला विषय एक वैध विवाह के लिये आवश्यक शर्त के रूप में जातों को तोड़ देना है; विवाह का दूसरा

विषय एक विवाह का नियम है; और विवाद का तीसरा विषय तलाक की आज्ञा है।

मैं विवाद के पहिले विषय को लेता हूँ अर्थात् जात-पात के बन्धनों को समाप्त कर देना। जहां तक इस बिल का सम्बन्ध है वहां तक यह नवीन और पुरातन के बीच एक प्रकार का समझौता प्राप्त करना चाहता है। बिल में कहा गया है। कि यदि एक हिन्दू समाज का कोई सदस्य रूढ़िवादी प्रथा का पालन करना चाहता है जिसके अनुसार एक विवाह तब तक वैध (जायज़) नहीं होगा जब तक कि वधू और वर एक ही वर्ण, एक ही जाति और एक ही उपजाति के न हों। इस कोड में ऐसी कोई भी बात नहीं है कि जो उसे अपनी इच्छाएं पूरी करने या जिसे वह अपना धर्म समझता है उसका पालन करने से रोक सके। इसी प्रकार यदि एक सुधारवादी हिन्दू जो वर्ण जाति और उपजाति में विश्वास नहीं रखता, वह अपने वर्ण, अपनी जाति और अपनी उपजाति से बाहर की एक लड़की से शादी करना चाहता है तो कानून उसके विवाह को भी वैध (जायज़) मानता है। जहां तक विवाह कानून का सम्बन्ध है वहां तक इसलिये किसी प्रकार की कोई मजबूरी नहीं है। अपने धर्म के अनुसार जैसा उचित समझे वैसा करने के लिये रूढ़िवादी पूर्ण स्वतंत्र है। सुधारक लोग जो धर्म का अनुसरण नहीं करते किन्तु जो तर्क और अन्तःकरण का अनुसरण करते हैं उन्हें अपने तर्क और अन्तःकरण का अनुसरण करने की स्वतंत्रता दी गई है।

श्री महावीर त्यागी (संयुक्त प्रान्त : साधारण) : यदि उनकी आत्मा उन्हें प्रेरित करे तो क्या वे अपने धर्म से बाहर भी विवाह कर सकते हैं?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : इसके लिये हम एक और बिल बनाएंगे। मैं नहीं जानता कि हमारे माननीय मित्र श्री त्यागी अविवाहित हैं। यदि ऐसा है तो मैं इस कार्य में शीघ्रता करूंगा।

श्री महावीर त्यागी : मैं अन्य व्यक्तियों के लिये रास्ता बनाना चाहता हूँ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : परिणामतः विवाह कानून से हिन्दू समाज में पुरानों (रूढ़िवादियों) और नयों (आधुनिक विचार वालों) के मध्य प्रतियोगिता आरम्भ हो जायगी। और हमें आशा है कि नये पथ का अनुसरण करने वालों की अन्ततोगत्वा

विजय होगी। किन्तु यदि वे ऐसा नहीं करते तो हम देश में दो प्रकार की विवाह प्रणालियों को चलने देने के लिये पूर्णतया तत्पर हैं और कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार इनमें से चुनाव कर सकता है। इसमें शास्त्रों और स्मृतियों का किसी प्रकार का उल्लंघन नहीं है।

एक पत्नी रखने की प्रथा के अनुसार शायद यह नवीन बात हो। मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरे विचार से सभा का कोई भी सदस्य प्रचलित प्रथा अथवा शास्त्रों के आधार पर यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि एक हिन्दू पति को हमेशा कई पत्नियां रखने का निर्बाध तथा बिना किसी शर्त के अधिकार प्राप्त था। ऐसा कभी नहीं था। आज भी दक्षिण भारत के कुछ भागों में नाट्टुकोट्टइ चेट्टियारों में कुछ ऐसे हैं जिनमें यह प्रथा प्रचलित है। यह मैं केवल सुनी हुई बात के आधार पर नहीं कह रहा हूँ वरन् प्रिवी कौंसिल की रिपोर्ट में यह बात विद्यमान है। किन्तु इन लोगों में प्रथा यह है कि अपनी प्रथम पत्नी से स्वीकृति प्राप्ति किये बिना कोई भी पति दूसरी शादी नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि स्वीकृति प्राप्त करने पर उसे अवश्य ही अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग अपनी पहली पत्नी के नाम कर देना पड़ता है जिसे तामिल भाषा में "मोट्पु" कहते हैं। उस सम्पत्ति पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है क्योंकि उसकी स्वीकृति प्राप्त करने के उपरांत यदि उसका पति उससे दुर्व्यवहार करता है तो अपने पास स्वावलम्बन के लिये कुछ आर्थिक सहायता होने से वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन यापन कर सकती है। मैं आपको इस बात का उदाहरण दे रहा हूँ कि बिना शर्त के बहु विवाह करने का अधिकार कहीं नहीं है।

दूसरा उदाहरण मैं कौटिल्य के अर्थशास्त्र से देना चाहता हूँ। मैं नहीं जानता कि सभा के कितने सदस्यों ने यह पुस्तक पढ़ी है, मैं समझता हूँ कि कई व्यक्ति इसे पढ़ चुके हैं। यदि उन्होंने पढ़ा है तो वे लोग यह समझते होंगे कि कौटिल्य ने दूसरी पत्नी से शादी करने का अधिकार बहुत सीमित रखा था प्रथम तो पहले दस या बारह वर्ष तक कोई पुरुष दूसरी

शादी नहीं कर सकता क्योंकि इस अवधि में यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाना चाहिये कि स्त्री बच्चे पैदा करने के अयोग्य है। यह प्रथम शर्त थी। दूसरी शादी करने के सम्बन्ध में कौटिल्य ने जो दूसरी शर्त रखी थी वह यह थी कि शादी के समय स्त्री को जो स्त्रीधन प्राप्त हुआ था, वह सब उसको लौटा दिया जाय। ये दो शर्तें पूरी करने पर ही कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में एक हिन्दू पति को दूसरा विवाह करने का अधिकार दिया गया है।तीसरे, हमारे अपने देश के विभिन्न प्रांतों में पास हुए क़ानूनों के अनुसार एक विवाह ही स्वीकार किया गया है। उदाहरणतया, मरुमक्कतायम् तथा अलियासंथानम् क़ानून के अनुसार वैवाहिक जीवन के लिये एक विवाह का नियम ही निर्धारित किया गया है। इसी प्रकार बम्बई, मद्रास तथा बड़ौदा में भी हाल में एक विवाह का कानून पास किया गया है।

मैंने जो उदाहरण दिये हैं उनसे मुझे आशा है सभा यह समझ लेगी कि हम कोई महान् अथवा क्रांतिकारी परि-वर्तन नहीं कर रहे हैं। इसकी पुष्टि के लिए हमारे सम्मुख विभिन्न सरकारों द्वारा पास किये गये क़ानूनों तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र के समान शास्त्रों के उदाहरण विद्यमान हैं। यदि मैं और अधिक आगे बढ़ूँ तो मैं यह कहूँगा कि हमारे सम्मुख सम्पूर्ण विश्व का उदाहरण विद्यमान है क्योंकि सब जगह वैवाहिक सम्बन्ध के लिये एक विवाह ही सर्वोचित सिद्धान्त माना गया है।

श्री देशबन्धु गुप्त : मुस्लिम क़ानून के विषय में आपका क्या विचार है ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : जब हम मुस्लिम कानून पर विचार करेंगे उस समय में उसके सम्बन्ध में बताऊँगा।

तलाक के प्रश्न के सम्बन्ध में भी मैं सभा से यह कहना चाहता हूँ कि इसमें कोई नयी बात नहीं है। सभा के सब लोग यह जानते हैं कि शूद्रों में प्रथा के अनुसार तलाक दिया जा सकता है। शूद्रों की कितनी संख्या है ? सम्भवतः अब तक किसी ने भी शूद्रों की कुल जनगणना नहीं की, किन्तु इसमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है कि हिन्दुओं की कुल

जनसंख्या में ६० प्रतिशत शूद्र हैं। जिनको हम सवर्ण वर्ग कहते हैं, वे इस देश की कुल जनसंख्या का १० प्रतिशत भाग भी नहीं है और इस सम्बन्ध में मैं माननीय सदस्यों से ये प्रश्न पूछना चाहता हूँ : क्या आप ६० प्रतिशत जन संख्या के क़ानून को सब पर लागू होने वाला क़ानून बनाना चाहते हैं ? अथवा १० प्रतिशत जनसंख्या के क़ानून को ६० प्रतिशत जन-संख्या पर लागू करना चाहते हैं ? यह एक साधारण प्रश्न है। जिसका प्रत्येक सदस्य को अवश्य उत्तर देना चाहिये, और वह दे सकते हैं।

जहां तक सवर्ण वर्गों का सम्बन्ध है, यदि हम नारद स्मृति अथवा पाराशर स्मृति के युग का उदाहरण लें, तो हमें यह ज्ञात होगा कि स्मृतियों के अनुसार पति द्वारा पत्नी को छोड़ देने पर पति की मृत्यु हो जाने पर, पति के परिव्राजक हो जाने पर पत्नी पति को तलाक दे सकती थी, और दूसरे पति से शादी कर सकती थी। शायद आगे किसी अवसर पर मैं आपके संमुख आपके शास्त्रों के उदाहरण दूं जिनसे यह ज्ञात होता हो कि······

एक माननीय सदस्य : आपके शास्त्र ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : हां, क्योंकि मैं इतर जाति का हूँ। मैं ऐसे उद्धरण दूंगा जिनसे ज्ञात होगा कि इस देश में किस प्रकार दुर्भाग्यवश उपेक्षा से अथवा अनजाने में, प्रथाओं द्वारा शास्त्रों के कथनों को, जो पूर्णतया उचित वैवाहिक सम्बन्धों के पक्ष में थे, दबाया जाने दिया गया है। अतः सभा से मेरा यह निवेदन है कि विवाह और तलाक के क़ानून में जो नये सिद्धान्त जोड़े गये हैं तथा जो कुछ भी किया गया है, वह सब न्यायसंगत तथा उचित है। हमारे शास्त्र इसके पक्ष में नहीं हैं वरन् सम्पूर्ण विश्व का अनुभव भी इसी का समर्थन करता है।

गोद लेने के सम्बन्ध में भी तीन विवादपूर्ण बातें हैं। एक तो यह है कि पुराने हिन्दू क़ानून के अनुसार जायज़ गोद लेने के लिये उसी वर्ण का होना हम आवश्यक नहीं मानते। इस विषय में भी हम उसी नियम का अनुसरण करते हैं

जो हमने विवाह के सम्बन्ध में माना है। यहां फिर मैं यह कहूँगा कि यदि एक ब्राह्मण एक ब्राह्मण बालक को गोद लेना चाहता है, तो वह स्वतंत्रतापूर्वक ऐसा कर सकता है। यदि एक कायस्थ एक कायस्थ बालक को गोद लेना चाहता है, तो वह ऐसा करने के लिये स्वतंत्र है। यदि एक शूद्र अपने ही वर्ण के किसी बालक को गोद लेना चाहे, तो वह स्वतंत्रतापूर्वक ऐसा कर सकता है। यदि एक ब्राह्मण इतना ज्ञानवान् है कि वह अपने वर्ण के किसी बालक को गोद नहीं लेता, बल्कि किसी शूद्र को गोद लेता है, तो वह ऐसा कर सकता है। अतएव, इस कार्य में किसी प्रकार की रुकावट नहीं है।

सेठ गोविन्ददास : आप ऐसे ब्राह्मण को ज्ञानवान् क्यों मानते हैं।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : यह मैं नहीं जानता। मेरे दृष्टिकोण से वह निश्चय ही ज्ञानी है, आपके दृष्टिकोण से वह भले ही बहुत अज्ञानी हो। यह मतभेद की बात है।

गोद लिये जाने से पहले विधवा द्वारा किये गये साम्पत्तिक हस्तान्तरणों के सम्बन्ध में मुतबन्ना (गोद लिये गये पुत्र) के उन सब के विरुद्ध आपत्ति करने के अधिकार को सीमित करने का जहां तक प्रश्न है, मैं नहीं समझता उसमें विवाद की कोई भी गुंजाइश है। इस व्यवस्था को कायम रखने का कोई कारण नहीं है कि गोद लेने वाले पिता की मृत्यु हो जाने के एक दम बाद से ही मुतबन्ना (गोद लिया जाने वाला बालक) उसका पुत्र हो जाय। यह कोरी कल्पना है। इसका कोई महत्त्व नहीं है। यह केवल कल्पना ही नहीं है बल्कि यह एक ऐसी बात है जिससे बहुत मुकदमेबाज़ी और कठिनाइयां पैदा होती हैं। अतएव, यह ठीक है कि गोद लेने और सम्पत्ति का अधिकार सौंपने के कार्य एक साथ ही हों। मेरे विचार से सभा का ऐसा कोई सदस्य नहीं होगा, जो यह सोचेगा कि इस समय हमें यह व्यवस्था स्वीकार नहीं करनी चाहिये।
(श्री बी० दास० : हम सब इसको स्वीकार करते हैं।)

इसी प्रकार, जैसा मैं बता चुका हूँ, गोद लिये गये बालक द्वारा अपनी माता के सम्पूर्ण अधिकार ले लेने और उसको अपनी इच्छा पर जीवन यापन के लिये निर्भर रखने

के अधिकार को सीमित रखने के सम्बन्ध में मेरे विचार से, सभा का कोई भी सदस्य ऐसा नहीं होगा जो यह सोचेगा कि किसी भी तरह से इस परिस्थिति को उचित माना जा सकता है। मैं यह समझता हूँ कि गोद लेने के अधिकार को, जिसको कट्टरपन्थी व्यक्ति बहुत अच्छा मानते हैं, कायम रखना ठीक ही होगा, किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता गोद ही क्यों लिया जाय। हममें से अधिकांश गोद लेने वाले इतने महान् नहीं होते कि उनके नाम इतिहास में आएं। व्यक्तिगत रूप से मैं स्वयं यह नहीं चाहता कि मेरा नाम इतिहास में वर्णित हो क्योंकि सम्भवतः मेरा कार्य अत्यन्त नगण्य है। मैं हिन्दू जाति का एक असामान्य सदस्य हूँ। किन्तु ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जिनका कार्य इतिहास में वर्णनीय नहीं है, और तब भी न जाने क्यों वे एक मूर्ख, अशिक्षित और चरित्रहीन बालक को गोद ले लेते हैं, और उसे वह एक निरीह स्त्री से अधिक अधिकार दे देते हैं, जिसको वह बाद में उसकी सब सम्पत्ति से वंचित कर सकता है। अतएव मेरा यह निवेदन है कि यदि गोद लेने के सम्बन्ध में आप अपनी पुरानी भावना को ही कायम रखना चाहते हैं, तो कम से कम ऐसी व्यवस्था कर दें कि मुतबन्ना (दत्तक) अपनी माता की सम्पूर्ण सम्पत्ति को, जो उसके जीवन-यापन का मुख्य आधार है, पूरी तरह हड़प न करले। मेरा विचार है कि मुतबन्ने (दत्तक) के अधिकारों का यह सीमाबन्धन विवाद का विषय नहीं होगा।

रीति-रिवाजों के अनुसार गोद लेने की प्रथा को समाप्त करने के प्रश्न के सम्बन्ध में मैं दो बातें कहना चाहूँगा। इसके विषय में सभा एक तर्क को शायद पसन्द करेगी। वह यह है। कोड रीति-रिवाज के क़ानून के अनुकूल नहीं होता। यह एक आधारभूत सिद्धान्त है। यदि आप कोड के साथ-साथ रीति-रिवाजों को भी बढ़ने देते हैं, और उन के कारण कोड के विरुद्धकार्य करने देते हैं, तो कोड बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि रीति-रिवाजों की हमेशा कोड पर विजय होगी, और इससे कोड का कोई महत्त्व नहीं रहेगा। इस विषय में कृत्रिम, गोधा तथा द्वैमुष्यायन ढंग के गोद लेने के

रिवाजों आदि के सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि ये वास्तव में गोद लेना नहीं है। प्रिवी कौंसल ने एक निर्णय में यह निश्चित रूप से कहा है कि गोद लेना केवल एक धार्मिक बात है। गोद लिये गये पुत्र द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करना अप्रधान बात है। उसे सम्पत्ति मिल सकती है, और नहीं भी। और यदि उसे सम्पत्ति न भी मिले, तब भी धार्मिक दृष्टि से उसका मुतबन्ना होना जायज़ हो सकता है।

अतएव मेरा निवेदन यह है कि इस प्रकार प्रथा के अनुसार गोद लेना केवल दो परिवारों द्वारा सम्पत्ति को अपने तक ही रखने का ढंग है। जब हमने यह विधान स्वीकार कर लिया है कि सम्पत्ति को एक अथवा कुछ आदमियों द्वारा अपने हाथ में रखने के कार्य को रोकने के लिये सरकार द्वारा व्यवस्था की जानी चाहिये, तो द्वैमुष्यायन ढंग के गोद लेने के तरीकों को कैसे रहने दिया जाय, जिसके अनुसार दो परिवार आपस में सम्पत्ति को बाटने का केवल समझौता कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग वास्तव में उचित ढंग से गोद लेना चाहते हैं वे नियमों तथा कानूनों द्वारा स्वीकृत दत्तक ढंग से गोद क्यों नहीं लेते।

अब मैं पैतृक सम्पत्ति के कानून से सम्बन्धित विवादपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में बताऊंगा। यह प्रश्न उठाया जाता है कि मिताक्षरा कानून द्वारा निर्धारित पैतृक सम्पत्ति की व्यवस्था को इस बिल द्वारा क्यों समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस विषय को अच्छी तरह अध्ययन करने के बाद मैं यह समझता हूँ कि इस पर तीन दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। प्रथम तो यह कि तथा-कथित पैतृक सम्पत्ति के अन्तर्गत कितनी सम्पत्ति मानी गई है। यदि पैतृक सम्पत्ति के अन्तर्गत किसी मनुष्य की सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग सम्मिलित है, तो निश्चय ही इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। अतएव, इस प्रश्न का यह प्रथम विचारणीय अंग है।

तथा-कथित पैतृक सम्पत्ति को कायम रखने के सम्बन्ध में हमें जिस दूसरी बात पर विचार करना चाहिये वह यह

है कि क्या कोई दायाद व्यक्तिगत रूप से सम्पत्ति का हस्तान्तरण कर सकता है, अथवा नहीं। तीसरे, क्या कोई दायाद पैतृक सम्पत्ति की व्यवस्था को स्वयं तोड़ सकता है। यदि पैतृक कहलायी जाने वाली सम्पति में सम्पत्ति का थोड़ा सा भाग ही है, तो फिर भिन्न-भिन्न प्रश्न उठ खड़े होंगे। इसी प्रकार यदि वर्तमान हिन्दू कानून के अन्तर्गत किसी दायाद को पैतृक सम्पत्ति की व्यवस्था तोड़ने का पुश्तैनी अधिकार प्राप्त है तो, मेरा निवेदन है कि बिल द्वारा पैतृक सम्पत्ति की व्यवस्था को समाप्त करने के प्रश्न का महत्त्व सभा के सदस्यों तथा बाहरी लोगों द्वारा दिये गये महत्त्व से बहुत कम हो जाता है।

अब मैं प्रथम प्रश्न पर आता हूं। एक दायाद पैतृक साम्पत्तिक व्यवस्था का सदस्य होते हुए भी कितनी गैर पैतृक सम्पत्ति का मालिक हो सकता है? मेरे जिन मित्रों ने इस विषय पर ध्यान दिया है, और यह जानते हैं कि हिन्दू कानून के अन्तर्गत इसकी क्या स्थिति है, वे यह जानेंगे कि दायाद होते हुए भी एक व्यक्ति अलग सम्पत्ति का मालिक हो सकता है। एक दायाद दो तरह की सम्पत्ति रख सकता है, एक पैतृक सम्पत्ति और दूसरी उसकी निजी सम्पत्ति जो तथा-कथित उत्तराधिकार के अनुसार नहीं मिलती।

मैं सभा को यह बताना चाहता हूँ कि एक दायाद किस प्रकार की कितनी सम्पत्ति का मालिक हो सकता है। हिन्दू कानून पर लिखी गयी वर्तमान पुस्तकों में यह बताया गया है कि एक दायाद निम्न प्रकार की सम्पत्ति का मालिक हो सकता है। प्रथम, एक हिन्दू द्वारा प्राप्त की गयी अपने पिता, दादा तथा परदादा की सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति। यदि एक हिन्दू को एक ऐसे व्यक्ति से सम्पत्ति मिलती है जो उसका पिता अथवा दादा अथवा परदादा नहीं है, और वह सम्पति उसके अधिकार में है तो वह उसकी अलग सम्पत्ति है, और वह पैतृक सम्पत्ति में नहीं गिनी जायगी। दूसरे, नाना से प्राप्त सम्पत्ति, तीसरे, पिता द्वारा दी गयी पैतृक चल सम्पत्ति की भेंट, चौथे, सरकार द्वारा दी

गयी सम्पत्ति एक दायाद की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाती है न कि पैतृक सम्पत्ति। पांचवें, ऐसी पैतृक सम्पत्ति जो किसी अन्य के हाथ में चली गयी हो, किन्तु बाद में यदि किसी ने बिना परिवार की सहायता से पुनः प्राप्त कर लिया हो, तो वह उसकी निजी सम्पत्ति होगी। छठे, उसकी अलग सम्पत्ति की आय और उससे खरीदी गयी अन्य सम्पत्ति। ये भी निजी सम्पत्ति कहलाएंगी। सातवें, यदि किसी दायाद वारिस का कोई पुत्र नहीं है तो विभाजन होने पर उसका हिस्सा। आठवें, गोद लेने का अधिकार रखने वाली विधवा न होने की अवस्था में अवशिष्ट दायाद की सम्पत्ति। नवें, संयुक्त पारिवारिक दायाद की अलग आमदनी तथा दसवें, विद्या के लाभ। उपर्युक्त १० श्रेणियों के अन्तर्गत आने वाली विशाल सम्पत्ति मिताक्षरा कानून के अनुसार एक दायाद की निजी सम्पत्ति मानी जाती है। वह पैतृक सम्पत्ति नहीं कहलाती।

एक उदाहरण द्वारा मैं इसको स्पष्ट करना चाहता हूँ। हमारे सचिवालय में सैकड़ों क्लर्क हैं, कुछ कम वेतन लेते हैं, और कुछ अधिक वेतन लेते हैं, जो मंत्रियों के वेतन से भी अधिक हैं ४०००) रुपये।

माननीय सदस्य : क्लर्क ? क्या वे क्लर्क हैं ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : मेरा मतलब अफसरों से है। (हंसी) एक तरह से वे प्रतिष्ठित क्लर्क हैं। (पुनः हंसी) सभा को मैं यह बात समझाना चाहता हूँ कि ये बड़े-बड़े वेतन विद्या के कारण प्राप्त होने वाला लाभ है जो कुछ व्यक्तियों को ४०००) रुपये तक मिलता है। यदि वास्तव में इन सब का एक संयुक्त परिवार होता, तो यह रुपया सम्मिलित परिवार पर व्यय होता। किन्तु होता क्या है ? कुछ वर्ष पूर्व इसी सभा में, मैं यह नहीं कहता कि इन्हीं सदस्यों द्वारा, विद्या द्वारा प्राप्त लाभ का एक कानून पास किया गया, जिसके अनुसार विद्या द्वारा प्राप्त होने वाला ऐसा लाभ, जो संयुक्त परिवार की आय का प्रमुख भाग है, तथा जो पारिवारिक आय द्वारा प्राप्त शिक्षा के कारण अर्जित हुआ है, उसकी व्यक्तिगत तथा निजी आय के रूप में माना जायगा।

सभा से मेरा यह निवेदन है कि यदि उपर्युक्त दस श्रेणियों में वर्णित सम्पत्ति को मिताक्षरा के मौलिक कानूनों के अनुसार निजी सम्पत्ति माना गया है, तो पैतृक सम्पत्ति के रूप में कहलाई जानेवाली कौन सी सम्पत्ति शेष रह जाती है। मेरा कहना है कि सम्पत्ति का बहुत थोड़ा परिमाण तथाकथित पैतृक सम्पत्ति कहलाने के लिये शेष रह जाता है। अब मैं दूसरे प्रश्न के विषय में कहूँगा। पैतृक साम्पत्तिक व्यवस्था एक बहुत संकुचित और सीमित व्यवस्था है, और यह संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है। हां, तो यह कहा जाता है कि इस व्यवस्था से हिन्दू अपनी सम्पत्ति का संरक्षण कर सकते हैं, अपने अधिकार में रख सकते हैं, सम्पत्ति के टुकड़े नहीं होते, और परिवार का कोई सदस्य लापरवाही से धन का दुरुपयोग नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में मैं सभा से यह प्रश्न पूछना चाहता हूँ: क्या वर्तमान मिताक्षरा कानून के अन्तर्गत ऐसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण अथवा दुरुपयोग नहीं हो सकता? इसका उत्तर पूर्णतया नकारात्मक है। मैं एक दो उदाहरण देता हूँ। किसी पिता को ही लीजिये। पुराना ऋण चुकाने के लिये पिता संयुक्त सम्पत्ति का हस्तान्तरण कर सकता है। इसके लिये पिता को केवल यही करना है कि वह एक व्यक्तिगत प्रोमिसरी नोट पर एक दो हजार रुपये ऋण ले ले और बाद में छः मास बाद इस पुराने ऋण को चुकाने के लिये यदि आवश्यक हो तो वह पैतृक सम्पत्ति को भी बेच सकता है। अब मैं सभा से यह निवेदन करना चाहता हूँ: क्या केवल पुराने और निजी ऋणों को चुकाने के लिये सम्पत्ति बेचने का पिता को दिया गया अधिकार उचित है। मैं सभा को यह बताना चाहता हूँ कि मिताक्षरा कानून के अन्तर्गत साम्पत्तिक हस्तान्तरण के कार्य में प्रबन्धक और पिता में अन्तर माना गया है। निश्चय ही एक प्रबन्धक तब तक पैतृक सम्पत्ति का हस्तान्तरण नहीं कर सकता, जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि पारिवारिक आवश्यकता के लिये ऐसा करना आवश्यक है। किन्तु पिता के सम्बन्ध में ऐसी कोई शर्त नहीं है। एक पिता स्वयं अपने लिये ऋण ले सकता है, और एक विशुद्ध वैयक्तिक

ऋण के लिये जो परिवार के कार्यों के लिये नहीं लिया गया वह उस सम्पत्ति को हस्तान्तरित करने का अधिकारी हो जाता है। मिताक्षरा कानून के आधीन पिता के हस्तान्तरण करने के अधिकार पर केवल एक शर्त लागू होती है, और वह यह है कि ऋण अपवित्र नहीं होना चाहिये, दुष्कार्य के लिये ऋण नहीं लिया जाना चाहिये, और यदि ऋण अपवित्र नहीं तो पिता साझे की (Coparcenary) समस्त सम्पत्ति हस्तान्तरित कर सकता है। इस विषय में कोई भी सीमा नहीं है।

इसी प्रकार पुत्र के मामले को लीजिये। मिताक्षरा कानून के अधीन भी एक पुत्र जिस समय चाहे, उसी समय परिवार की सम्पत्ति के विभाजन की मांग कर सकता है। साझी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने की युक्ति मेरी समझ में आ जाती यदि हिन्दू कानून का यह नियम होता कि किसी को सम्पत्ति हस्तान्तरित करने का अधिकार नहीं और सम्पत्ति साझे की सम्पत्ति रहनी चाहिये, किन्तु ऐसी बात नहीं है। साझी सम्पत्ति के विभाजन, टुकड़े-टुकड़े हो जाने की जड़ तो साझे में ही है क्योंकि कोपारसीनरी कानून ही सम्पत्ति के विभाजन की मांग करने और समस्त समाज को विघटित करने का एक निहित अधिकार, जन्म से ही देता है।

तीसरी बात यह है कि यदि एक पुत्र अपनी सम्पत्ति हस्तान्तरित नहीं भी करता, तो वह अपने वैयक्तिक कार्यों के लिये सम्पत्ति पर ऋण ले सकता है, और जिस ऋणदाता ने रुपया दिया है, उसे मिताक्षरा कानून के अनुसार अपने ऋण की अदायगी के लिये साझे के विभाजन के लिये मुकदमा पेश करने का पूरा अधिकार है। इसलिये मिताक्षरा कानून के अनुसार एक अजनबी व्यक्ति को साझे की सम्पत्ति को छिन्न-भिन्न करने का अधिकार है। मेरे वे मित्र जो इस सम्बन्ध में चिन्तित हैं, उनसे मैं यह पूछना चाहता हूं कि जहां पर सम्पत्ति का एक बड़ा भाग साझी सम्पत्ति से पृथक् विद्यमान है, और जहां तक साझी सम्पत्ति का सम्बन्ध है, दुष्कार्यों के लिये ऋण लेने को छोड़कर, पिता को किसी भी पाबन्दी के बिना सम्पत्ति हस्तान्तरित करने का अधिकार है, और पुत्र को

जब चाहे तब सम्पत्ति विभाजित करने का अधिकार है और पुत्र को सम्पत्ति गिरवी रखने का अधिकार है जिससे ऋणदाता विभाजन के लिये मुक़दमा कर सके; तो क्या यह सुदृढ़ पद्धति कही जा सकती है जिसमें जानबूझ कर या अनजाने गलती नहीं की जा सकती। मेरा कथन यह है कि साझी सम्पत्ति कानून जैसा है उसमें विभाजन और विघटन के तत्व विद्यमान हैं। इसलिये बिल में यह कोई बड़ी क्रान्तिकारी बात नहीं कही गई है कि भाग पृथक् पृथक् होगा। जैसा कि आज हम सब जानते ही हैं कि परिस्थिति ऐसी है कि प्रत्येक पृथक् रहना चाहता है। पिता के मरते ही पुत्र विभाजन की और पृथक् रहने की मांग करते हैं। और यह बिल आज के वर्तमान तथ्यों को कानूनी स्वीकृति देना चाहता है। बिल के इस भाग में कोई भी चीज़ आमूलचूल परिवर्तनकारी नहीं।

मैं एक बात कहना चाहता हूँ जिसे प्रायः अनुभव नहीं किया जाता। मैंने प्रारम्भ में कहा था कि साझे तथा संयुक्त परिवार के बीच एक भेद करना होगा। साझे को समाप्त करते हुए यह बिल संयुक्त परिवार की पुष्टि करता है। संयुक्त परिवार के बने रहने के मार्ग में यह बिल बाधा नहीं डालता। बात केवल इतनी है कि मिताक्षरा कानून में संयुक्त परिवार का वही आधार और वही स्वरूप होगा जो दायभाग कानून के आधीन। यह नहीं समझना चाहिये कि बंगाल में मिताक्षरा कानून प्रचलित नहीं है तो वहां संयुक्त परिवार नहीं है। वहां संयुक्त परिवार की प्रथा है। भेद केवल यह होगा कि संयुक्त परिवार के सदस्यों के अधिकार संयुक्त आसामियों के स्थान पर सम्मिलित आसामियों के रूप में होंगे। मिताक्षरा के वर्तमान और भावी कानून में केवल यही भेद होगा।

अब मैं स्त्रियों की सम्पत्ति को लेता हूँ। मैं नहीं जानता कि इस सभा के कितने सदस्य इस विषय की पेचीदगियों से परिचित हैं। जहां तक मैंने इस विषय का अध्ययन किया है वहां तक मेरा विचार है कि हिन्दू कानून में कोई विषय इतना पेचीदा और क्लिष्ट नहीं है जितना कि स्त्रियों की सम्पत्ति का विषय।

एक माननीय सदस्य : स्त्री ही के समान।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर: : स्त्री ही के समान। यदि आप यह प्रश्न पूछें कि स्त्री धन क्या है तो इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व आपको दूसरा प्रश्न पूछना पड़ेगा, और उसका उत्तर पाना होगा। सबसे पहले तो आपको यह जानना चाहिये कि क्या वह एक कुमारी है या एक विवाहित स्त्री? क्योंकि कौनसी सम्पत्ति स्त्रीधन है, और कौनसी सम्पत्ति स्त्री धन नहीं है यह स्त्री की स्थिति पर निर्भर है। कुछ सम्पत्ति स्त्रीधन होती है यदि वह कुमार्यावस्था में स्त्री को प्राप्त होती है। कुछ सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं होती यदि वह विवाह के बाद उसे मिलती है। परिणामतः यदि आप यह प्रश्न पूछें कि स्त्रीधन के उत्तराधिकार का क्रम क्या है तो आप को फिर यह प्रश्न पूछना पड़ेगा कि स्त्रीधन एक कुमारी का है या एक विवाहित स्त्री का? क्योंकि एक कुमारी के स्त्रीधन के उत्तराधिकार का क्रम एक विवाहित स्त्री के उत्तराधिकार के क्रम से बिलकुल भिन्न है। जब आप विवाहित स्त्री की सम्पत्ति के उत्तराधिकार का प्रश्न लेंगे, तो आपको फिर यह प्रश्न पूछना होगा कि क्या उसका बंगाल स्कूल से सम्बन्ध है या मिताक्षरा स्कूल से। यदि उसका सम्बन्ध मिताक्षरा स्कूल से है, तो आपको तब तक कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलेगा, जब तक कि आप और अधिक गहराई में न जांय और यह न पूछें कि उसका सम्बन्ध मिथिला स्कूल से है या बनारस स्कूल से अथवा किसी अन्य स्कूल से। यह एक बहुत पेचीदा विषय है। तब भी माननीय सदस्यों को दो बातों का ध्यान रखना चाहिये। पहली यह है कि जहां तक स्त्रियों की सम्पत्ति का सम्बन्ध है, वहां तक साधारणतया इसकी दो श्रेणियां हैं। एक श्रेणी को उसका स्त्रीधन कहते हैं और दूसरी श्रेणी विधवा की सम्पत्ति कहलाती है। दूसरी श्रेणी की सम्पत्ति वह सम्पत्ति है जो उसे अपने परिवार के एक पुरुष सदस्य से उत्तराधिकार में मिलती है और वर्तमान कानून के अनुसार उस सम्पत्ति की वह केवल अपने जीवन काल में मालिक रहती है, और बाद में वह सम्पत्ति पुरुष-सदस्य के उत्तराधिकारियों को मिल जाती है। यह स्थिति है।

इसलिये स्त्रियों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में हमारे पास दो भिन्न उत्तराधिकार के प्रकार हैं, और दो भिन्न प्रकार की सम्पत्ति, स्त्रीधन सम्पत्ति और विधवा की सम्पत्ति। स्त्रीधन सम्पत्ति के उत्तराधिकारी उस सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों से सर्वथा भिन्न और पृथक् हैं, जिसे वह एक पुरुष सदस्य से उत्तराधिकार में पाती है। इसलिये हिन्दू कानून की इस विशेष शाखा को नियमबद्ध करते हुए हमें जिस प्रश्न पर विचार करना होगा वह यह है। क्या आप इस समय वर्तमान स्त्रीधन सम्पत्ति और विधवा की सम्पत्ति इन दो मुख्य विभागों को जारी रखेंगे? दूसरे, क्या आप उत्तराधिकार की दो विधियां जारी रखेंगे? स्त्रीधन सम्पत्ति के लिये उत्ताधिकार की एक विधि, और विधवा की सम्पत्ति के लिए उत्तराधिकार की दूसरी विधि। इस कानून को नियमबद्ध करने के समय ये दो मुख्य प्रश्न पैदा होते हैं। कानून को नियमबद्ध करने के सम्बन्ध में कमेटी इस निश्चय पर पहुंची कि यदि हम वर्तमान अवस्था को जारी रहने दें, तो इसका उद्देश्य पूरा न होगा। हमें या तो यह निश्चय करना चाहिये कि स्त्री को निश्चयात्मक (निजी) सम्पत्ति का अधिकार नहीं होगा या हमें निश्चय करना चाहिये कि स्त्री को निजी सम्पत्ति का अधिकार होना चाहिये। हमें यह भी निश्चय करना चाहिये कि एक स्त्री के लिये उत्तराधिकारियों की विधि क्या होगी? वे एक जैसे होंगे या विभिन्न होंगे? साम्पत्तिक अधिकार के सम्बन्ध में कमेटी ने निश्चय किया कि उसमें एकरूपता होनी चाहिये और एकरूपता में यह व्यवस्था होनी चाहिये कि स्त्री की निजी सम्पत्ति हो।

स्त्रियों के निजी सम्पत्ति प्राप्त करने के विरुद्ध हमेशा दी जाने वाली युक्ति को मैं जानता हूँ। ऐसा कहा जाता है कि स्त्रियां दुर्बल होती हैं, उन पर सब तरह के पुरुषों का प्रभाव हो जाता है, और परिणामतः यह बड़ा खतरनाक होगा यदि स्त्रियों को संसार में सब तरह के दुष्ट पुरुषों के प्रभाव में आने दिया जाय, जो उन्हें किसी न किसी प्रकार से सम्पत्ति को बेच देने के लिये प्रभावित कर सकते हैं, जिससे कि उन्हें

भी हानि होगी और उस परिवार को भी हानि होगी, जिससे उन्हें उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिली है। कमेटी ने एक बड़े सरल ढंग से विचार किया है। कुछ मामलों में या कुछ प्रकार की सम्पत्ति के विषय में जो स्त्रीधन सम्पत्ति कहलाती है, स्मृतियां स्त्रियों को निश्चयात्मक (निजी) अधिकार देने को उद्यत हैं। एक स्त्री के अपनी स्त्रीधन सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होने का कोई प्रश्न ही नहीं होता, वह जैसे चाहे उसे बेच-बाच सकती है।

मुझे इस सभा के सामने केवल यही कहना है कि यदि स्त्री को अपनी स्त्रीधन सम्पत्ति के विक्रय आदि का अधिकार है, तो उसे विरासत में मिली हुई विधवा सम्बन्धी सम्पत्ति के विक्रय आदि का अधिकार क्यों नहीं है? बिल के विरोधी यह बतायें कि जब स्त्री अपनी सम्पत्ति के एक भाग को निबटाने की योग्यता रखती है, तो दूसरे भाग को निबटाने की योग्यता क्यों नहीं रखती? समिति ने इस पेचीदा समस्या पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया, परन्तु वह कोई सन्तोषजनक हल न निकाल सकी। अन्त में समिति इस परिणाम पर पहुँची कि यदि स्त्रियां अपनी सम्पत्ति के एक भाग को अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लाने अथवा बेचने की योग्यता एवं बुद्धि रखती हैं, तो उन्हें अपनी सम्पत्ति के दूसरे भाग को बेचने आदि के योग्य समझना चाहिए। इसी कारण से समिति ने यह नियम बनाया है कि अब स्त्रियां स्वतंत्र सम्पत्ति रख सकेंगी।

स्त्री सम्पत्ति के प्रश्न से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न पुत्री के भाग का है। यह प्रश्न साधारण नहीं, बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत तथा संसार के बहुत से लोग जिनमें रूढ़िवादी और अरूढ़िवादी सभी सम्मिलित हैं, पुत्रियां पैदा करते हैं, और वे रोके भी नहीं जा सकते। यदि पुत्रियां पैदा नहीं होतीं, तो मैं नहीं समझता इस संसार की क्या हालत होती। माता-पिता का यह धर्म है कि वे अपने पुत्रों और पुत्रियों को समान रूप से प्यार करें, परन्तु वे पुत्री को इतना प्यार करना नहीं चाहते जितना कि पुत्र को। मैं प्रवर समिति के सिद्धान्त के समर्थन

में कोई बड़ा तर्क उपस्थित करना नहीं चाहता, मैं तो बड़ी नम्रता से अपनी बात कहना चाहता हूँ। पहले तो मैं सभा को यह बताना चाहता हूँ कि पुत्री का उत्तराधिकारियों में सम्मिलित करना कोई नई बात नहीं है, जो प्रवर समिति ने की है। जो मान्य सदस्य मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार उत्तराधिकार के कानून से परिचित हैं, वे इस बात को अवश्य मानेंगे कि इन दोनों ने मिश्रित श्रेणी के उत्तराधिकारियों में पुत्री की गणना की है। सदस्यगण इस बात को जानते होंगे कि हिन्दू उत्तराधिकारियों की कई श्रेणियां हैं। इनमें से पहली श्रेणी मिश्रित श्रेणी, कहलाती है। अन्य श्रेणियां इस प्रकार हैं सपिंड, समानोदक और बन्धु। बन्धु तीन प्रकार के होते हैं : आत्मबन्धु, पितृबन्धु और मातृबन्धु। मिश्रित श्रेणी वास्तव में विशिष्ट उत्तराधिकारियों की एक ऐसी श्रेणी है, जो गोत्रज, समानोदक और बन्धु श्रेणी के उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकार सिद्धान्त से ठीक-ठीक मेल नहीं खाती। यह श्रेणी सगोत्रता और सधर्मता के दो सिद्धान्तों पर आधारित है। इस श्रेणी के उत्तराधिकारी सपिंड, समानोदक और बन्धु श्रेणी के लिये निर्धारित किसी परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते।

यदि आप मिताक्षरा और बन्धु दोनों कानूनों पर विचार करें, तो आपको मालूम होगा कि पुत्री को मिश्रित श्रेणी के उत्तराधिकारियों में रखा गया है। मिताक्षरा और दायभाग में केवल इतना अन्तर है कि दायभाग के अनुसार उत्तराधिकार के लिये आवश्यक योग्यता सम्मति प्रदान करने की क्षमता है। अतः दायभाग में अविवाहित पुत्री, विवाहित पुत्री, विवाहित पुत्रवती पुत्री, और विधवा पुत्री के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् नियम दिये गये हैं। इनमें से विवाहित पुत्रवती पुत्री को सबसे अधिक प्रधानता दी गई है, विवाहित पुत्री को उससे कम और अविवाहित पुत्री को उससे भी कम प्रधानता दी गई है। कारण यह है कि पुत्रवती विवाहित पुत्री अपने पुत्र के द्वारा अपनी सम्मति प्रकट कर सकती है। अविवाहित पुत्री पुत्ररहित होने के कारण अपनी सम्मति नहीं

दे सकती। इसी से उसे नीची श्रेणी में रखा गया है। परन्तु जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ, और जिसकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं वह यह है कि पुत्री को मिश्रित श्रेणी में रखना कोई नई बात नहीं है। मिताक्षरा और दायभाग दोनों ने उसे इसी श्रेणी में माना है। बिल की नवीनता तो केवल इस बात में है कि वह पुत्री के दर्जे को ऊंचा उठाना चाहता है। इस बिल के अनुसार पुत्र, विधवा, विधवा पुत्रवधू, मृत पुत्र का पुत्र, और मृत पुत्र के मृत पुत्र की विधवा स्त्री के साथ वह भी अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होगी।

बात यह है कि पहले और विशेष कर मिताक्षरा कानून के अनुसार किसी भी लड़की को पिता की सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिल सकता था। यह कानून १९३७ में बदल दिया गया और पुत्र के साथ विधवा, विधवा पुत्रवधू, विधवा पौत्रवधू और विधवा प्रपौत्रवधू को भी उत्तराधिकारी बना दिया गया। केवल पुत्री को यह अधिकार नहीं दिया गया। उस समय सरकार पुत्री को विधवा, विधवा पुत्रवधू और विधवा पौत्रवधू के समान अधिकार देने को तैयार न थी। अतः बिल में यदि कोई नई बात है तो यही है। इससे पुत्री का दर्जा ऊंचा होता है, यह नहीं कि पहली बार वह उत्तराधिकारिणी बनाई गई है।

अब मैं पुत्री के हिस्से पर विचार करूंगा। स्मृतियों के अनुसार पुत्री भी पुत्र के समान ही उत्तराधिकारिणी है, और अपने पिता की सम्पत्ति का चौथाई भाग ले सकती है। राव समिति ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है, और बहुत से विद्वान् शास्त्रज्ञों ने भी अपनी गवाही में यही बताया है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। याज्ञवल्क्य स्मृति और मनुस्मृति में भी ऐसा ही स्पष्ट उल्लेख है। मैंने एक बार १३७ स्मृतियां गिनी थीं। मैं नहीं समझता कि हमारे प्राचीन ऋषि स्मृतियां लिखने में इतने व्यस्त क्यों रहते थे, और वे अपना समय अन्य किसी काम में क्यों नहीं लगाते थे। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त १३७ स्मृतियों में याज्ञवल्क्य

और मनुस्मृति का स्थान बहुत ऊंचा है। इन दोनों स्मृतियों में बताया गया है कि पुत्री चतुर्थ भाग की अधिकारिणी है। बड़े दुःख की बात है कि किसी कारण से यह प्रथा नष्ट हो गई, नहीं तो हमारी स्मृतियों के आधार पर ही पुत्री चौथाई हिस्सा ले सकती थी। प्रिवी कौंसिल ने अपना जो निर्णय दिया, उससे भी मुझे बड़ा दुःख हुआ। उस निर्णय ने तो हमारे कानून-सुधार का मार्ग ही बन्द कर दिया। प्रिवी कौंसिल ने एक अभियोग के सम्बन्ध में यह निर्णय दिया था। कि कानून से प्रथा (रूढ़ि) बड़ी है। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे लिये अपने प्राचीन धर्मशास्त्र की छानबीन करना तथा इस बात का पता लगाना असम्भव हो गया कि हमारे ऋषियों और स्मृतिकारों ने कैसे नियम बनाये हैं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि प्रिवी कौंसल ऐसा निर्णय न देती कि कानून से प्रथा अधिक मान्य है, तो कोई वकील या न्यायाधीश निश्चय ही याज्ञवल्क्य और मनुस्मृति के इस पाठ को ढूंढ निकालता, और स्त्रियां इस समय अपने पिता की सम्पत्ति के अधिक नहीं तो कम से कम चतुर्थ भाग का उपभोग अवश्य कर रही होतीं।

मूल बिल में पुत्री का भाग आधा रखा गया था। परन्तु प्रवर समिति एक कदम और आगे बढ़ी, और उसने पुत्री के भाग को बढ़ा कर पुत्र के बराबर कर दिया।

मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि पुत्री के भाग पर विचार करते समय मैंने और कानून विभाग के सदस्यों ने उत्तराधिकार की प्रत्येक प्रणाली पर विचार कर लिया था। हमने मुसलमानों, पारसियों, और अंग्रेज़ों की उत्तराधिकार प्रणाली पर विचार किया तथा भारतीय उत्तराधिकार कानून और उत्तराधिकार क्रम पर भी विचार किया। पर कहीं भी हमें यह देखने को नहीं मिला कि पुत्री को उत्तराधिकार से वंचित रखा गया हो। संसार में कहीं भी उत्तराधिकार की ऐसी प्रणाली नहीं है, जिसमें पुत्री को वंचित रखा गया हो। प्राय: एक प्रश्न और उठाया जाता है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्री को हिस्सा देना पारिवारिक अशान्ति पैदा करना है। मैं

इस तर्क में कोई सार नहीं देखता। यदि एक आदमी के १२ पुत्र और पुत्री हों और अपने पिता के मरते ही बारहों पुत्र उसकी सम्पत्ति का बंटवारा करने का निश्चय कर लें, तो उनमें से प्रत्येक को बारहवां हिस्सा मिलेगा। परन्तु यदि वे अपनी बहन को भी अपने बराबर हिस्सा देना स्वीकार करें तो प्रत्येक को तेरहवां हिस्सा मिलेगा। बारहवें हिस्से और तेरहवें हिस्से में अन्तर ही क्या है? बहन को हिस्सा देने से भाई के हिस्से पर अधिक असर नहीं पड़ता। और यदि आप यह कहें कि इस से सम्पत्ति के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे, तो उसे रोकने के लिए तो हमें कोई दूसरा ही उपाय करना पड़ेगा। उसे उत्तराधिकार कानून से नहीं रोका जा सकता। उसके लिये हमें ऐसा कानून बनाना पड़ेगा, जिस से सम्पत्ति का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन रोका जा सके, और राष्ट्रीय दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से उसे अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

श्री टी० ए० रामलिंगम् : क्या हिन्दू कोड कृषि भूमि पर लागू होगा?

माननीय डी० बी० आर० अम्बेडकर : नहीं। मैं सामान्य रूप में कह रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि सभा के सदस्यों तथा जनता की ओर से जो विवाद उपस्थित किया गया था, उसके विभिन्न अंशों पर मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। मुझे आशा है कि मैंने विभिन्न विषयों पर जो प्रकाश डाला है, उससे उन सदस्यों का भय दूर हो जायगा, जो इस बिल के पक्ष में नहीं हैं। उनको मालूम हो गया होगा कि यह बिल क्रान्तिकारक बिल नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि यह परिवर्तनकारक भी नहीं है। मैं इस सभा के सदस्यों का ध्यान राव समिति के निर्माण की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस समिति में चार सदस्य थे। परन्तु उनमें से दो सुधारवादी नहीं थे। मेरे मित्र श्री चारपुरी, जिनको मैं बहुत दिनों से जानता हूँ, बड़े कट्टरपन्थी हैं।

श्री एच० वी० कामठ : राजनीतिक दृष्टि से अथवा सामाजिक दृष्टि से?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : राजनीतिक दृष्टि से भी और सामाजिक दृष्टि से भी। वास्तव में, मैं बिना संकोच यह कह सकता हूँ कि कभी कभी तो ये नाव चलानेवाली बड़ी से बड़ी

बल्ली से भी मुझे छूने में हिचकिचा जायेंगे। वे इतने कट्टर पन्थी हैं। मेरे मित्र श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्री उदार अवश्य हैं परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ, परिवर्तनवादी नहीं हैं। जब ऐसे कट्टरपन्थी स्वभाव के व्यक्ति रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर चुके हैं, तो हमें यह मान लेना चाहिये कि जिस बिल पर उनके हस्ताक्षर हैं, वह क्रान्तिकारक नहीं हो सकता और न वह हिन्दू जाति के आधार को ही नष्ट कर सकता है। मैं स्वयं बड़ा कट्टरपन्थी हूँ। भले ही कुछ व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार न करें, परन्तु बात वास्तव में ऐसी ही है। मैं प्रगतिशील कट्टरपन्थी हूँ और मैं सभा को तथा विशेष रूप से कट्टर-पन्थी सदस्यों को यह बता देना चाहता हूँ, कि प्रकांड राज-नीतिज्ञ एडमंड बर्क ने जब फ्रांस की क्रान्ति के विरुद्ध अपनी पुस्तक लिखी थी, तो वे अपने देश के कट्टरपन्थियों को यह बताना न भूले थे कि जो प्राचीन परिपाटी को सुरक्षित रखना चाहते हैं, उन्हें सर्वथा सुधार करने के लिये तैयार रहना चाहिये। मैं भी इस सभा से यही कह रहा हूँ कि यदि आप हिन्दू प्रणाली, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते हैं, तो उसमें जो खराबियां पैदा हो गई हैं उनके सुधारमें में तनिक भी हिचकिचाहट न कीजिये। यह बिल हिन्दू प्रणाली के केवल उन्हीं अंशों का सुधार चाहता है, जो विकृत हो गये हैं। इससे अधिक कुछ नहीं।

श्री डिप्टी स्पीकर : प्रस्ताव इस प्रकार है :

"हिन्दू कानून के कुछ अंशों में संशोधन करने और उन्हें नियमबद्ध करने सम्बन्धी बिल पर, जिस रूप में वह प्रवर समिति से प्राप्त हुआ है, विचार किया जाय।"



हिन्दू कोड बिल परम्परा के विरुद्ध

स्वामी करपात्री जी

[इम्पीरियल होटल, दिल्ली में भारतीय राज्य व्यवस्थापिका के सदस्यों तथा पत्र-प्रतिनिधियों के समक्ष हिन्दू कोड बिल सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री स्वामी करपात्री जी ने जो भाषण दिया था, उसकी रिपोर्ट काशी के सन्मार्ग पत्र में ४ मार्च, १९४९ को प्रकाशित हुई थी। उस रिपोर्ट को यहां अविकल रूप में उद्धृत किया जा रहा है।]

राष्ट्र की सर्वांगीण एवं स्थिर उन्नति के लिये भौतिक उन्नति के साथ धार्मिक, सांस्कृतिक, एवं आध्यात्मिक उत्थान होना आवश्यक है। यद्यपि हमारा राष्ट्र युद्ध की अवस्था में था, स्वतन्त्रता संग्राम ही हमारे वीरों के मस्तिष्क में व्याप्त था, सैनिकों के सामने दुश्मन से सामना करने की बात ही मुख्य रहती है। धार्मिक, सांस्कृतिक बातें गौण ही नहीं कभी कभी तो रास्ते में बाधक होने पर ठुकरा भी दी जा सकती हैं। सैनिक को गम्भीरता से सोचने का अवकाश नहीं रहता। उस समय संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध में सैनिकों के गलत विचार एवं अनुचित आचरण भी क्षम्य हो सकते हैं। पर युद्ध बीत जाने पर ऐसी बात नहीं रहती, स्वातंत्र्य-युद्ध के समय नेताओं को भारतीय संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध में विचार का अवकाश नहीं था। उन्होंने वीरता और भावुकता के जोश में अनुचित धारणाओं और आचरणों को स्थान दिया। उनके त्याग, तपस्या और वीरता के कारण जनता ने उनकी गलतियों के ऊपर ध्यान नहीं दिया। सौभाग्यवश आज देश स्वाधीन हुआ है। अब जोश छोड़ होश में आ कर अमानुषिकता से बचकर वस्तुस्थिति पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। बड़े बड़े नेताओं द्वारा भी धार्मिक, सांस्कृतिक नियमों के उल्लंघन क्षम्य नहीं हो सकते, क्योंकि इससे सामान्य जनता को वैसा करने का प्रोत्साहन मिलता है। कदाचित् किसी से कोई अनुचित कार्य हो भी जाय

तो वह दूसरों को वैसा करने के लिये लेख, व्याख्यान आदि प्रचार द्वारा प्रोत्साहित न करें। प्रचार-स्वातन्त्र्य मान लेने पर भी धर्म विरुद्ध वैसा कानून बनाकर जनता पर बलात् लादने का प्रयत्न करना तो सर्वथा अनुचित है।

हम लोग तो अपनी लोकप्रिय सरकार से अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा की आशा रखते हैं। हमारी सरकार को इधर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिये था, किन्तु इसके विरुद्ध हिन्दू कोड का आश्चर्यजनक साभिनिवेश प्रयत्न देखकर खेद हो रहा है। धर्म-निरपेक्ष असाम्प्रदायिक सरकार को किसी भी धर्म के विरुद्ध कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। एक ओर साम्प्रदायिकता को नष्ट करने का प्रयत्न तथा दूसरी ओर हिन्दू कोड बनाकर साम्प्रदायिकता के पन्थ में फंसना कहां तक उचित है? विधान में भी धर्म पर हस्तक्षेप न कर केवल देश की स्वतन्त्रता के नाम पर चुनाव लड़ने की घोषणा की गई थी। इस चुनाव के आधार पर बनी धारा सभा द्वारा हिन्दू-धर्म पर हस्तक्षेप करने वाले हिन्दू कोड का बनाना कहां तक उचित है।

जो सज्जन कहते हैं कि विवाह, दाय भाग आदि धर्म नहीं हैं, उन्हें कृपाण धारण और गोकशी की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि वे किसी सम्प्रदाय के धर्म-ग्रन्थ द्वारा धर्म हो सकते हैं, और सरकार को मान्य हो सकते हैं तो विवाह दाय भाग आदि धर्म क्यों नहीं हो सकते? यदि विवाह आदि धर्म नहीं तो भाई-बहिन में भी विवाह आदि की छूट होनी चाहिये, फिर कोड निर्माताओं ने ऐसे विवाह क्यों रोके। लोक-तन्त्र की दृष्टि से थोड़े लोगों के विचार बहुसंख्यकजन पर लादना अनुचित है, वर्तमान धारा सभा देश के ६ प्रतिशत हिन्दुओं के वोट से बनी है। देशी राज्य की जनता द्वारा चुना हुआ प्रतिनिधि तो इसमें एक भी नहीं। फिर इस धारा सभा द्वारा बना कोड सारी हिंदू जनता पर कैसे लादा जा सकता है। क्या ५-६ व्यक्तियों का मत १००० व्यक्तियों पर बलात् लादना ही लोक-तन्त्र है। फिर जब लोकमत संग्रह के लिये नियुक्त कमेटी ने ही स्पष्ट कर दिया कि जन-मत हिन्दू कोड के विरुद्ध है तब अपने हठ पर अड़े रहना कहां तक ठीक है। आज जनता ने इस कोड का विरोध किया, स्त्रियों ने अधिक संख्या में विरोध किया, हाईकोर्ट के जजों, ऐडवोकेटों ने इसका विरोध किया, विद्वानों, धर्माचार्यों ने इसका विरोध किया, फिर यह बिल क्यों लादा जा रहा है? किसी वस्तु जैसे घड़ी बनाने में कारीगर चिकित्सक की ही सब मान्य है, सामान्य जनता ऐडवोकेटों तथा जजों की राय अकिंचित्कर रही है, वैसे ही धर्म के सम्बन्ध में वेदादि शास्त्रज्ञों के अतिरिक्त

जनता या आधुनिक अन्य विद्याविशेषज्ञों की राय अकिंचित्कर है। सनातन परमात्मा ने सनातन कल्याण के लिए अपने विश्वासभूत सहज, अकृत्रिम, सनातन वेदों से जो सनातन मार्ग बतलाया है वही भारतीय हिन्दुओं का सनातन धर्म है। उसी के आधार पर उनका धार्मिक, सामाजिक जीवन चलता है। सनातन वेद एवं वेदानुसारी आर्य धर्म ग्रन्थ ही हिन्दुओं का विधान है, उसमें रद्दोबदल करने का अधिकार रामकृष्ण आदि अवतारों और मनु, वशिष्ट, विश्वामित्रादि ऋषियों को भी नहीं, फिर वर्तमान धारासभा उसमें रद्दोबदल का साहस कैसे कर सकती है ? अभी तक हिंदुओं का आधार तो वेद-शास्त्र ही है।

जो स्मृतियों और पुराणों के कई विषयों में मतभेद देखकर देश-काल परिस्थिति के अनुसार ऋषियों की स्वतन्त्र व्यवस्था समझते हैं और तदनुसार वर्तमान देशकाल में अपने को धर्म और शास्त्र के निर्माण का अधिकारी समझते हैं, वे इस बात को भूल जाते हैं कि वेदों के विपरीत किसी ऋषि या आचार्य की व्यवस्था आस्तिक हिन्दुओं को मान्य नहीं होती। ऋषियों का मतभेद वेद के अनुसार ही है और उसकी व्यवस्था शास्त्र, सम्प्रदाय, वर्ण जाति, सम्पत्ति-विपत्ति, देशकाल भेद से होती है, वह सर्वज्ञ परमेश्वर को प्रथम से ही विदित है अतएव उसके विश्वासभूत वेदों से सबकी व्यवस्था है। जो सर्व जन्मों, सर्व कर्मों एवं सर्व फलों को जाने और फल देने की शक्ति रक्खे वही धर्म या शास्त्र में रद्दोबदल का अधिकारी हो सकता है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई व्यक्ति समूह या परिषद् धर्म नहीं बना सकती।

हिन्दू कोड के द्वारा असवर्ण, अन्तर्जातीय, सगोत्र, सपिंड विवाह होंगे। इससे रक्त का मिश्रण होगा और वर्णसंकरी सृष्टि होगी, तलाक द्वारा पातिव्रत भंग होगा, परस्पर अविश्वास होगा। रूपयौवनविहीन स्त्रियां तलाक के कारण विवाह बिना परेशान होंगी, उनका अपना और बच्चों का पालन करना कठिन हो जायगा। रजिस्ट्री विवाह धार्मिक विधान के समान हो जायेंगे, साध्वी सती और बाजारू औरतें समान मानी जाने लगेंगी। बहन को सम्पत्ति में हिस्सा मिलने से परस्पर कलह की वृद्धि होगी, अल्पसम्पत्ति वाले या ऋणी बाप की पुत्री की शादी कठिन हो जायगी। सम्पत्ति अन्य कुलों में चली जायगी। थोड़े ही दिनों में घर बिक जायगा और सम्मिलित परिवार की प्रथा मिट जायगी। दत्तक विधान की भी यह अव्यवस्था होगी। सर्वोपरि बात यह है कि ये सब बातें धर्म और शास्त्रों तथा हिंदू परम्पराओं के विरुद्ध हैं इसलिए हिंदुओं को कदापि मान्य नहीं। इस समय सभी हिंदू सरकार को सहायता देने के लिए उत्सुक हैं, सरकार को भी चाहिये। कि उनके धर्म और भावनाओं की रक्षा करे।

हिन्दू कोड बिल हिन्दुओं के लिये अहितकर

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य

[अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ज्योतिर्मठाधीश श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा दिया गया वक्तव्य जो २५ मार्च १९४९ को काशी के सन्मार्ग पत्र में प्रकाशित हुआ था।]

जब से हिन्दू कोड बिल का जन्म हुआ है तब से ही भारत-भर में इसके विरुद्ध आवाज़ उठ रही है, और कटु शब्दों में लोग इसकी तीव्र निंदा कर रहे हैं। हिंदुओं की बड़ी-बड़ी धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं ने लब्धप्रतिष्ठ नेताओं, शिक्षाविशारदों और हाई कोर्ट के जजों ने गम्भीरता के साथ इस पर विचार कर घोषित किया है कि यह बिल हिन्दुओं के लिये सर्वथा अहितकर है। मैंने भी समय-समय पर इस बिल की विध्वंसकारी धाराओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। उस समय भी जब इस बिल पर भारतीय पार्लियामेंट में विचार चल रहा था, और दूसरी ओर दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दू कोड विरोधी सम्मेलन हो रहा था, मैंने इसके विषय में अपने निश्चित मत प्रकट किये थे। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि यह बिल उस संस्कृति और परम्परा का आधार लेकर हिन्दू समाज का नवनिर्माण करने जा रहा है, जो संस्कृति और परम्परा इस प्राचीन भारत भूमि के लिये बिल्कुल ही अग्राह्य है। हिन्दू संस्कृति का मूलाधार वर्णाश्रम धर्म है। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था हमारे त्रिकालज्ञ महर्षियों ने की है।

यह हिन्दू कोड बिल हमारे 'वर्ण' और 'आश्रम' दोनों सिद्धान्तों पर आक्रमण करने वाला है। अतः यह बिल हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक जीवन को मटियामेट करने वाला है।

तलाक, जिसे पश्चिम के बड़े-बड़े विचारक अपने समाज के लिये घोर लज्जा का विषय समझते हैं, इस बिल के द्वारा हिन्दू समाज में उतारा जारहा है। हिन्दुओं में विवाह की प्रथा एक धार्मिक वस्तु समझी जाती है, ठेके की वस्तु नहीं। हिन्दू समाज ने दाम्पत्य प्रेम का जो उज्ज्वल आदर्श दुनिया के सामने उपस्थित किया है, उस आदर्श को अपनाने के लिये आज संसार के सभी समाजों के लोग उत्सुक हैं। हमारा धर्म तो यह बतलाता है कि स्त्रियां 'पराशक्ति' की रूप हैं। पुरुष और महिला को एकरूपता के सूत्र में पिरोने की व्यवस्था हिंदू धर्म नहीं देता। हिन्दू धर्म तो दोनों के लिये अलग-अलग मार्ग बतलाता है और अपने अपने मार्ग पर चलने से ही दोनों को सुख की प्राप्ति हो सकती है।

बिल में उत्तराधिकार की जो व्यवस्था की गई है, उससे तो हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली ही विचूर्ण हो जायगी। उत्तराधिकारी की जो व्यवस्था बिल में है; वह अशास्त्रीय है और हमारे लिए बिल्कुल नई वस्तु है साथ ही, इसमें कोई तथ्य नहीं, बिल्कुल खोखली है। आर्थिक दृष्टिकोण से भी समाज के लिये यह हितप्रद नहीं। धार्मिक विचार से तो यह घोर क्रांतिकारी है, और इससे हिन्दू धर्म को मर्यादा सदा के लिये मिट जायगी। ऐसा अवांछनीय परिवर्तन कभी भी स्वीकार्य नहीं।

यह कोड बिल पाकिस्तान के हिन्दुओं पर लागू न होगा। यदि भारतीय-संघ के हिन्दुओं के लिये धर्म शास्त्रों का अलग संग्रह और पाकिस्तान के हिन्दुओं के लिए दूसरा संग्रह बनेगा, तो इससे बहुत जटिल सामाजिक और आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जायगी। भारतीय संघ धर्म निरपेक्ष राज्य है। यदि यह राज्य किसी सम्प्रदाय के व्यक्तिगत और धार्मिक कानूनों में हस्तक्षेप करता है तो यह अपनी उद्घोषित सीमा का अतिक्रमण करता है। यदि ऐसा राज्य धार्मिक तटस्थता का आचरण नहीं करता, तो उससे धर्म निरपेक्षता पर धक्का लगता है। वर्तमान भारतीय धारासभा ने हिन्दुओं के व्यक्तिगत कानून में हस्तक्षेप करने का जो साहस किया है, वह साहस उसके अधिकार की सीमा से बाहर है।

कोड बिल पर जनमत संग्रह के लिये जो राव कमेटी भारत के कोने-कोने में गई थी, और उस कमेटी के सामने लोगों ने जो साक्षियां दी थीं, उनसे भी स्पष्ट है कि बहुसंख्यक लोग इस बिल को अनावश्यक समझते हैं। यदि बहुसंख्यक जनता के मतों का अनादर कर अल्पसंख्यक सुधारवादियों के कहने

पर यह बिल बलात् बहुसंख्यकों पर लादा गया तो यह काम लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर कुठाराघात करने वाला तो सिद्ध होगा ही, साथ ही यह प्रयास हास्यास्पद भी होगा। इस संकट के समय हिंदुओं का परम कर्तव्य है कि वे संगठित हो कर इस बिल के विरुद्ध सरकार से वैधानिक मोर्चा लेने के लिए कमर कस कर तैयार हो जायं। संघ में ही शक्ति है। सुदृढ़ संगठन न केवल आज ही हमारी रक्षा करेगा। अपितु भविष्य में भी हमारी रक्षा करता रहेगा।

उत्तरी भारत के हिन्दुओं के धर्माचार्य होने के नाते, यह हमारा कठोर कर्तव्य हो जाता है कि हम धारा सभा को बतलादें कि वह बिल पास करना उसके लिये भयंकर भूल होगी, क्योंकि इस कानून की प्रतिक्रियाएं महाविध्वंसकारी होंगी।



हिन्दू कोड बिल हिन्दुत्व का रक्षक है

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

[वेदों के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति उन थोड़े से व्यक्तियों में हैं जिनके जीवन का अधिकांश समय वेदों एवं आर्यों के अन्यान्य प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के अनुशीलन और अनुसन्धान में बीता है। पिछले दिनों उनकी एक लेखमाला दिल्ली के सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक "वीर अर्जुन" में प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने प्राचीन स्मृतियों, वेदों तथा शास्त्रों के प्रमाण एवं उद्धरण देकर हिन्दू बिल के विविध विधानों का सारगर्भित विवेचन किया है। विचारशील पाठकों के लिये "वीर अर्जुन" की स्वीकृति से यह लेख माला यहां पुनः प्रकाशित की जा रही है ।]

भारत सरकार के विधान-सचिव माननीय डा० भीमराव अम्बेडकर द्वारा भारतीय राष्ट्र संसद् वा पार्लियामेंट में प्रस्तुत 'हिंदू कोड बिल' के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया जा रहा है। देहली में भी एक हिन्दू कोड विरोधी सम्मेलन हो चुका है जिसमें मुख्य नारा यह लगाया गया कि इससे हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का सर्वनाश हो जायेगा। मैं प्रारम्भ में ही इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं हिन्दू कोड बिल का सर्वांश में समर्थक नहीं हूं। इसमें अनेक संशोधनों की आवश्यकता है, ऐसा भी मेरा विचार है किन्तु मुझे यह देख कर दुःख होता है कि इस बिल के सम्बन्ध में असत्य प्रचार बहुत अधिक किया जा रहा है। प्राय: इसके विरोधी ऐसे हैं जिन्होंने ध्यानपूर्वक बिल की धाराओं को

पढ़ने का कभी कष्ट नहीं उठाया और वे 'हिन्दू धर्म और संस्कृति संकट में' इस नारे को लगा कर सर्वसाधारण जनता को उत्तेजित करने का अनुचित प्रयत्न कर रहे हैं। मैं स्वयं वेदादि सत्यशास्त्रों में दृढ़ विश्वास रखने वाला हूँ और इस लिए शास्त्रीय दृष्टि से भी इस बिल में प्रस्तुत प्रस्तावों का मैंने अनुशीलन किया है जिसका परिणाम मैं जनता के सन्मुख रखने का प्रयत्न करूंगा। किंतु मैं इस प्रथम लेख में यह दिखाना चाहता हूँ कि इस 'हिंदू कोड बिल' के निर्माता या समर्थक 'हिंदू धर्म' और संस्कृति का नाश करना चाहते हैं उन्हें 'हिंदू धर्म' से कोई प्रेम नहीं इत्यादि जो अपप्रचार किया जा रहा है वह कितना असत्य है ?

इस बिल की धारा ७८ में लिखा है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का वली (संरक्षक) होने का अधिकार नहीं रखेगा :

(अ) 'यदि वह हिंदू धर्म को त्याग चुका है' इत्यादि।

धारा ८१ में 'स्वाभाविक वली का अधिकार सत्ता का खण्डन' शीर्षक के नीचे लिखा है—जहां पर कि किसी नाबालिग हिंदू का स्वाभाविक वली ऐसे नाबालिग की संरक्षकता किसी दूसरे व्यक्ति को दे देता है, वह निम्न अवस्थाओं को छोड़ कर खण्डन योग्य होगा :

(क) जहां पर कि उसको खण्डित करने की स्वीकृति देना नाबालिग के हित लाभ के लिए नहीं है अथवा (ख) जहां पर कि स्वाभाविक वली हिंदू धर्म को त्याग चुका है।

धारा ८३ में लिखा है—"किसी नाबालिग हिंदू के वली का कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसे नाबालिग का हिंदू के रूप में पालन-पोषण करे।"

गोद लेने के विषय में विधवा के अधिकार की समाप्ति विषयक धारा ६१ में लिखा है कि एक विधवा का गोद लेने का अधिकार समाप्त हो जाता है:

(क) जब कि वह पुनर्विवाह कर लेती है।

(ख) जब वह हिंदू धर्म को त्याग देती है। गोद देने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति इस शीर्षक की धारा ६२, उपधारा २ में लिखा है कि माता बच्चे को गोद दे सकेगी :

(क) यदि बच्चे का पिता मर चुका है।

(ख) यदि वह पिता हिन्दू धर्म को त्याग चुका है इत्यादि। प्रवर समिति (सेलेक्ट कमेटी) की रिपोर्ट में ऊपर उद्धृत धारा ७८ के विषय में सदस्यों ने लिखा है कि 'हम समझते हैं कि जो व्यक्ति हिन्दू धर्म को या इस संसार को त्याग चुका है उसे किसी नाबालिग हिन्दू का स्वाभाविक वली (संरक्षक) बनने का अधिकार न होना चाहिए।'

पत्नी का भरण-पोषण इस शीर्षक की धारा १२६ में लिखा है कि निम्न-लिखित दशाओं में जीविका प्राप्त करने के अपने अधिकार से वंचित हुए बगैर

भी उससे अलग रहने का एक हिंदू पत्नी अधिकार रख सकती है यदि (ए) वह धर्म परिवर्तन द्वारा अन्य धर्मावलम्बी बन कर अहिंदू बन चुका है इत्यादि। उपधारा (३) में लिखा है कि यदि कोई हिंदू पत्नी अपतिव्रता है अथवा धर्म परिवर्तन द्वारा अन्य धर्मावलम्बी बन कर अहिंदू बन चुकी है, तो उस हालत में उसे अलग रहने तथा भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार नहीं होगा।

धारा १२० का धर्मपरिवर्तन करने वाला दाय ग्रहण की योग्यता नहीं रखता, इस शीर्षक के नीचे लिखा है कि जहाँ इस कोड के प्रारम्भ होने से पहिले या बाद कोई हिंदू धर्म परिवर्तन करके अन्य धर्मावलम्बी बन जाने के कारण हिंदू न रह गया हो या अहिन्दू बन चुका हो तो इस प्रकार के धर्म परिवर्तन के पश्चात् उस पुरुष या उस स्त्री से जो बच्चे उत्पन्न होंगे, तथा उनकी सन्तान अपने किसी हिन्दू सम्बन्धी की सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार न रखेगी जब तक कि ऐसे बच्चे या सन्तान उत्तराधिकार शुरू होने के समय हिन्दू नहीं है।

ऐसे अन्य उद्धरण भी अनेक दिये जा सकते हैं जिनसे स्पष्ट है कि इस हिन्दू कोड बिल के निर्माताओं ने हिन्दुत्व की रक्षा का विशेष ध्यान रखा है तथा उन्हें हिन्दूधर्म से प्रेम है, यद्यपि उसमें सुधार की आवश्यकता को वे अवश्य अनुभव करते हैं जिसका उद्देश्य भी वस्तुतः हिन्दूधर्म और जाति का उद्धार ही है।

इस विषय में माननीय डा० अम्बेडकर आदि से हुई बातचीत के आधार पर मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि वे हिंदू जाति को एकसूत्र में लाने और उसके संगठन को दृढ़ करने के लिये ही इस हिन्दू कोड बिल को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें हिन्दुओं के अन्दर, धारा २ में दी परिभाषा के अनुसार न केवल वे व्यक्ति आते हैं जो हिन्दू-धर्म के किसी भी स्वरूप या सम्प्रदाय को मानते हैं, किन्तु बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म के अनुयायी अथवा हिन्दू धर्म ग्रहण करने वाले व्यक्ति भी आते हैं। आदिवासी तथा अन्य भी इस परिभाषा में हिन्दुओं के अन्दर ही माने गये हैं।

विशालदृष्टि से देखने पर निष्पक्षपात विचारकों को ऐसे एक सर्वसामान्य कोड का महत्व ज्ञात हो सकता है। भिन्न-भिन्न स्थानों और जातियों के रीति-रिवाजों ने विशाल हिन्दू जाति को कैसे छिन्न-भिन्न कर रखा है यह बताने की आवश्यकता नहीं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि झूठे नारे लगाने और इस बिल का पूर्ण विरोध करने की भावना को छोड़ कर लोग इस बिल की धाराओं का का निष्पक्ष होकर अध्ययन करें और तब ऐसे निर्देश अथवा संशोधन प्रस्तुत करें जिससे यह अधिक उपयोगी और लाभकारक बन सके। डा० अम्बेडकर तथा अन्य सदस्य ऐसे क्रियात्मक निर्देशों का स्वागत करने को उद्यत हैं।

विवाहसंबंधी धाराएं

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रथम लेख में मैंने पाठकों से निवेदन किया था कि 'हिन्दू कोड बिल का उद्देश्य हिन्दू धर्म, समाज और संस्कृति का सर्वनाश करना है' इत्यादि कल्पित, असत्य नारों पर विश्वास न करके उन्हें निष्पक्षपात होकर गम्भीर भाव से हिन्दू कोड बिल की भिन्न २ धाराओं पर विचार करना चाहिये। इस लेख में मैं विवाह विषयक धाराओं पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं।

विवाह को शास्त्रीय और सिविल इन दोनों भागों में विभक्त करते हुए शास्त्रीय विवाह की शर्तें धारा ७ में निम्नलिखित मानी गई हैं:—

धारा ७—यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं तो किन्हीं भी दो हिन्दुओं में शास्त्रीय रीति के अनुसार विवाह सम्पन्न हो सकेगा:—

(१) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई पक्ष भी पति अथवा पत्नी नहीं रखता।

(२) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय कोई जड़ बुद्धि या पागल नहीं हैं।

(३) यदि विवाह के समय वर अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुका है और वधू १४ वर्ष की आयु पूरी कर चुकी है।

(४) यदि दोनों पक्ष परस्पर निषेधात्मक सम्बन्ध की कोटियों के अन्तर्गत नहीं आते।

(५) यदि दोनों पक्ष आपस में परस्पर सपिण्ड नहीं हैं और यदि पारस्परिक आचार और परम्परा के अन्तर्गत दोनों पक्षों में ऐसा संस्कार जायज

(वैध) मानने की प्रथा न हो।

(६) जहां वर या वधू १६ वर्ष की आयु पूरी नहीं कर चुकी है उसके संरक्षक की स्वीकृति प्राप्त की जा चुकी है।

सपिण्ड सम्बन्ध की परिभाषा और व्याख्या करते हुए धारा ४ में कहा गया है कि

(१) (क) सपिण्ड सम्बन्ध का अर्थ अपने मातृकुल की तीन पीढ़ी तक और पितृ कुल की ५ पीढ़ी तक होगा।

(ख) दो व्यक्ति उसी अवस्था में परस्पर सपिण्ड कहे जाते हैं यदि वे, एक दूसरे के वंश-परम्परा से सपिण्ड सम्बन्ध की सीमा के भीतर समवंशज हैं अथवा यदि वे दोनों सपिण्ड सम्बन्ध की सीमा के भीतर सम्मिलित वंश परम्परागत आपस में एक दूसरे के साथ समान वंशज के रूप में हैं।

(ग) निषिद्ध सम्बन्ध का क्रम---दो व्यक्तियों का उस अवस्था में निषिद्ध सम्बन्ध कहा जाता है यदि दोनों में से एक वंशानुक्रम से दूसरे का पुरखा हो, अथवा वंशानुक्रम से पुरखे या संतति की पत्नी या पति रहा हो, अथवा वे दोनों भाई-बहिन, चाचा-भतीजी, चाची-भतीजा अथवा भाइयों व बहिनों की सन्तति हों।

स्पष्टीकरण:--वाक्य खण्ड १ और २ में ये सम्बन्ध भी शामिल हैं (अ) ऐसा सम्बन्ध जो कि अर्धरक्तयुक्त सहोदर रक्तयुक्त हैं।

(२) धर्मज तथा अधर्मज सन्तति सम्बन्ध।

(३) दत्तक अथवा रक्त सम्बन्ध।

उक्त वाक्य-खण्डों में कथित सभी सम्बन्धद्योतक शब्दों का इसी प्रकार अर्थ समझा जायगा। पाठक देखेंगे कि शास्त्रीय विवाह के लिए जो शर्तें ऊपर वर्णित की गई हैं वे अधिकतर वही हैं जिन्हें धार्मिक दृष्टि से अब भी प्रायः मान्य समझा जाता है। अन्तर थोड़ा सा है। "पंचमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा'। इत्यादि स्मृति वचनों में मातृकुल और पितृकुल की क्रमशः ५ और ७ पीढ़ियों को सपिण्ड मानकर उन्हें छोड़ने का विधान है यद्यपि स्मृति चन्द्रिका, चतुर्विंशति मत संग्रहादि में ३ और ५ तक ही सपिंडता मानी गई है। कई पौराणिक ग्रन्थों में तो सपिंडता का और भी अधिक संकोच करते हुए मामा की लड़की, फूफी की लड़की इत्यादि से भी विवाह को उचित माना गया है और दाक्षिणात्यों में कई स्थानों पर वैसी ही प्रथा है। इसलिए कोड बिल में मध्यमार्ग को ग्रहण किया गया है। यदि ३

और ८ पीढ़ियों के स्थान पर मातृकुल और पितृकुल की क्रमशः ४ और ७ पीढ़ियों को छोड़ा जाय तो अधिक शास्त्रीय होगा इसमें सन्देह नहीं। किंतु यह कहना कि इस कोड बिल के अनुसार भाई बहिन का विवाह भी वैध समझा जायगा, जैसे कि कोड विरोधी लोगों ने कुछ पत्रों और पोस्टर आदि में प्रकाशित किया था सर्वथा असत्य है, यह तो स्पष्ट ही है। मेरे विचारानुसार शास्त्रीय विवाह के नियमों में यदि दोनों पक्ष परस्पर सपिण्ड नहीं हैं। इसके बाद धारा ७ उपधारा ४ में यह जो अपवाद रखा गया है कि यदि पारस्परिक आचार-परम्परा के अन्तर्गत दोनों पक्षों में ऐसा संस्कार वैध या जायज मानने की प्रथा न हो ये शब्द भी उड़ा देने चाहिए जिससे एकरूपता की रक्षा के अतिरिक्त सपिण्डों अथवा निकट सम्बन्धियों में विवाह के निषेध विषयक शास्त्रोक्त वैज्ञानिक आज्ञा का पालन हो सके।

अनेक हिंदू कोड बिल विरोधी कितने असत्य और छल का आश्रय ले रहे हैं इसका एक और अति स्पष्ट उदाहरण दिए बिना मैं नहीं रह सकता। ऊपर शास्त्रीय विवाह की शर्तों के विषय में मैंने जिस धारा संख्या ७ को उद्धृत किया है उसमें चौथी शर्त मूल अंगरेजी में इन शब्दों में है (4)The parties are not within the degrees of prohibited relation-ship हिन्दू कोड विरोधी समिति कलकत्ता ने हिन्दू कोड बिल का जो कुछ अनुवाद हिंदी में छपाया उसमें पृ० ४ पर इसका अनुवाद इस प्रकार दिया:—

दोनों ही पक्ष (वर–वधू) निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम में आते हों। मूल का अर्थ 'निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम में न आते हों' यह है किन्तु अनुवादक महाशय जनता में उसके विरुद्ध भावना भरने के लिए उसके "न" को खाकर अनुवाद कर बैठे हैं कि शास्त्रीय विवाह वह होगा जहां दोनों पक्ष निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम में आते हैं। यह मानना बड़ा कठिन है कि यह छापे की भूल है। मुझे तो इसमें स्पष्ट ही शरारत प्रतीत होती है। इस अनुवाद के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है 'प्रत्येक हिंदू चेत जाए हिंदू कोड बिल हिंदू समाज और संस्कृति का तख्ता ही उलट देने का भयानक कुचक्र है।' मैं इस बात का निर्णय पाठकों पर छोड़ना चाहता हूं कि क्या ऐसे असत्य से हिंदू समाज और संस्कृति की रक्षा हो सकती है?

बहुविवाह का पति-पत्नी दोनों के लिए निषेध करके वस्तुतः "जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्" "इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती इत्यादि वेद मंत्रों में स्पष्टतया निर्दिष्ट एक विवाह के आदर्श का ही

समर्थन किया गया है। "संमतपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः" इत्यादि वेद-मन्त्रों में सपत्नीत्व को अत्यन्त दुःखदायक बताया गया है। दुर्भाग्यवश कुछ शिक्षित युवक-युवतियों में भी यह बहुविवाह की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और उसके भयङ्कर परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे थे अतः इस प्रकार का प्रतिबन्ध आवश्यक ही था। वर्तमान हिंदू कानून के अनुसार पुरुष जितने चाहे विवाह कर सकता था जिसके कई उदाहरण देहली के सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित समझे जाने वाले व्यक्तियों में भी विद्यमान हैं। एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करना प्रथम पत्नी को विष देने के समान है यह लिखने की आवश्यकता नहीं।

न्यूनतम आयु के विषय में यहां वर-वधू के लिए १८ और १४ को नियत किया गया है जिसे हम सर्वथा अपर्याप्त समझते हैं। हमारे विचार में तो २४ और १६ से कम विवाहार्थी वर-वधू की आयु न होनी चाहिए। 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' जैसे वेद विरुद्ध श्लोकों को मानने वाले इस अंश का भी विरोध करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

विवाह विषयक इन धाराओं में जातिमूलक भेदभाव को जो स्वीकार नहीं किया गया इस से कई कट्टरपन्थी भले ही अप्रसन्न हों किन्तु जो विचारशील लोग जानते हैं कि इस कृत्रिम, जन्ममूलक जातिभेद ने किस प्रकार हिन्दू समाज को ८ हजार के लगभग जातियों-उपजातियों में विभक्त कर के उस की एकता, संगठन और परस्पर प्रेम को नष्ट कर रक्खा है तथा किस प्रकार यह जाति-भेद 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।' (ऋ० ५।६०।५) 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्' (मनु १०।६५) न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न। न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥' शुक्रनीति, 'न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।' (महाभारत वनपर्व) इत्यादि शास्त्रीय वचनों के सर्वथा विरुद्ध है जहां वर्णव्यवस्था को केवल गुण कर्मानुसार बताया गया है तथा जन्म की दृष्टि से सब मनुष्यों की समानता का प्रतिपादन है उन्हें इससे जरा भी दुःख न होगा। वर्ण-व्यवस्था को गुणकर्मानुसार मान लेने पर (जिस सिद्धांत की सनातनता की घोषणा गत वर्ष काशी आदि स्थानों की, विद्वन्मण्डली भी कर चुकी है) विवाह में जाति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वस्तुतः अन्तरजातीय विवाहों के समर्थन में अनेक शास्त्रीय वचनों और ऐतिहासिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा सकता है किंतु विस्तारभय से मैं यहां ऐसा

करना आवश्यक समझता हूं। जो भाई जन्म-मूलक जातिभेद को मानते हैं इस कोड में उन के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है। उनको अपने विश्वासानुसार विवाहादि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

इस प्रस्तुत कोड में सगोत्र विवाह का प्रतिपादन किया गया है यह कह कर हिंदू जनता को इसके विरुद्ध प्रायः भड़काया जाता है, किंतु इस में कोई ऐसी धारा नहीं है जहां सगोत्र विवाह का प्रतिपादन या समर्थन हो। केवल एक धारा स० २७ है जिसका शीर्षक "पहले विवाहों के विषय में छूट" यह है, जिस में कहा गया है कि "ऐसा विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने से पहले दो हिन्दू पक्षों में सम्पूर्ण हो चुका है और जो कि किसी दूसरे तौर पर जायज वा वैध है वह नाजायज नहीं होगा और कभी भी केवल इस हेतु तथा हकीकत पर नाजायज वा अवैध नहीं विचारा जायगा कि दोनों पक्ष समान गोत्र अथवा समान प्रवर रखते थे अथवा भिन्न जाति अथवा समान जाति में से विभक्त उपजाति से सम्बन्ध रखते थे।

यह धारा इस कोड के प्रारम्भ से पूर्व सम्पन्न विवाहों के विषय में है। कहां तो एक ओर हिंदू कोड बिल के विरोधी सनातन धर्म के नाम पर विवाह सम्बन्ध की अच्छेद्यता की दुहाई देते हैं और कहां वे ऐसी धारा का विरोध वा खण्डन करते हैं जिस में केवल सगोत्रता वा जाति-भिन्नता के आधार पर पूर्व सम्पन्न विवाहों को अवैध मानने से इन्कार किया गया है यह परस्पर-विरुद्धता आश्चर्यजनक है।

हम स्वभावतः यह चाहते हैं कि सब लोग शास्त्रीय विवाह ही करें और इसी के लिए हम सब को उसका महत्व बुद्धिपूर्वक समझा कर प्रेरित करना चाहिए किंतु जो ऐसा किसी कारणवश नहीं करना चाहते उनके लिए सिविल विवाह की पूर्वोक्त शर्तों के अनुसार ही व्यवस्था की गई है केवल इतनी शर्त उसमें और जोड़ी गई है कि 'विवाह के दोनों पक्षों में से यदि वर अथवा वधू आयु के २१ वर्ष पूरे नहीं कर चुके तो ऐसी स्थिति में इस विवाह की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई हो।' सिविल विवाह का भी यह अर्थ इस कोड के अनुसार नहीं है कि उसमें कोई धार्मिक विधि व क्रिया न हो। धारा १८ खण्ड २ में स्पष्ट लिखा है कि विवाह किसी भी रीति अनुसार सम्पूर्ण हो सकेगा किंतु शर्त यह है कि यह विवाह तब तक पूर्ण और दोनों पक्षों को कानूनी बन्धन में जकड़ने वाला नहीं होगा जब तक कि प्रत्येक पक्ष रजिस्ट्रार और ३ साक्षियों के सन्मुख ऐसा नहीं कहता कि मैं तुमको अपनी कानून-सङ्गत पत्नी (अथवा पति) बनने के लिए ग्रहण करता (वा करती) हूँ।

वस्तुतः विवाह मन्त्रों में यह भाव स्पष्टतया समाविष्ट है। एक मुख्य बात यह है कि अब सिविल विवाह के लिए पूर्ववत् यह कहने की आवश्यकता न होगी कि मैं हिन्दू धर्म या अन्य किसी स्वीकृत धर्म को मानने वाला नहीं।

हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार—३

विवाह-विच्छेद की परिस्थितियां

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

इस तृतीय लेख में मैं विवाह संबन्ध विच्छेदादि विषयक धाराओं पर कुछ विचार करना चाहता हूँ जो मुख्यतया निम्न हैं—

धारा ३०—कोई ऐसा विवाह, चाहे वह इस कोड के आरम्भ होने से पहले अथवा बाद में सम्पूर्ण हो चुका है, निम्नांकित आधारों में से किसी एक के कारण खतम हो जायगा।

(१) यदि ऐसे विवाह के समय पर और तब से लेकर लगातार इस सम्बन्धी अदालती कार्यवाही के आरम्भ तक विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक नपुंसक था।

(२) यदि पति किसी स्त्री को रखेली के रूप में रख रहा है अथवा पत्नी किसी पर पुरुष की रखेली बन कर रह रही है या वेश्या का जीवन व्यतीत कर रही है।

(३) यदि विवाह के दोनों पक्षों में से कोई पक्ष कोई दूसरा धर्म ग्रहण कर लेता है और हिन्दू धर्म को त्याग देता है।

(४) यदि विवाह के दोनों पक्षों में एक पक्ष असाध्यरूप में उन्मत्त या पागल है और ऐसे प्रार्थनापत्र के देने के पहले निरन्तर पांच वर्ष के लिए उसका इलाज किया जा चुका है।

(५) यदि दोनों पक्षों में कोई एक बड़े भयानक और असाध्य प्रकार के कुष्ट से पीड़ा उठा रहा है।

पूर्व इसके कि मैं इस अत्यन्त विवादास्पद और गंभीर विषय पर वैयक्तिक रूप से अपने विचार जनता के सामने रखूं, मैं यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि वैदिक आदर्श के अनुसार पति पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होना चाहिए। पाणिग्रहण के समय जो मन्त्र 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥' [ऋ० १०, ८५, ३६]

'ममेयमस्तु पोष्या मह्य त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥ [अथर्व १४, १, ५२]

इत्यादि मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें वर वधू को संबोधित करते हुये स्पष्ट कहता है कि मैं तुम्हारे हाथ को सौभाग्य की वृद्धि के लिए ग्रहण कर रहा हूँ तुम मेरे साथ वृद्धावस्था पर्यन्त सुखपूर्वक निवास करो। तुम मेरी पोष्या या भार्या हो। परमात्मा ने तुम्हें मुझे दिया है। मुझ पति के साथ तुम १०० वर्ष पर्यन्त सुख शान्ति पूर्वक रहो।

(२) "आ नः प्रजां जनयतु प्रजा पतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥" [ऋ० १०।८५।४३]

(१) "इहैवस्तं मावियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥" [ऋ० १०।८५।४२]

इत्यादि विवाह सूक्त के अन्य मन्त्रों में भी यह स्पष्टतया कहा गया है कि परमात्मा हमें वृद्धावस्था पर्यन्त सदा मिलाये रक्खे। हे पति-पत्नि! तुम दोनों यहां ही रहो। (मावियौष्टम्) तुम्हारा एक दूसरे से कभी वियोग व विरोध न हो अथवा तुम एक दूसरे का परित्याग न करो। घर में प्रसन्न होकर सम्पूर्ण आयु को आनन्द पूर्वक बिताओ, इत्यादि।

वैदिक आदर्श के अनुसार निम्न नियम आवश्यक हैं—

(१) कम से कम २५ वर्ष तक पुरुष और १६ वर्ष तक कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके तभी एक दूसरे की प्रसन्नता से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

(२) विवाह युवावस्था में स्वयंवर रूप में होना चाहिये, जब परस्पर दृढ़ कामना हो तभी विवाह होना चाहिए अन्यथा नहीं यह भाव 'ध्यमगन् पति कामा जनिकामोऽहमागमम्।' [अथर्व वेद] 'वधूरियं पति मिच्छन्त्येति ॥ [ऋ० ५।३७।३] 'भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥ [ऋ० १०।२७।१२]

इत्यादि वेद मन्त्रों में स्पष्टतया प्रतिपादित है। दोनों अपने कर्त्तव्य और उत्तर-दायित्व को जानते हुए परस्पर प्रसन्नता पूर्वक विवाह करते हैं।

(३) पुरुष को पत्नीव्रत धर्म का और स्त्री को पातिव्रत धर्म का भली भांति सदा पालन करना चाहिए। परस्पर पूर्ण विश्वास रखते हुए उन्हें धर्म, अर्थ, काम में पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इन वैदिक आदर्शों का पालन करते हुए विवाह सम्बन्ध विच्छेदादि का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। किन्तु दुर्भाग्यवश इन आदर्शों और नियमों से जनता बहुत दूर जा चुकी है। न ब्रह्मचर्य का क्रम रहा, न वेदाध्ययनादि का और न अन्य वैदिक नियमों का पालन किया जाता है जिस से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास हो सके। ऐसी दशा में प्रश्न उपस्थित होता है कि जो अवस्थाएं धारा ३० में वर्णित हैं उन में क्या किया जाए।

मध्यकाल में जो भी स्मृतियां लिखी गईं तथा अन्य ग्रन्थ बनाये गये उन में वैदिक आदेशों के विरुद्ध बहुत सी बातें पाई जाती हैं जिन को प्रामाणिक मान कर बाल्य विवाह प्रचलित हो गया, स्त्रियों से वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार छीन लिया गया, विवाह केवल माता पिता वा अधिक तर अशिक्षित पुरोहित वा नाई आदि की इच्छा से होने लगे जिनमें गुणकर्म स्वभाव के मेल का विचार न करके केवल जाति उपजाति की समानता का ध्यान रक्खा गया। ऐसी अवस्था में जो शोचनीय परिस्थिति उत्पन्न हो गई उसको सुधारने की आवश्यकता से कोई विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। बाल्य विवाह का ही कुपरिणाम बाल्य मरण, निर्वीर्यता व नपुंसकता आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पति-पत्नी के कलह तथा पतियों द्वारा विवाहित पत्नियों के त्याग उन से क्रूरतापूर्ण व्यवहार अथवा पुनर्विवाह आदि के सैकड़ों नहीं हज़ारों उदाहरण किसी भी नगर में सुगमता से पाये जा सकते हैं। ऐसी अवस्था में क्या वैदिक आदर्शों अथवा सनातन धर्म की दुहाई देने से काम नहीं चल सकता है? यह प्रश्न जिस पर समाज हितैषियों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रतिकार का अवलम्बन किया जाए वह कहीं वर्त्तमान अवस्था को और भी बिगाड़ने वाला न हो।

हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार—४

विवाह-विच्छेद और स्मृति आदि ग्रंथ

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रायः कहा जाता है कि विवाह सम्बन्ध विच्छेद (जिसे साधारण तथा तलाक के नाम से कहते हैं) हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज की भावना के सर्वथा विरुद्ध तथा उसके लिए सर्वथा नवीन प्रथा है जिसको इस बिल द्वारा हिन्दू समाज पर लादा जा रहा है। यही बात भारतीय राष्ट्र संसद् (पार्लियामेंट) में पं० लक्ष्मीकान्त मैत्रादि अनेक सज्जनों ने बार बार कही थी। किन्तु स्मृतिग्रन्थों तथा मध्यकालीन अन्य साहित्य का निष्पक्षपात अनुशीलन करने पर इसकी असत्यता स्पष्ट ज्ञात है। जैसा कि इस लेख के प्रारम्भिक भाग में मैं दिखा चुका हूं वैदिक आदर्शों का अनुसरण करते और विवाह विषयक वैदिक नियमों का पालन करते हुए तो विवाह सम्बन्ध विच्छेद का प्रश्न ही नहीं उठ सकता किन्तु उन आदर्शों से दूर होने और वेद विरुद्ध प्रथाओं के अनुसरण के कारण जो शोचनीय अवस्था उत्पन्न हो चुकी है हमें तो इस समय उस पर विचार करना है। निम्नलिखित स्मृत्यादि वचनों को इस सम्बन्ध में ध्यान में रखना चाहिए। सब से पूर्व मैं उस स्मृति वचन को उद्धृत करता हूं जो सुप्रसिद्ध है :

(१) "नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते ॥"

यह श्लोक पराशरस्मृति के अ० ४ का श्लोक ३० है। पराशरस्मृति

के 'कलौ पाराशराः स्मृताः अथवा 'कलौ पाराशरी स्मृतिः ॥' इत्यादि के अनुसार इस कलियुग में हमारे पौराणिक भाई जो हिन्दू कोड बिल का विरोध कर रहे हैं सब से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट है कि--

पति के नष्ट हो जाने (उसके गुम हो जाने अथवा उसके विषय में कोई समाचार ज्ञात न होने) मर जाने, संन्यासी हो जाने, नपुंसक होने अथवा पतित हो जाने पर ---इन पांच आपत्तियों में स्त्रियों के लिए दूसरे पति का विधान किया जाता है।

हिन्दू धर्म का परित्याग करके मुसलमान व ईसाई हो जाना श्रद्धालु हिन्दुओं की दृष्टि में पतित हो जाना है! अतः धारा ३० में वर्णित अनेक बातों का इसे आधार कहा जा सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

मुझे मालूम है कि पौराणिक भाष्यकार तथा अन्य भाई इस श्लोक के 'पतौ' का अर्थ विवाहित पति नहीं किन्तु 'उत्पत्स्यमानपति' वा भावी पति करके इस श्लोक का सम्बन्ध विवाह संस्कार से पूर्व केवल वाग्दान की अवस्था में मानते हैं और व्याकरण की दृष्टि से तोड़ मरोड़ कर ऐसा अर्थ करने का दुस्साहस करते हैं किन्तु 'पतिः अन्यो विधीयते' इन शब्दों से जिनका अर्थ सिवाय इसके कोई हो ही नहीं सकता कि दूसरे पति का विधान किया जाता है उनके इस प्रयत्न की निस्सारता सिद्ध होती है। यहां 'पतौ' इसको आर्ष प्रयोग मानना ही उचित है। इस पर भी यदि किसी को सन्देह हो तो नारदीय मनुसंहिता अध्याय १२ के श्लोक ६६ को देखना चाहिए जो निम्न शब्दों में है :—

"पत्यौ प्रव्रजिते नष्टे, क्लीवे ऽथ पतिते मृते। पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते ॥"

(देखो नारदीय मनुसंहिता भवस्वामिभाष्यसंहिता साम्बशिवशास्त्रिणा सम्पादिता त्रिवेन्द्रम् सन् १६२६ पृ० १४४) यहां उसी ऊपर उद्धृत श्लोक को ही थोड़े से शब्दभेद से दिया गया है। मुख्य बात यह कि 'पत्यौ' शब्द का प्रयोग है जो लौकिक व्याकरण की दृष्टि से भी सर्वथा ठीक है। इसका अर्थ वही है जो ऊपर दिया जा चुका है। वृद्ध मनुस्मृति अ० ६ पृ० १११ में भी यह श्लोक पाया जाता है। अग्निपुराण अ० १५४ में भी यही श्लोक पराशर स्मृति के पाठ के अनुसार विद्यमान है।

गौतम धर्म के सूत्र के मस्करिभाष्य में अपतिरपत्यलिप्सुर्देवरात् १८।५ की व्याख्या में लिखा है :

अपतिः—अविद्यमान भर्तृ का अयोग्यपतिर्वा तथा च बृहस्पतिः 'नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतितेपतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' इति ।

(देखो पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ पूना द्वारा सम्पादित "धर्मकोष" व्यवहार कांड पृ० १०१२) इससे ज्ञात होता है कि बृहस्पति स्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था जो स्मृति इस समय सम्पूर्णतया उपलब्ध नहीं होती ।

इनके अतिरिक्त चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला कार्यालय बनारस से मनुस्मृति कुल्लूक भाष्य सहित संवत् १९९२ में प्रकाशित हुई थी उसके अन्त में वर्तमान मनुस्मृति में अविद्यमान किन्तु अन्य ग्रन्थों में मनु के नाम से वर्णित श्लोकों में पृष्ठ १२ पर इस 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।' इत्यादि श्लोकों को 'स्मृति चन्द्रिका' नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ के आधार पर उद्धृत किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि पहले मनुस्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था । जो श्लोक इतनी स्मृति-पुराणादियों में पाया जाता हो उसको ऐसे ही टाला नहीं जा सकता ।

(२) मनुस्मृति अ० ९ श्लोक ७२ भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है जो निम्न लिखित है:—

"विधिवत् प्रतिगृह्यापि, त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । व्याधितां विप्रदुष्टां वा, छद्मना चोपपादिताम् ।" इसका अनुवाद साधुचरणप्रसाद जी ने वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से मुद्रित धर्मशास्त्र संग्रह के पृष्ठ १९२ में इस प्रकार दिया है:—

"वर को उचित है कि अलक्षण दोष वाली रोगिणी, मैथुन संसर्ग वाली अथवा ठगहारी करके दी हुई कन्या को विधिपूर्वक ग्रहण करके भी त्याग देवे ।"

(३) नारदीय मनुसंहिता १२।३२ में लिखा है:—

"यस्तु दोषवतीं कन्याम्, अनाख्याय प्रयच्छति । दोषे तु सति नागः स्यात्, अन्योन्यं त्यजतोस्तयोः ॥" साधुचरणप्रसाद जी ने धर्मशास्त्र संग्रह पृ० ३६४ में इसका अनुवाद यों दिया है:—

"यदि कन्या के दोष को छिपाकर वर को कन्या दी जाए तो वर कन्या को त्याग देवे और वर के दोष को छिपाकर कन्या से विवाह किया जाए तो कन्या वर को त्याग देवे इस में कोई अपराधी न होगा ।"

[धर्मशास्त्रसंग्रह पृष्ठ ३६४]

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में भी इस प्रकार धोखे से कराये गये विवाह को

अवैध माना गया है जिस का आधार उपर्युक्त वचन प्रतीत होते हैं।

(४) मनुस्मृति अ० का निम्नलिखित श्लोक भी इस सम्बन्ध में विशेष विचारणीय है:—

"प्रोषितो धर्मकार्यार्थं, प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः। विद्यार्थं षड्यशोऽर्थं वा, कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥"

[मनु अ० ९। ७६। ८१]

इस का अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में इस प्रकार दिया है :

"पुरुष के लिए भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से ८ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे) सन्तान होकर मर जावे तो दशवें-जब जब हो तब तब कन्या ही हो पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष तक और अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उस को छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर के उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे।" इत्यादि सत्यार्थप्रकाश २७वीं बार पृ० ७३

(५) मनुस्मृति ९।७९ में लिखा है कि उन्मत्तं पतितं क्लीबम् अबीजं पाप रोगिणम्। न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्।

भावार्थ यह है कि यदि स्त्री ऐसे पति से द्वेष करती है जो उन्मत्त (पागल है धर्म का त्याग करके पतित हो गया है नपुंसक तथा कोढ़-आदि भयङ्कररोग ग्रस्त है तो उसको विशेष दोष वा दण्ड नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत हिंदू कोड बिल की धारा ३० में इसी प्रकार की शर्तें रखी गई हैं जैसे पाठक लेख के प्रारम्भ में उद्धृत वाक्यों में देख सकते हैं।

(६) कौटिल्य अर्थशास्त्र धर्मस्थीय अधिकरण ३ अध्याय २ में चाणक्य ने लिखा है:—

"नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषी। प्राणाभिहन्ता पतितः, त्याज्यः क्लीबोऽथवापतिः ॥"

"परस्परं द्वेषान्मोक्षः" धर्मस्थीय अ० ३।३।१९

अर्थात् पति यदि नीच और पतित होगया हो, परदेश चला गया हो (और उसके विषय में कुछ ज्ञात न हो तो नियत अवधि तक मनु के अनुसार जो

अधिक से अधिक ८ वर्ष है प्रतीक्षा कर के) धार्मिक राजा से द्रोहादि भयङ्कर अपराधी, हत्यारा अथवा नपुंसक हो तो वह त्याज्य है।

परस्पर द्वेष से पति पत्नी का त्याग या सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है।

(२) यम स्मृति, कात्यायनादि से इसी प्रकार अन्य भी अनेक वचन उद्धृत किये जा सकते हैं किंतु इस विषय पर विचार पहले ही लम्बा हो गया है अतः उन्हें उद्धृत करते हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को ऐसा सुधारना चाहिये कि सम्बन्ध विच्छेदादि का विचार भी कभी विवाहित पति-पत्नी के मन में उत्पन्न न हो। पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म का पालन जो हमारी प्राचीन संस्कृति के मुख्य तत्त्व हैं—यदि पति-पत्नी करें तो इस प्रकार के विधान सर्वथा अनावश्यक हो जाएं। सब समाज-हितैषियों को मिल कर ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये। अत्यन्त विशेष आपत्ति, आकस्मिक मरण, असमर्थतादि में प्राचीन नियोग पद्धति का आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु वर्तमान परिस्थिति में यदि इसे व्यवहार्य न माना जाय तो अत्यन्त विकट और जटिल अवस्थाओं में जहां अन्य कोई चारा ही न हो, सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति अन्तिम साधन के रूप में दी जा सकती है पर उसकी शर्तों को अत्यधिक कठोर बनाना चाहिए ताकि उसका दुरुपयोग न हो सके। पाश्चात्य देशों में तलाक को जो अत्यन्त सुलभ बना दिया गया है उसके कारण नैतिकता व सदाचार का अत्यन्त ह्रास हो रहा है जो अवश्य अत्यन्त निन्दनीय है अतः हमें उसका अनुकरण न करना चाहिए। अतः जो धारा ३० मैंने इस लेख के प्रारम्भ में उद्धृत की थी उसमें निम्न संशोधन मुझे अत्यावश्यक प्रतीत होते हैं :—

(१) ऐसा नियम बना दिया जाय कि विवाह के ८ वर्ष बाद तक कोई सम्बन्ध विच्छेद के लिए प्रार्थनापत्र नहीं दे सकता और न किसी को ऐसी अनुमति उस अवधि तक दी जायगी। विश्वस्त-सूत्र से ज्ञात हुआ है कि ५ वर्ष की अवधि को इस बिल के प्रस्तोता संशोधन के रूप में स्वयं स्वीकार करने को उद्यत हैं यदि उसे ८ वर्ष तक बढ़ा दिया जाय तो अधिक अच्छा हो। इस बीच में बहुत अधिक सम्भावना यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे के स्वभावादि से परिचित होकर सम्बन्ध-विच्छेदादि का विचार भी न करेंगे।

(२) नपुंसकता, पागलपन, कुष्ठ इत्यादि की चिकित्सा के लिए भी ८ वर्ष

की अवधि देना उचित है। यदि भली-भाँति चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा करने पर भी लाभ न हो और पति-पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद पर ही उतारू हों तो इस ८ वर्ष की अवधि के पश्चात् उसकी अनुमति दी जा सकती है।

विवाह-विच्छेद विषयक धारा ३० के अतिरिक्त धारा ३३ में 'अदालती अलहदगी' के विषय में कहा गया है कि :—

"विवाह के दोनों पक्षों में से कोई भी व्यक्ति चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हो चुका है जिला अदालत को इस आधार पर अदालती अलहदगी की डिग्री प्राप्ति के लिये प्रार्थना कर सकता है कि दूसरा पक्ष

(अ) प्रार्थी को एक ऐसे समय से छोड़ चुका है जिसकी अवधि २ वर्ष से कम नहीं है।

(इ) ऐसे जुल्म या अत्याचार का दोषी हो चुका है कि जिस के फलस्वरूप प्रार्थी उक्त पक्ष के साथ रहने में भयभीत हो चुका है अथवा

(उ) असाध्य सोज़ाक, आतशक व्याधि से पीड़ित हो रहा है जो कि प्रकट अवस्था में है तथा जो कि उसे प्रार्थी की ओर से नहीं लगी है तथा इतने समय से वह इस व्याधि से पीड़ित है, जिसकी अवधि उस प्रार्थना-पत्र देने के सन्निहित काल से आरम्भ करके एक वर्ष से कम नहीं है

(ऋ) एक भयानक प्रकार के कुष्ठ (कोढ़) से पीड़ित हो रहा है अथवा

(ए) विवाह की तारीख से लेकर उसे लगातार स्वाभाविक पागलपन हो चुका है अथवा

(ओ) दाम्पत्य काल के दौरान में व्यभिचार कर चुका है।"

इन नियमों में भी १ और २ वर्ष की अवधि के स्थान पर कम से कम ४ वर्ष की अवधि रखनी चाहिए। यह अदालती अलहदगी, संपूर्ण तथा विवाह विच्छेद से भिन्न है अतः न्यायाधीशों तथा अन्यों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे दम्पती प्रेमपूर्वक साथ रहने को पुनः उद्यत हो जाएं।

पतिव्रता धर्म के महत्त्व के विषय में जो कहा जाता है वह ठीक ही है और इसमें सन्देह नहीं कि वह हमारी संस्कृति और सभ्यता के लिए विशेष गौरव की वस्तु है जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। दुःख की बात यही है पत्नीव्रत धर्म के महत्त्व पर हिन्दू समाज में उतना बल नहीं दिया जाता अन्यथा इतनी शोचनीय दशा न होती, और न इस प्रकार के नियमों की कोई आवश्यकता होती। बड़ौदा में सन् १९३१ से हिन्दू डाइवोर्स

लों अथवा सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति का कानून विद्यमान है, किन्तु तब से अब तक उन जातियों की ओर से जहां पहले तलाक की प्रथा न थी केवल ४३ ही केस हुए हैं जिन में मुख्य आधार पति की ओर से क्रूरता और परित्याग ही था।

अतः इन उपर्युक्त धाराओं को भी न जानते हुए अज्ञ जनता में उत्तेजना उत्पन्न करने के लिये जो यह फैलाया जा रहा है कि इस बिल के अनुसार जब इच्छा होगी पति-पत्नी एक दूसरे का परित्याग कर देंगे और इस प्रकार हिन्दू जाति और उसकी संस्कृति का नाश हो जायगा यह बात सर्वथा असत्य है।

धारा ३४ में स्पष्ट कहा गया है कि "कोई भी विवाह तबतक कानूनी तौर-पर परित्यक्त हुआ नहीं विचारा जायगा जबतक कि उस पर किसी समुचित अदालत द्वारा यह घोषित करते हुए डिग्री नहीं दी जाती कि ऐसा विवाह या तो विवाह-विच्छेद के लिये दिये प्रार्थना-पत्र पर खतम किया गया है अथवा किसी अन्य ऐसी कानूनी कार्यवाही में समाप्त किया गया है जिसमें विवाह का जायजपन (वैधता) विचारणीय विषय था।"

धारा ४४—विवाह समाप्ति सम्बन्धी प्रत्येक डिग्री जो जिला जज द्वारा दी गई है वह हाईकोर्ट द्वारा पक्का होने का विषय होगी। इत्यादि इन नियमों का दुरुपयोग किसी भी अवस्था में न होने पाए और इन्हें नर्म न बना दिया जाय (जैसे कि पाश्चात्य देशों में है) यह चेतावनी देना आवश्यक है। "भारत में लगभग ९० प्रतिशतक जातिभेद की दृष्टि से शूद्रों में आते हैं जिनमें सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है" यह माननीय डा० अम्बेदकर का कथन कहां तक ठीक है यह मुझे ज्ञात नहीं। सम्भवतः इसमें कुछ अत्युक्ति हो। जातिभेद की अनिश्चितता के कारण भी ऐसा संभव है तथापि इसे मैं तलाक की प्रथा को उत्तम समझने अथवा उसे अपनाने की युक्ति के रूप में मानने को उद्यत नहीं। हां सर्वथा अन्तिम साधन के रूप में उपायान्तर न होने पर ही उसकी अनुमति अति विशेष अवस्थाओं में दी जा सकती है। मैंने ये बातें समस्त हितैषियों के विचारार्थ लिखी हैं। आशा है समाजहित और शास्त्रीय वचनों को ध्यान में रखते हुए इन पर विद्वान् लोग निष्पक्षपात होकर विचार करेंगे। यदि वर्तमान शोचनीय परिस्थिति का अन्य कोई प्रतिकार हो सकता है तो उसका भी निर्देश करेंगे।

दत्तक विधान और संरक्षकता

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

हिन्दू कोड बिल के तृतीय भाग में दत्तक विधान अथवा गोद लेने विषयक नियम हैं और चतुर्थ भागमें अल्पवयस्कता (नाबालिगपन) और संरक्षकतादि विषयक। इन दोनों भागों में वर्णित मुख्य-मुख्य धाराओं पर मैं इस लेख में संक्षिप्त विचार करूंगा।

अभी तक हिन्दुओं में गोद लेने विषयक भिन्न-भिन्न प्रकार रहे हैं, भाग ३ में उन्हें एकरूपता देने का यत्न किया गया है जो प्रशंसनीय है।

'गोद लेने के विषय में योग्यता' शीर्षक की धारा २४ में कहा गया है कि कोई भी ऐसा हिन्दू पुरुष जिसके होश व हवास (स्वस्थ मानसिक अवस्था) कायम हैं और अपनी आयु के १८ वर्ष पूरे कर चुका है, वह पुत्र गोद (दत्तक) लेने की योग्यता रखता है।

किन्तु शर्त यह है कि कोई भी हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी की अनुमति ग्रहण किये बिना गोद नहीं लेगा। मेरी सम्मति में दत्तक पुत्र लेने के लिए १८ वर्ष की आयु सर्वथा अपर्याप्त है। कम से कम २५ वर्ष की आयु का नियम रखना चाहिये। जैसा कि मैं इस लेखमाला के प्रथम लेख में बता चुका हूं इस कोड बिल के बनाने वालों ने हिन्दुत्व की रक्षा का ध्यान रखते हुए धारा ६२ के अंश (३) में माता को दत्तक लेने का अधिकार दिया है, यदि बच्चे के पिता ने हिन्दू-धर्म को त्याग दिया हो।

यदि विधवा ने हिन्दू धर्म त्याग दिया हो तो धारा ६१ के अंश (३) में उसके गोद लेने के अधिकार को समाप्त माना गया है। कोई भी हिन्दू धर्म प्रेमी इस भावना का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता।

'गोद लिये जाने की योग्यता' विषयक धारा ६३ में बताया गया है कि कोई भी व्यक्ति तब तक गोद लिये जाने योग्य क्षमता नहीं रखेगा जब तक कि निम्नलिखित शर्तों के सम्बन्ध में तसल्ली नहीं हो जाती:—

(१) वह हिंदू है।

(२) वह विवाहित नहीं है।

(३) वह पहले से ही गोद नहीं लिया जा चुका है।

(४) वह अपनी आयु के १५ वर्ष पूरे नहीं कर चुका है।

इनमें कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर आक्षेप किया जा सके। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गोद लेने के विषय में वर्तमान हिंदू विधान (कानून) में विद्यमान जाति विषयक प्रतिबन्ध को हटा दिया गया है। वर्तमान कानून के अनुसार केवल उसी बालक को दत्तक के रूप में लिया जा सकता है जो गोद लेने वालेकी अपनी जाति का हो। अब जाति-उपजातियोंके प्रतिबंध को हटा दिया गया है। किंतु इतना ही प्रतिबंध रखा गया है कि वह हिन्दू हो। इन शर्तों को न जानते हुए अथवा जानबूझकर भी कोड बिल विरोधियों की ओर से पत्रों में यह जो आन्दोलन किया गया, कि इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को चाहे वह मुसलमान व ईसाई भी क्यों न हो अब गोद लिया जा सकेगा, उसकी असत्यता स्पष्टतया ज्ञात होती है। जाति विषयक प्रतिबन्ध की वस्तुतः इस विषय में कोई आवश्यकता व उपयोगिता नहीं अतः आशा है उदार मनोवृत्ति वाले सभी समाजहितैषी इस धारा का वर्तमान रूप में स्वागत करेंगे। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले कूपमंडूकों का तो इससे अप्रसन्न होना स्वाभाविक है किन्तु इस संकीर्णता से समाज और राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। हां, जो अपनी कल्पित जाति-उपजाति तक दत्तक लेने के अधिकार को सीमित रखना चाहें उनको ये नियम ऐसा करने से रोकते नहीं, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

दत्तक विधानमें एक मुख्य परिवर्तन जो प्रवर समिति ने किया है वह इस प्रकरण में उल्लेखनीय है। वर्तमान विधान के अनुसार दत्तक पुत्र विधवा की, जिस ने उसे गोद में लिया है, सारी सम्पत्ति पर अधिकार रख सकता था और इस के कारण बड़ी मुकदमेबाजी होती रहती थी और गोद लेने वाली विधवा की अवस्था बड़ी दयनीय हो जाती थी। अब

धारा ६८ में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि : (१) जहां पर कि इस कोड के आरम्भ होने के बाद कोई विधवा गोद लेती है उस के द्वारा गोद लिया हुआ पुत्रः—

(अ) उस विधवा या उस की सौत विधवाओं (यदि कोई है) द्वारा उसके गोद लेने वाले पिता के वारिस होने के रूपमें ऐसी जायदाद में से, जो कि उस गोद लेनेके कार्य के पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी, उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी, उस का आधा लेगा।

आशा है विचारशील जनता द्वारा इस नवीन नियम का जो अनुभव से लाभ उठा कर विधवा के प्रति सहानुभूति की भावना से बनाया गया है स्वागत व अभिनन्दन किया जायगा।

नाबालिग और उसके संरक्षक के सम्बन्ध में जो धाराएं भाग ४ में दी गई हैं उनके सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। धारा ७८ में हिंदू नाबालिग (अल्पवयस्क) के स्वाभाविक संरक्षक के विषय में कहा गया है:—

किसी नाबालिग हिन्दू की निजता (person) तथा उसके साथ साथ उसकी सम्पत्ति के मामले में उसके स्वाभाविक संरक्षक हैं—

(अ) किसी बालक या अविवाहित कन्या के मामले में पिता और उस के बाद माता, किन्तु शर्त यह है कि ऐसे नाबालिग का संरक्षण (custody) जो कि अपनी आयु के तीन वर्ष समाप्त नहीं कर पाया है साधारणतया उसकी माता का होगा।

(इ) किसी नाजायज बालक अथवा अविवाहित कन्या के मामले में माता और उसके बाद पिता।

(उ) किसी विवाहित लड़की के मामले में उसका पति किन्तु शर्त यह है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का संरक्षक होने का अधिकार नहीं रखेगा।

(अ) यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है।

(इ) यदि वह पूर्णतया और अन्तिम रूप में धारा ११० की उपधारा (१) में वर्णित रीतियों में से किसी रीति अनुसार संसार को त्याग चुका है।

धारा ८१ में बतलाया गया है कि जहां स्वाभाविक संरक्षक हिन्दू धर्म को त्याग चुका है वहां उसकी अधिकार सत्ता का खण्डन हो जायगा। धारा ८२ में बतलाया गया है कि 'किसी नाबालिग हिन्दू के संरक्षक का कर्तव्य होगा कि

वह ऐसे नाबालिग का हिन्दू के रूप में पालन पोषण करे।' कोई भी हिन्दू धर्म से प्रेम रखने वाला व्यक्ति हिंदुत्व पोषक इन धाराओं का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता। एक और बात जिसका इस प्रसङ्ग में उल्लेख और समर्थन मुझे आवश्यक प्रतीत होता है वह नाबालिग बच्चों पर माता के अधिकार की स्वीकृति विषयक है। अब तक के विधान में यह ज्ञात हुआ है कि इसकी उपेक्षा की जाती थी यद्यपि शास्त्रों के अनुसार माता का स्थान सबसे ऊंचा है। यहां तक कि मनुस्मृति अ० २ श्लोक १४५ में लिखा है कि 'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता सहस्रं तु पितृन्माता, गौरवेणातिरिच्यते।' अर्थात् आचार्य का स्थान १० उपाध्यायों से भी बढ़ कर है, पिता का गौरव १०० आचार्यों और माता का १००० पिताओं से भी बढ़ कर है।

इस दृष्टि से इन ऊपर उद्धृत धाराओं और धारा ८२ के इस अंश का कि 'किन्तु शर्त यह है कि इस धारा में किसी भी ऐसी बात का होना नहीं विचारा जायगा जो कि किसी भी व्यक्ति को संरक्षक का कार्य पूरा करने के लिए अधिकार कर सके यदि ऐसे नाबालिग की माता जीवित है और अपने ऐसे नाबालिग बच्चे की स्वाभाविक संरक्षिका होने की क्षमता वा योग्यता रखती है।' हम अभिनन्दन करते हैं।

सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार

(पूर्वार्द्ध)

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

इस लेख में मैं उन धाराओं पर कुछ विचार करना चाहता हूं जिनका सम्बन्ध 'स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार' के साथ है। पुत्रियों के पैतृक सम्पत्ति में अधिकार पर मैं अगले लेख में विचार करूंगा। ये दोनों विषय ही बड़े विवादास्पद और कठिन हैं। मैंने स्वयं अनेक दिनों तक इन विषयों पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है और मुझे यह लिखने में संकोच नहीं कि अभी तक मैं सर्वथा निश्चित परिणाम पर पहुंचने में पूर्णतया समर्थ नहीं हो सका तथापि अनेक विचारों को लेखबद्ध करना मुझे उचित प्रतीत होता है ताकि विचारशील जनता तथा विद्वन्मण्डली उन पर पुनः गम्भीरता से विचार कर सके।

स्त्रियों तथा विधवाओं का सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं, और यदि होना चाहिए तो वह सीमित हो अथवा पूर्ण जैसा कि इस बिल की धारा ६१ एवं ६३ में उल्लिखित है। इन धाराओं में कहा गया है:—

स्त्री की सम्पत्ति के प्रकार—(१) इस कोड के अस्तित्व में सम्पूर्णतया आने के बाद किसी स्त्री द्वारा जो भी सम्पत्ति प्राप्त की जायगी वह निश्चयात्मक या निजी (Absolute) उसकी सम्पत्ति होगी।

अपवाद—(२) उपधारा (१)में उल्लिखित कोई बात किसी ऐसी सम्पत्ति पर लागू नहीं होगी जो कि स्त्री द्वारा बतौर दान के या किसी वसीयतनामे के अधीन प्राप्त की गई है और जहां दान एवं वसीयतनामे की शर्तें स्पष्टरूप या आनुषंगिक रूप में ऐसी सम्पत्ति के बारे में सीमित अधिकार प्रदान करती हैं बशर्ते कि उक्त आनुषंगिक आदेश का उद्‌भव उस स्त्री जाति के कारण ही नहीं होता।

व्याख्या—इस धारा में 'सम्पत्ति में स्त्री द्वारा उपलब्ध चल और अचल उभय सम्पत्तियों का समावेश होगा, फिर चाहे वह प्राप्ति उसके विवाह से पहले या बाद हुई हो अथवा वैधव्यकाल के मध्य में हुई हो और चाहे वह उत्तराधिकारी के रूप में या किसी कार्य के फलस्वरूप अस्तित्व में आई हो या बंटवारे पर अथवा किसी सम्बन्धी या अन्य व्यक्ति द्वारा किसी दान से या अपनी चातुरी या प्रयत्न से या खरीद से या बहुकालबोधक अधिकार से किसी तरीके से प्राप्त हुई हो।

धारा १३—स्त्रीधन-पत्नी की अमानत—इस कोड के आरम्भ होने के बाद किसी विवाह के संस्कार सम्पूर्ण होने की अवस्था में कोई भी ऐसा स्त्रीधन (डावरी या दहेज) जो कि उस विवाह प्रसंग पर अथवा उसकी किसी शर्त के रूप में या उसके सम्बन्ध में एक उपहार के रूप में दिया गया है वह उस स्त्री की सम्पत्ति समझा जायगा जिसका कि इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया है।

(२) जहां ऐसी स्त्री के अतिरिक्त कि जिसका इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया है किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई स्त्रीधन प्राप्त किया जाता है, तो उस अवस्था में ऐसे व्यक्ति को वह अपने पास उस स्त्री के लाभ तथा व्यक्तिगत उपयोग के लिए एक अमानत के रूप में रखना होगा तथा जब वह स्त्री अपनी आयु का १८ वां वर्ष पूरा करे तब दे देना होगा और यदि वह अपनी आयु की उक्त अवधि पूरी करने से पहले ही मर जाए तो भाग ७ में निश्चित किये गये उस के उत्तराधिकारियों के नाम परिवर्तित कर देना होगा। इन धाराओं में निर्दिष्ट वस्तु गम्भीरता से विचारने योग्य है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञीश्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥ १०। ८५। ४६

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवं त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ।
[अथर्व० १४।१।४३]

वेदों में पत्नी का स्थान बहुत उच्च माना गया है तथा उस के लिए अनेक वेद मन्त्रों में सम्राज्ञी शब्द का प्रयोग किया गया है जिस का अर्थ सम्+राज्ञी अपने गुणों से भली भांति चमकने वाली और रानी होता है।

यह मन्त्र इस विषय में विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। सम+राज्ञी का अर्थ सम् = मिलकर (पति से मिलकर) अथवा उसके साथ राज्य करने वाली यह भी होता है। इन मन्त्रों में नव वधू को सम्बोधित करते हुए घर की सम्राज्ञी बनने का आदेश वा आशीर्वाद दिया गया है और अपने श्वशुर, देवर, ननन्द, सास आदि सब सम्बन्धियों को सद्व्यवहार से प्रसन्न करने अथवा अपने गुणों से चमकने का उपदेश किया गया है। 'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः।' (ऋ० १०।८५।२६) तथा 'अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि' (ऋ० १०।८५।२७) इत्यादि मन्त्रों में भी स्त्री को गृह पत्नी अथवा घर की स्वामिनी बनने का उपदेश व आदेश है। 'आशसाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्। पत्युरनुव्रता भूत्वा संनह्यस्वामृताय कम् ॥' अथर्व (१४। १।४२) 'रय्या सहस्र वर्चसा, इमौ स्तामनुपक्षितौ' (अ० ३।७८।२) इत्यादि मन्त्रों में वधू को कहा गया है कि तुम पति से प्रेम, प्रसन्नता, सन्तान, सौभाग्य ऐश्वर्य की कामना करती हुई उसकी अनुव्रता हो कर सुख प्राप्त करो। ये दोनों (पति-पत्नी) सब प्रकार से धन से भरपूर हों। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद स्त्रियों के प्रति उच्च भाव दर्शाते हुए उनका पति की सम्पत्ति तथा समस्त सुख साधनों में समान अधिकार का निर्देश करते हैं।

मध्यकालीन साहित्य में स्त्रियों की स्थिति को हम अनेक अंशों में गिरा हुआ पाते हैं। 'अनृतं स्त्री', "निरिन्द्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥' तथा 'विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी' (श्री शङ्कराचार्य कृत प्रश्नोत्तरी) इत्यादि वाक्य हमें उस काल की अनेक स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में दिखाई देते हैं जिनमें स्त्रियों को अविश्वसनीय, असत्यस्वरूपिणी तथा अशुभा मानकर उनको सर्वथा अस्वतन्त्र तथा शूद्रा वा दासी समान माना गया है। किंतु ऐसे वेद विरुद्ध वचनों को चाहे वे किसी भी ऋषि मुनि के नाम पर निर्मित ग्रंथ में पाये जाएं, मानने से हमें सर्वथा इन्कार कर देना चाहिए क्योंकि वेद विरुद्ध होने के अतिरिक्त वे न्याय बुद्धि के भी विपरीत हैं। दुःख की बात यह है कि ऐसे स्त्रियों के प्रति हीनता और अविश्वास पूर्वक भाव

लोगों के हृदयों में घर किए हुए हैं और इन विषयों पर जब कभी विचार किया जाता है तो प्रायः पुरुषों के मुख से इस प्रकार के अविश्वाससूचक वाक्य ही निकलते हैं जैसे कि मैंने इन दिनों अनेक सुशिक्षित महानुभावों से भी बातचीत करके देखा है।

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से विचार करते हुए हमें स्त्रीधन के स्वरूप को समझ लेने की आवश्यकता है जिस पर प्रायः सभी स्मृतिकारों ने पूर्ण अधिकार स्वीकार किया है। मनुस्मृति ९।१९४ में स्त्रीधन का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है:—अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, दत्तं च प्रीतिकर्मणि। भ्रातृ मातृ पितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥ अर्थात् विवाह के समय में अग्नि के समक्ष जो धन स्त्री को दिया जाता है पति के गृह से जब पिता के घर स्त्री जाती है उस समय श्वशुरादि से जो प्राप्त होता है, पति द्वारा जो प्रेमोपहार रूप में दिया जाता है तथा भाई, माता और पिता द्वारा समय समय पर जो कुछ प्राप्त होता है, यह ६ प्रकार का स्त्रीधन माना जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति २।१४३ में 'पितृ मातृ पति भ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् आधिवेदनिकाद्यं च, स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥' इस श्लोक में स्त्रीधन का स्वरूप प्रायः मनुस्मृति के समान ही बताते हुए आदि शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसकी व्याख्या में विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा टीका में लिखा है कि 'आद्य शब्देन रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमप्राप्तमेतत् स्त्रीधनं मन्वादिभिरुक्तम्।' (याज्ञवल्क्य स्मृति मिताक्षरा, सुबोधिनी बाल भट्ट-आदि टीका सहित मद्रास पृ० ८४२) अर्थात् आदि शब्द से दाय भाग, खरीद बंटवारा, लाभ तथा अन्य प्रकार से प्राप्त धन, ग्रहण है।

नारदस्मृति में भी 'अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, भर्तृदायस्तथैव च। भ्रातृदत्तं पितृभ्यांच, षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥' [ना० स्मृ० १३। ८] इन शब्दों में मनुस्मृति के समान स्त्रीधन का स्वरूप बताया गया है। भर्तृदाय शब्द का स्पष्ट रूप से यहां प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ पति द्वारा प्रदत्त है।

इस स्त्रीधन पर स्त्रियों का पूर्ण अधिकार प्रायः स्मृतिकारों तथा महाभारतकार ने स्वीकार किया है। महाभारत १८। १ में कहा है:—

स्त्री धनस्येशिनी स्त्री स्याद्, भर्ता च तदनुज्ञया। भोक्तुं रक्षयितुं योग्यो भर्तुं नाशयितुं न च॥

अर्थात् स्त्रीधन की स्वामिनी स्त्री है। उसकी अनुमति से ही पति विशेष

अवस्थाओं में उसका उपयोग कर सकता है अन्यथा नहीं। यहां तक कि इस विषय में लिखा है:—

'न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च। आदाने वा विसर्गे वा, स्त्रीधने प्रभविष्णवः॥'

[दायभाग ७८ स्मृति चन्द्रिका २८२ पराशर माधवीय ५२६]

अर्थात् स्त्रीधन को लेने और उसको बेचने आदि का अधिकार पति, पुत्र, पिता, भ्राता आदि किसी को भी नहीं है।

सौदायिक धन का लक्षण शुक्रनीति ४। ७६३ में इस प्रकार किया गया है:—

ऊढया कन्यया वापि, पत्युः पितृगृहेऽपिवा। भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्वा, लब्धं सौदायिकं स्मृतम्। [स्मृतिसार ६०, स्मृति चन्द्रिका, २८२ पराशर माधवीय ५४६]

अर्थात् विवाहिता अथवा अविवाहिता कन्या पति वा पिता के घर से अथवा भाई और माता-पिता के पास से जो कुछ प्राप्त करती है उसे सौदायिक कहते हैं। उस सौदायिक धन के विषय में शास्त्रकारों ने कहा है:—

सौदायिकं धनं प्राप्य, स्त्रीणां स्वातंत्र्यमिष्यते। यस्मात्तदानृशंस्यार्थं, तैर्दत्तमुपजीवनम्॥ सौदायिके सदा स्त्रीणां, स्वातंत्र्यं प्रतिकीर्तितम्। विक्रये चैव दाने च, यथेष्टं स्थावरेष्वपि॥

[शुक्रनीति ४।७६२-६३ कात्यायनस्मृति, दायभाग ७६, स्मृति चन्द्रिका २८२, पराशर माधवीय ५४३]

अर्थात्, सौदायिक धन में स्त्रियों को सदा पूर्ण स्वतन्त्रता है। उसके बेचने और दान करने का और स्थावर सम्पत्ति—भूमि आदि के विषय में भी यथेष्ट वा इच्छानुसार कार्य करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है।

हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार—६

सम्पति में स्त्रियों के अधिकार

(उत्तरार्द्ध)

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में स्त्रियों के सम्पत्ति विषयक अधिकार के विषय में इस लेख के पूर्वार्ध में उद्धृत धाराओं में जो कुछ कहा गया है वह इन श्लोकों में दिए भाव के सर्वथा अनुकूल है अतः इन प्रस्तावों को शास्त्र-विरुद्ध बताना सर्वथा असत्य प्रमाणित होता है। किन्तु इस विषय में स्मृति-कारों का भी परस्पर मतभेद अवश्य है, विशेषतः इस विषय में कि विधवाओं का पति की चल और अचल सम्पत्ति में अधिकार सीमित होना चाहिए अथवा पूर्ण। उदाहरणार्थ नारद स्मृति में लिखा है—

भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं, स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपितत्।
सा यथा काममश्नीयाद्, दद्याद्वा स्थावरादृते॥

[नारद स्मृति—व्यवहार मयूख पृ० ६७ में उद्धृत वचन।]

अर्थात् पति ने पत्नी को प्रेमपूर्वक जो कुछ दिया हो उसके मरने पर वह उस धन का इच्छानुसार उपयोग करे अथवा उसे दान दे किन्तु स्थावर वा अचल सम्पत्ति के विषय में उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

एक दूसरे स्थान पर भी २।१४४ में नारद ने यही बात कही है:—

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता।
भुञ्जीतामरणात्क्षान्ता दायादा ऊर्ध्वमाप्नुयुः॥

अर्थात् पुत्र रहिता पवित्राचरण वाली विधवा क्षमाशीला होकर मरण-पर्यन्त पति की सम्पत्ति का उपभोग करे। उसके पश्चात् वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिले।

महाभारत अनुशासन पर्व ४७।२३-२४ में लिखा है:—

त्रिसहस्रपरोदायः, स्त्रियै देयो धनस्य वै।
भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति।
स्त्रीणां च पतिदायाद्यम्, उपभोगफलं स्मृतम्॥

अर्थात् पति को चाहिये कि वह पत्नी को ३००० से अधिक कार्षापण (एक सिक्का जिसका ठीक परिमाण हमें अभी तक ज्ञात नहीं हो सका) दायरूप में दे दे और वह पति के दिये उस धन का यथोचित रूप से उपभोग कर सकती है। पति का दिया धन वा सम्पत्ति उपभोग फल अर्थात् जीवित-काल तक उपयोग के लिये ही है।

यही बात कौटलीय अर्थशास्त्रकार ने—

'अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनम् आ आयुः क्षयाद् भुञ्जीत। आपदर्थं हि स्त्रीधनम्। ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत्॥ कौ० ३।२ में कही है।

इससें भी विधवा को आयुपर्यन्त पति की सम्पत्ति के भोग का अधिकार दिया गया है। इसके पश्चात् वह उसके उत्तराधिकारियों को मिले। याज्ञवल्क्य स्मृति २।१३६ की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर ने विधवा का पुत्र रहित पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार—

'तस्मादपुत्रस्य स्वर्यातस्यासंसृष्टिनो धनं परिणीता स्त्री संयता सकलमेव गृह्णाति।'

इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है। अर्थात् पुत्ररहित, सम्मिलित कुटुम्ब से विभक्त पति को संयमशीला साध्वी पत्नी सारा धन संग्रह करती है।

इस प्रकार स्मृतिकारों तथा निबन्धकारों का परस्पर मतभेद इस विषय में स्पष्ट है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से भी इस पर विचार आवश्यक है।

जो लोग हिन्दू कोड बिल में वर्णित धाराओं के विरोधी हैं उनमें से अधिकतर लोगों का यह कहना है कि स्त्रियां सम्पत्ति का प्रबन्ध करने में असमर्थ होती हैं अतः उनको पूर्णाधिकार देना ठीक न होगा। इस से न केवल उनको, प्रत्युत उन के कुल को भी हानि होगी। वस्तुतः यह बात अनुभव के

आधार पर सत्य नहीं प्रमाणित होती। बम्बई में जहां कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार प्राप्त हैं, कहा जाता है कि, उन्होंने सम्पत्ति के प्रबन्ध में पुरुषों से भी अधिक योग्यता का प्रायः परिचय दिया है। एक बात प्रस्ताव के विरुद्ध यह कही जाती है कि स्त्रियों में केवल ३ प्रतिशत शिक्षिता हैं, शेष ९७ प्रतिशत अशिक्षिता हैं अतः इस प्रकार का अधिकार देना उनके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा। यह युक्ति कुछ अंश तक ठीक प्रतीत होती है, किंतु इसके अनुसार पुरुषों में से भी केवल १० प्रतिशतक के लगभग शिक्षित और शेष अशिक्षित हैं अतः उन ९० प्रतिशतक लोगों को भी वह अधिकार न देना चाहिए। हिन्दू विश्व विद्यालय काशी के एक सुयोग्य उपाध्याय डा० अनंत सदाशिव अलतेकर ने अपनी पुस्तक (The position of women in Hindu civilisation) में यह सुझाव रक्खा है कि स्त्रियों को सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार देने के लिए शिक्षा का मानदण्ड नियत कर देना चाहिए। उस शिक्षा योग्यता से सम्पन्न महिलाएं ही उस अधिकार का उपयोग कर सकें, अन्य नहीं। यह प्रस्ताव मुझे भी उपादेय प्रतीत होता है। इससे यह अवश्य होगा कि जो युक्ति अशिक्षिता होने के कारण स्त्रियों के ठगे जाने की दी जाती है वह निर्बल हो जाएगी। किन्तु उस अवस्था में क्या पुरुषों के अधिकार पर भी ऐसा प्रतिबन्ध लगाना न्यायसंगत न होगा?

एक भय यह प्रकट किया जाता है कि यदि विधवाओं को पति की चल-अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार दिया जाएगा तो इसका दुरुपयोग होने की संभावना बहुत अधिक है। अतः एक प्रस्ताव यह किया जाता है, जैसे कि श्री चांदकरण शारदा जी ने हिंदू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए किया था, कि चल सम्पत्ति में स्त्रियों को पूर्णाधिकार दिया जाए किन्तु अचल सम्पत्ति में सीमित अधिकार जिससे वह उस परिवार में ही रहे। यह प्रस्ताव भी मुझे उत्तम और स्वीकरणीय प्रतीत होता है यद्यपि उपर्युक्त संभावना इससे सर्वथा दूर हो जाएगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक प्रस्ताव यह भी है कि जहां सन्तान तथा अन्य उत्तराधिकारी न हों वहीं विधवाओं को पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार दिया जाए अन्यथा नहीं। मुझे तो इसकी अपेक्षा भी पूर्वोद्धृत प्रस्ताव ही कि पति की चल सम्पत्ति में शिक्षित विधवाओं का पूर्णाधिकार हो वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आजकल जब कि नैतिक मर्यादा शिथिल हो

रही है और धूर्त वंचकों का जाल सर्वत्र फैला हुआ प्रतीत होता है, क्या यह अच्छा न होगा कि इस विषय में अधिक सावधानी से काम लिया जाए? कुछ वर्षों तक उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार बने कानून का परिणाम देखने के पश्चात् इस में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इस विषय में अत्यधिक शीघ्रता की आवश्यकता नहीं। आशा है विचारशील समाजहितैषी इस विषय पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

स्त्रियों के दायभागाधिकार

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार विषयक धाराओं पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विचार करने के पश्चात् अब मैं हिंदू कोड बिल की धारा १०० के उस अंश पर कुछ विचार करना चाहता हूं जिसमें किसी वसीयतहीन मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में नियम बतलाते हुए यह कहा गया कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के हिस्से के बराबर होगा।'

निस्सन्देह यह अत्यधिक विवादास्पद धारा है जिसके विरुद्ध आंदोलन भी सबसे अधिक किया जा रहा है। यहां तक कहा जा रहा है कि यह सब मुसलमानी प्रथा है जिसे हिंदुओं पर लादने का यत्न हो रहा है। इस गम्भीर विषय पर पहले मैं शास्त्रीय दृष्टि से कुछ विचार विद्वानों के समक्ष रखना चाहता हूं। इसके पश्चात् व्यावहारिक दृष्टि से भी इस पर विचार किया जायगा। जिस रूप में यह धारा प्रस्तुत कोड बिल में रखी गई है कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के बराबर होगा' मैं उस रूप के पक्ष में नहीं हूं। तथापि यह आवश्यक है कि इन कन्याओं के पैतृक सम्पत्ति में अधिकार की प्रथा को मुसलमानी, सर्वथा अशास्त्रीय तथा धर्मविरुद्ध प्रथा कहने से पूर्व, हम इस पर निष्पक्षपात होकर विचार करें और इसमें परिवर्तनार्थ उचित संशोधन प्रस्तुत करें।

पुत्रियों का पैतृक सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं, यदि हां तो किनका और कितना इस पर हमें शास्त्रीय दृष्टि से पृथक् पृथक् विचार करना उचित होगा। सबसे पूर्व मैं अविवाहिता तथा विवाह न कराने वाली पुत्रियों के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करूंगा। उसके पश्चात् पिता की एकमात्र पुत्री के सम्बन्ध में और अन्त में विवाहिता पुत्रियों के सम्बन्ध में।

ऋग्वेद २।१७।७ में निम्न मंत्र आया है:—

"अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुपमास्याभर दद्‌धि भागं तन्वो येन मामहः॥ इस मन्त्र का श्री सायणाचार्य आदि सब भाष्यकारों ने इस प्रकार भाष्य किया है—:

हे इन्द्र अमाजूः—यावज्जीवं गृह एव जीर्यन्ती पित्रोः सचा--माता-पितृभ्यां सह भवन्ती तयोः शुश्रूषणपरा पतिमलभमाना सती दुहिता (समानात्) आत्मनः पित्रोश्च साधारणात् (सदसः) गृहात्।

गृह उपस्थामेव यथा भागं याचति तथा स्तोताहं भगं भजनीयं धनं त्वामिये, त्वां याचे॥'

इस का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जीवन पर्यन्त माता-पिता के घर में भी रह कर अपने भाग को माता-पिता से मांगती है वैसे ही मैं स्तोता तुझ इन्द्र (परमेश्वर) से सेवनीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करता हूं। 'धर्मकोष' के सम्पादक पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने इस वेद मन्त्र को व्यवहार काण्ड उत्तरार्द्ध पृ० १४१२ में उद्धृत करते हुए उसका शीर्षक यह दिया है, 'अनूढ दुहिता पैत्र्यभागहारिणी पुत्री पैतृक संपत्ति में भाग ग्रहण करने की अधिकारिणी होती है।'

इस विषय में सम्भवतः किसी भी विचारशील व्यक्ति का मतभेद न होगा कि जो किसी भी विशेष उद्देश्य से सुलभा, गार्गी आदि की तरह नैतिक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करें अथवा अन्य किसी कारण से विवाह न करें उनको पैतृक संपत्ति में से भाग मिलना चाहिए।

सुप्रसिद्ध निरुक्त के प्रणेता श्री यास्काचार्य ने निम्नलिखित वेद मन्त्र पुत्रियों के दाय भाग के सम्बन्ध में उद्धृत किया है—

"शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यंगाद् विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्, संशग्म्येन मनसादधन्वे॥"

(ऋ० ३।३१।१)

इस मन्त्र को उद्धृत करने से पूर्व श्री यास्काचार्य ने लिखा है:--

"अथैतां दुहितृ दायाद उदाहरन्ति पुत्रदायाद इत्येके।"

इसके भाष्य में दुर्गाचार्य ने लिखा है:—

"एनां ऋचं "शासद् वह्निः इत्यादि या वक्ष्यमाणा ता दुहितृदायादे अर्थं उदाहरन्ति धर्मविदः। अस्याम् ऋचि वक्ष्यमाणायां दुहितुरपि दायाद्यत्व-मस्तीति दृश्यते।"

अर्थात् शासद् वह्निः इस ऋचा को जानने वाले पुत्री को दाय भाग का अधिकार है, इस अर्थ में उद्‌धृत करते हैं। इस ऋचा से ज्ञात होता है कि पुत्री को भी दाय भाग का अधिकार है।

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए श्री यास्काचार्य ने लिखा है—

विद्वान् ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् विधानं पूजयन् अर्थात् वेद के विधान का आदर करता हुआ। वह वेद का विधान क्या है इसका यास्काचार्य जी ने आगे इस प्रकार प्रतिपादन किया है जो प्रस्तुत विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है:—

अविशेषेण मिथुनाः पुत्रा दायादा इति। तदेतदृक् श्लोकाभ्यामभिहितम् अङ्गादङ्गात् संभवसि हृदयादधि जायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥ इति। अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः। मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥

अर्थात् पुत्र और पुत्री दोनों को दायभाग का अधिकार है जैसे कि निम्न-लिखित ऋचा में और श्लोक में बताया गया है, जिनका अर्थ यह है कि पुत्र को सम्बोधित करते हुए जो यह कहा जाता है कि तू अङ्ग-अङ्ग और हृदय से उत्पन्न होता है अतः मेरी आत्मा के तुल्य है तू सौ वर्षों तक जी, यह पुत्र पुत्री दोनों पर समान रूप से लगता है, यह वचन शतपथ ब्राह्मण १४ । ६ । ४ । ६, मन्त्र ब्राह्मण १ । ५ । १७ बृहदारण्यकोपनिषत् ६ । ४ । २६, कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् २ । ११, पारस्कर गृह्यसूत्र १ । १६ १८, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र २ । ३ । २ इत्यादि में पाया जाता है। इसी के समान निम्न वचन मनुस्मृति ६ । १३० में है—

यथैवात्मा तथा पुत्रः, पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथ-मन्यो धनं हरेत्॥

अर्थात् पुत्र अपनी आत्मा के समान होता है पुत्री पुत्र के समान होती है। उस आत्मातुल्य पुत्री के होते हुए अन्य कैसे धन ले सकता है?

महाभारत अनुशासन पर्व ४५ । ११ में मनुस्मृति का उपर्युक्त श्लोक ही उद्‌धृत किया गया है। दूसरा श्लोक जो निरुक्तकार यास्कमुनि ने स्वायम्भुव

मनु के विषय में उद्धृत किया है उसका अर्थ यह है कि स्वायम्भुव मनु ने 'अविशेष या सामान्य रूप से पुत्र और पुत्री दोनों का धर्मानुसार दाय भाग में अधिकार होता है ऐसा सृष्टि के प्रारम्भ में बताया। स्वायम्भुव मनु का ऐसा मत वेद के आधार पर ही होना चाहिए इसलिए निरुक्तकार ने 'शासद् वह्निर्दुहितुः' इस मन्त्र को उद्धृत किया है।

निरुक्तकार का मत स्पष्ट तया लड़कियों के दाय भाग के अधिकार के पक्ष में ज्ञात होता है यद्यपि 'न दुहितर इत्येके' यह लिख कर उन्होंने दूसरा पक्ष उन लोगों का रखा है जो यह कहते हैं कि लड़कियों का दाय भाग में अधिकार नहीं है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि "स्त्रियः दानविक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः" अर्थात् स्त्रियों का दान किया जाता है, उन्हें बेचा जाता है और उनका इच्छानुसार त्याग कर दिया जाता है अथवा "तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम्" अर्थात् स्त्री (कन्या) के उत्पन्न होने पर उसे फेंक दिया जाता है पुरुष (बालक) को नहीं, ऐसी लचर युक्तियां देकर जो यह सिद्धांत बनाते हैं कि "तस्मात् पुमान् दायादः अदायादा स्त्रीति विज्ञायते।" अर्थात् पुरुष को ही दाय भाग का अधिकार है स्त्री को नहीं, उसकी अपेक्षा हमें निरुक्तकार यास्काचार्य का अपना मत अधिक उपादेय प्रतीत होता है। 'शासद् वह्निर्दुहितुः' यह ऋ० ३।३१ का प्रथम मन्त्र जब पुत्री के दाय भाग के अधिकार का समर्थक है तो उसी सूक्त के दूसरे मन्त्र 'न जामये' का ठीक विरुद्ध अर्थ खेंचातानी से लगाना हमें सङ्गत प्रतीत नहीं होता। उसमें बहुत अधिक खेंचातानी दाय भाग विरोधियों को करनी पड़ती है। 'तान्वः' का अर्थ माता-पिता 'वह्नि' का अर्थ पुरुष करके उसके साथ जबर्दस्ती अवह्नि और कर स्त्री, एक शुभ कर्म का कर्त्ता अर्थात् पिण्ड देने वाला पुरुष और दूसरी केवल अलंकृत होने वाली स्त्री इत्यादि अर्थ कल्पित करने पड़ते हैं। निरुक्तकार ने अपना पक्ष पहले दिखा कर इस पक्ष का निर्देश मात्र कर दिया है। महर्षि दयानन्द जी ने इसकी व्याख्या अग्नि विद्या तथा सन्तान रक्षादि के सम्बन्ध में की है, जिसका भगिनी को भाग न देने से कोई सम्बन्ध नहीं। वेद में इस प्रकार एक ही सूक्त में परस्पर विरुद्ध दो आदेश हैं, यह कौन वेद प्रेमी स्वीकार कर सकता है? सायणाचार्य आदि भाष्यकार क्योंकि पौराणिक विचारों के थे अतः उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि पिण्डदानादिकर्तृत्वात् पुत्रोदायार्हः दुहिता तथा नेति न दायार्हा' [३ । ३१ । २ सायण भाष्य] अर्थात् पुत्र क्योंकि मृत पितरों को पिण्ड देता है इसलिए वह दाय भाग का अधिकारी है परन्तु पुत्री पिण्ड नहीं देती इसलिए उसको दाय भाग का अधिकार

नहीं। ऐसी ही बात प्रायः सभी पौराणिक भाष्यकारों ने लिखी है। कइयों ने स्त्रियों के प्रति अत्यन्त तुच्छ भाव प्रकट करते हुए उनका दाय भाग में अनधिकार माना है। जैसे कि सरस्वती विलासकार ने २६३ पृ० में लिखा है, "स्त्रीणां दाय विभागो नास्ति निरिन्द्रियत्वात्" अर्थात् स्त्रियों का दाय विभाग में अधिकार इसलिए नहीं क्योंकि वे इन्द्रियशून्या होती हैं।

पण्डित सदायतन पाण्डेय प्रधान संयुक्त प्रांतीय धर्मसंघ ने राव कमेटी के सम्मुख साक्षी देते हुए पुत्रियों के दाय भाग के विरुद्ध यही युक्ति दी। लड़की को जो पिता के श्राद्ध तथा पिण्ड-दान आदि में कोई भाग नहीं लेती लड़के के साथ जिसको इन कर्तव्यों का पालन करना होता है दाय भाग में अधिकार देना सर्वथा अनुचित होगा (देखो हिन्दू ला कमेटी रिपोर्ट पृ० १३०) महामहोपाध्याय चिन्नस्वामी शास्त्री आदि ने इलाहाबाद में अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा की ओर से साक्षी देते हुए यही कहा कि लड़कियों को जो अपने पिता का श्राद्ध नहीं करतीं पैतृक सम्पत्ति में कोई भाग न मिलना चाहिए। (रावकमेटी रिपोर्ट पृ० [illegible]) इस प्रकार की निस्सार युक्तियां जो पौराणिक विचारों पर आश्रित हैं कहां तक ठीक हैं यह विचार-शील सज्जन स्वयं निर्णय करें।

पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने बहिन के भाई के साथ दायादि में भाग लेने के विषय में निम्न वेदमन्त्र को धर्मकोष, व्यवहारकाण्ड, उत्तरार्द्ध के पृ० १४१२ में उद्धृत किया है:—

"एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व।" (शुक्ल यजुर्वेद ३।५७ काण्व संहिता ७।६, मैत्रायणी संहिता १।१०।४, तैत्तिरीय संहिता १।८।६।१, शतपथ ब्राह्मण २।६।२।९)

यहां भी बहिन के भाई के साथ दायादि में भाग का स्पष्ट निर्देश है।

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।" इस मन्त्र में जिसकी निरुक्त ३।५ में व्याख्या की गई है अभ्रातृका कन्या का पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने का स्पष्ट निर्देश है जिसका प्रायः सब स्मृतियों में भी समर्थन किया गया है जैसे कि अगले लेख में उद्धृत स्मृत्यादि वचनों से पाठकों को ज्ञात हो जायगा।

स्त्रियों का दायभाग और स्मृतियां

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

अब मैं इस सम्बन्ध में प्राप्त होने वाले स्मृत्यादि ग्रन्थों के वचनों को विद्वानों के सन्मुख रखना चाहता हूं।

मनुस्मृति ६। ११८ में निम्न श्लोक पाया जाता है:—

स्वेभ्योंशेभ्यस्तु कन्याभ्यः, प्रदद्यु र्भ्रातरः पृथक्। स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं, पतिताः स्युरदित्सवः ॥ (मनु० ६।११८)

अर्थात् भाइयों को चाहिए कि अपने अपने हिस्से में से चतुर्थ भाग वे पृथक् २ कन्याओं अर्थात् अपनी अविवाहित भगिनियों को दें। जो न देना चाहें वे पतित समझे जाएं।

इस वचन में कन्याओं का लड़कों से चतुर्थ भाग लेने का अधिकार स्पष्टतया प्रतिपादित है।

याज्ञवल्क्य स्मृति २। १२ में भी यही बात

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद् दत्वांशं तु तुरीयकम् ॥

इस श्लोक द्वारा कही गई है। इस श्लोक की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि 'अनेन दुहितरोपि पितुरूर्ध्वमंशभागिन्य इति गम्यते। अर्थात् इससे ज्ञात होता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रियों का भी दाय भाग में अधिकार है। इसी टीका में आगे लिखा है कि "नच निजादंशाद् दत्वांशं तु

तुरीयकम्' इति तुरीयांशाविवक्षया संस्कार मात्रोपयोगि द्रव्यं दत्वेति व्याख्यानं युक्तम् । मनुवचन विरोधात् । तस्मात् पितुरूर्ध्वं कन्याप्यंशभागिनी पूर्वं चेद् यत् किंचित् पिता ददाति तदेव लभते विशेषवचनाभावादितिसर्वमनवद्यम् ।"

[मिताक्षरा टीका]

अर्थात् यहां भगिनी को चौथा हिस्सा देने का जो विधान है उसका यह अर्थ न समझा जाए कि संस्कार के उपयोगी द्रव्य से ही यहां प्रयोजन है चतुर्थ भाग देने से नहीं क्योंकि ऐसा मानने से मनुस्मृति (९।११८) के वचन से विरोध हो जाएगा। इस लिए यह स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु के बाद कन्या का भी उसकी सम्पत्ति में अधिकार है। जीवित काल में तो पिता कन्या को जो कुछ देता है वह उसे प्राप्त करती है। विश्वेश्वर भट्ट प्रणीत मदन पारिजात नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य स्मृति के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि "भगिन्यश्च इत्यादेरयं तात्पर्यार्थः। भगिनीनामसंस्कृतानां विवाहं कृत्वा ताभ्यश्चतुर्थमंशं दद्यात् ।" (मदन पारिजात ६४८) अर्थात् 'भगिन्यश्च' इत्यादि याज्ञवल्क्य वचन का तात्पर्य यह है कि अविवाहिता भगिनियों का विवाह संस्कार करा कर फिर उनको अपने भाग का चौथा हिस्सा दे।

जो लोग यह मानते हैं कि भगिनी को चतुर्थ अंश केवल विवाह-संस्कारार्थ दिया जाता है, इस मत का खण्डन करते हुए मदनपारिजात में आगे लिखा है कि "केचन एवं मन्यन्ते, पूर्वोक्तरीत्या चतुर्थमंशं कन्यकायै दत्वा तेनैव विवाहः कर्तव्यो न तु समुदित द्रव्येण विवाहं कृत्वा पुनरपि चतुर्थांशदानमिति तन्मेधातिथिमिताक्षराकारादीनामनभिमतत्वादुपेक्षणीयम् ।" (मदन पारिजात ६९०) अर्थात् कई ऐसा मानते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार कन्याओं को अपना चौथा हिस्सा देकर उसी से उनका विवाह करना चाहिए न कि एकत्रित व संयुक्त द्रव्य से विवाह करके फिर उनको चौथा हिस्सा देना चाहिए। यह मत मेधातिथि, मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर इत्यादि के विरुद्ध होने के कारण उपेक्षा करने योग्य है। व्यवहार काण्ड(देखो धर्मकोष उत्त० पु० १४२०)

बालम्भट्टी नामक याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में भी यही बात कही गई है कि "केचिदुक्तरीत्यैव तुरीयमंशं कन्यायै दत्वा तेनैव विवाहः कार्यो न तु समुदितद्रव्येण विवाहोऽशदानं च पृथगित्याहुः। तन्मतं खण्डयति। न चेति एतेन देशाचाराद् व्यवस्थेतिमदनपारिजाताद्युक्तमपास्तम् ।" (बालम्भट्टी—धर्मकोष पृ० १४२१) अर्थात् जो यह कहते हैं कि कन्या को उक्तरीति से चौथा

भाग देकर उसी से विवाह करना चाहिए न कि संयुक्त द्रव्य से विवाह संस्कार करा कर चौथा भाग पृथक् देना चाहिए उनके मत का 'नच' इत्यादि के द्वारा मिताक्षराकार ने खण्डन किया है । मदन पारिजात ने अन्त में जो यह लिख दिया था कि 'अथवा देशाचारतो व्यवस्था' अर्थात् अथवा देशाचार से इसकी व्यवस्था हो जायगी उसका भी इससे खण्डन हो जाता है ।

इस विषय को कुछ विस्तार में लिखने की आवश्यकता इसलिए हुई कि प्रायः पौराणिक पण्डित मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट प्रतिपादित चतुर्थ भाग देने का तात्पर्य केवल विवाह संस्कारार्थ बताकर टालमटोल का यत्न करते हैं उसकी निस्सारता और अयथार्थता विद्वानों को ज्ञात हो जाये । अब इस सम्बन्ध में अन्य स्मृत्यादि वचनों को देखिए ।

(७) नारद संहिता १४।१२ में लिखा है:—

ज्येष्ठायांशोऽधिको ज्ञेयः, कनिष्ठायावरः स्मृतः । समांशभाजः शेषाः स्युः, अप्रत्ता भगिनी तथा ॥ अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता को कुछ अंश अधिक देना चाहिए, सबसे छोटे को कम । शेष भाइयों और अविवाहिता बहिन को बराबर बांटना चाहिए ।

यहां अविवाहिता बहिन को पैतृक सम्पत्ति में से मध्य वाले भाइयों के बराबर भाग देने का विधान है ।

(८) कात्यायन स्मृति में निम्न श्लोक है:—"कन्यकानां त्वदत्तानां; चतुर्थो भाग इष्यते । पुत्राणां च त्रयोभागाः, साम्यं स्वल्पधने स्मृतम् ॥" (देखो दाय भाग ६६, स्मृति चन्द्रिका २६८) अर्थात् अविवाहिता कन्याओं का पैतृक सम्पत्ति में चौथा भाग रहता है शेष पुत्रों का ¾ । जब वह धन थोड़ा हो तो कन्याओं का भी पुत्रों के समान धन पर अधिकार रहता है ।

(९) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में लिखा है कि 'तदभावे तु जननी, तनयांशसमांशिनी । समांशा मातरस्तेषां, तुरीयांशा च कन्यका ॥' (दाय भाग ६६ स्मृतिसार ४७ वीर मित्रोदय २।११७ धर्मकोष पृ०१४१३) अर्थात् पिता के मरने पर उसकी पत्नी का भाग अपने लड़कों के बराबर और कन्या का चौथा होना चाहिए ।

(१०) विष्णुस्मृति १८।३४. ३५ में लिखा है:—'मातरः पुत्र भागानुसारेण भागहारिण्यः, अनूढाश्च दुहितरः ॥" (दाय भाग ६८, सरस्वती विलास

२४७) अर्थात् माताओं का भाग पुत्रों के अनुसार होता है और अविवाहिता पुत्रियों का भी' एक अन्य स्थान पर जिसे सरस्वती विलास पृ० ३६१ और धर्मकोष, व्यवहार कांड, उत्तरार्द्ध पृ० १४१६ में उद्धृत किया गया है विष्णु ने कहा है कि 'अनूढानामप्रतिष्ठितानामेवांशो दातव्यः ।' अर्थात् जो पुत्रियां अविवाहिता हों अथवा निर्धना वा विधवा हों उन्हें पैतृक सम्पत्ति में से हिस्सा देना चाहिए।

(११) वृद्धहारीत स्मृति ७-२४६ में लिखा है:—भगिन्यश्च तुरीयांशं, पैतृकाद्धरेद् धनम् । न स्त्रीधनं तु दायाद्वा विभजेरयुनापदि ॥ अर्थात् पैतृक धन से बहिनों को अपना चौथा भाग दे। सम्बन्धी बिना विशेष आपत्ति के स्त्री धन का बंटवारा न करें।

(१२) देवल स्मृति में निम्न वचन पाया जाता था जिसे दाय भाग १७४, स्मृति चन्द्रिका, २६८, स्मृतिसार ४६ आदि में उद्धृत किया गया है:—

कन्याभ्यश्च पितृद्रव्यश्च देयं वैवाहिकं वसु ॥ इसका अर्थ स्मृतिचन्द्रिकाकार ने यह किया है कि विवाहप्रयोजकं धनं कन्याभ्यः पितृद्रव्याद् देयम् ॥ अर्थात् कन्याओं को विवाह के लिए धन पैतृक सम्पत्ति में से देना चाहिए। किंतु व्यवहार प्रकाशकार ने इस अर्थ का खण्डन करते हुए लिखा है कि 'स्मृतिचन्द्रिकाकारस्तु कन्याभ्यश्चेति देवलवचनानुसारेण संस्कार मात्रोपयोगि द्रव्यदानमेव मन्यते अत्र वदामः कन्याभ्यः पितृद्रव्यदेयमिति पृथग् विधिः। तच्च सन्दायानुरोधाच्चतुर्थांशरूपमेव। वैवाहिकवसु च देयं इत्यपि पृथग् विधिः। 'निर्भक्तस्थाने दायादाः कन्यालङ्कारं वैवाहिकं च स्त्रीधनं लभेत्' इति शङ्खवचनस्यानाधीनतया। व्याख्यातं चेदं शङ्खवचनं विद्यारण्यश्री चरणैः पराशर स्मृति टीकायाम्—पैतृकद्रव्यविभाग काले स्वघृतमलङ्कारादिकमपि कन्यानामेवेत्याह शङ्ख इति। यदि तु वैवाहिकं विवाहोपयोगि पितृद्रव्यं कन्याभ्यो देयमित्यर्थः स्याद् वसुपदं पुनरुक्तं स्यादिति पृथग् विधिद्वयमेवात्र युक्तम्। तस्मादस्मदुक्तमेव व्याख्यानमादर्तुं मह न तु विवाहोपयुक्त द्रव्य परतेत्यवसेयम् ॥

(व्यवहार प्रकाश ४२६-४२७, धर्मकोष पृ० १३२२) अर्थात् स्मृतिचन्द्रिकाकार ने इस वचन का यह जो अर्थ किया है कि कन्याओं को केवल विवाहोपयोगी द्रव्य पिता की सम्पत्ति में से देना चाहिए वह ठीक नहीं है। यहां दो विधान हैं। एक तो यह कि कन्याओं को पैतृक धन देना चाहिए जो

मनुस्मृति आदि के अनुसार चौथा हिस्सा है दूसरी विधि यह है कि कन्याओं को विवाहोपयोगी द्रव्य देने चाहिए जैसे कि शङ्ख स्मृति में भी बताया गया है अन्यथा वसुपद व्यर्थ और पुनरुक्त होता इसलिए हमारा अर्थ ही मानने योग्य है कि कन्याओं को पिताकी सम्पत्ति में से हिस्सा (जो पुत्र का चौथा भाग हो) देना चाहिए और विवाहोपयोगी द्रव्य देने चाहिएं।

(१३) पैठानसि स्मृति में कहा कि 'कन्या वैवाहिकं स्त्रीधनं च लभते।' (व्यवहारनिर्णय तथा व्यवहारार्थ समुच्चय १२६ से धर्मकोष पृ० १४२२ में उद्धृत)

अर्थात् कन्या विवाहोपयोगी द्रव्य और धन के अतिरिक्त माता के स्त्रीधन को प्राप्त करे।

(१४) स्मृत्यन्तर से निम्न वचन स्मृतिचन्द्रिका २६८ और व्यवहारार्थ समुच्चय १२६ में उद्धृत किया गया है:—

भ्रातृभ्योऽशं, चतुर्थांशं तत्र कन्या हरेद्धनम् ॥ अर्थात् कन्या प्रत्येक भाई के हिस्से के चौथे भाग को पैतृक सम्पत्ति में से प्राप्त करे।

(१५) कौटलीय अर्थशास्त्र ३।५ में कहा है कि

रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः ॥

अर्थात् सन्तान वाले पिता के धन को उत्तम विवाहविधि से उत्पन्न पुत्र और पुत्रियां प्राप्त करें।

(१६) शुक्राचार्य ने अपनी स्मृति में जिसे शुक्रनीति के नाम से कहा जाता है बताया है कि

समानभागा वै कार्याः, पुत्राः स्वस्य च वै स्त्रियः। स्वभागार्धहरा कन्या, दौहित्रस्तु तदर्धभाक् ॥

[शुक्रनीति ४, ५, २१६]

अर्थात् पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों और स्त्रियों को समान २ भाग मिलना चाहिए। कन्याओं को पुत्रों के भाग का आधा और धेवते को उसका भी आधा इसी प्रकार अन्य भी बहुत से वचन स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में कन्याओं के दाय भाग में अधिकार के पाए जाते हैं किंतु उनमें कन्या का भाग प्रायः पुत्र का चौथा हिस्सा माना गया है। इन वचनों से यह तो स्पष्ट है कि वह कन्याओं को पैतृक सम्पत्ति में से भाग देने की प्रथा धर्मविरुद्ध या मुसलमानी नहीं है। इस विषय पर अन्य दृष्टियों से विचार मैं अगले लेख में करूंगा।

पुत्रियों के दायभागाधिकार पर विमर्श

(पूर्वार्द्ध)

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

पुत्रियों के पैतृक धन में दायभागाधिकार के सम्बन्ध में १६ प्रमाणों द्वारा विवेचन पूर्व लेखों में किया जा चुका है। अन्य भी अनेक प्रमाण इस विषय में उपलब्ध होते हैं किन्तु विस्तार भय से उन सबका उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं है। शङ्ख लिखित स्मृति का निम्न वचन इस विषय में अवश्य उल्लेखनीय है जिसका कुछ निर्देश एक उद्धरण में किया जा चुका है:—

(१७) "विभज्यमाने दायाद्ये कन्यालङ्कारं वैवाहिकं, स्त्रीधनं च कन्या लभेत।"

इस का अर्थ यह है कि जब दायभागादि का विभाग किया जाय तो कन्या भूषण, विवाहोपयोगी द्रव्य तथा स्त्रीधन को प्राप्त करे। स्मृतिचन्द्रिका २६६-२७० में इस वाक्य की व्याख्या में लिखा है, "भ्रातृभिर्विभाज्यमाने कन्या स्वदत्तमलङ्कारं, वैवाहिकं तुरीयांशादिधनं स्त्रीधनं च, पित्रादिदत्तं लभेतेति।" यहां पुत्र के चतुर्थ भाग लेने का भी स्मृतिचन्द्रिकाकार ने उल्लेख कर दिया है।

पिता की सम्पत्ति में चतुर्थ भाग लेने के अतिरिक्त मातृधन पर भी पुत्रियों के अधिकार का बहुत सी स्मृतियों तथा महाभारतादि में प्रतिपादन है। उदाहरणार्थ विष्णुस्मृति से निम्न वचन श्री प्रतापरुद्रदेव रचित सरस्वती-

विलास में उद्धृत किया गया है—यौतुकं मातुः कुमारी दाय एव। (सरस्वती विलास पृ० ३८२)।

अर्थात् माता के द्रव्य पर (यौतुकं अन्योन्यान्वितयोवधूवरयोर्देयं यत् तद्-नम्) कुमारियों का अधिकार होता है।

(१८) मनुस्मृति ९। १९२ में मातृधन विभाग के विषय में कहा है:—

"जनन्यां संस्थितायां तु, समं सर्वे सहोदराः। भजेरन् मातृकम् रिक्थम्, भगिन्यश्च सनाभयः॥"

अर्थात माता के मरने पर उसके धन को भाई और बहिनें बांट लें।

(१९) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में लिखा है—

"स्त्रीधनं तदपत्यानां, दुहिता च तदंशिनी।
अप्रत्ता चेत्समूढा तु, लभते मानमात्रकम्॥"
"या तस्य भगिनी सातु, ततोंऽशं लब्धुमर्हति।
अनपत्यस्य धर्मोऽयम्, अभार्यापितृकस्य च॥" २६। १०८
"सा च दत्ता स्वदत्ता वा, सोदरे तु मृते सति।
तस्यांशं तु, हरेत्सैव, द्वयोर्व्यक्तं हि कारणम्॥" २६। १०९
"सोदर्या विभजेरस्ते, समेत्य सहिताः समम्।
भ्रातरो ये च संसृष्टाः, भगिन्यश्च सनाभयः॥" २६। ११४

इन श्लोकों में कहा गया है कि स्त्रीधन उस मृत स्त्री के पुत्रों का होता है और पुत्री का भी उसमें भाग होता है यदि वह अविवाहित हो। विवाहिता उस में से मान वा प्रतिष्ठार्थ द्रव्य प्राप्त कर सकती है। यदि किसी का भाई मर जाए तो उसकी बहिन को भी उसके धन में से भाग मिलना चाहिए। चाहे वह पुत्रिकारूप में दी हुई हो या न हो, भाई के मरने पर उस का भाग उस बहिन को मिलना चाहिए क्योंकि दोनों के जन्म का मूल एक ही है। संसृष्ट वा मिली हुई पैतृक सम्पत्ति को भाई-बहिनें मिल कर बांट लें।

याज्ञवल्क्य स्मृति २। ११७ व्यवहाराध्याय में लिखा है:— "मातुर्दुहितरः शेषम्, ऋणा ताभ्य ऋतेऽन्वयः"। इस की मिताक्षरा व्याख्या में विज्ञानेश्वर ने लिखा है— मातृकृतम् ऋणं पुत्रैरेवपाकरणीयं न दुहितृभिः ऋणावशिष्टं तु दुहितरो गृहणीयुरिति। युक्तं चैतद् पुमान् पुंसोधिके वीर्ये, स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः इति स्त्र्यवयवानां दुहितृषु बाहुल्यात् स्त्रीधनं दुहितृगामि पितृधनं

पुत्रगामि पित्रवयवानां पुत्रेषु बाहुल्यादिति । तत्रच गौतमेन विशेषो दर्शितः ।

"स्त्रीधन दुहितृणाम् अप्रतिष्ठितानां अप्रतिष्ठितानां च" गौतम धर्मसूत्र २८ । २५ ॥"

अर्थात् माता पर कोई ऋण हो तो उसको चुकाना पुत्रों का कर्त्तव्य है पुत्रियों का नहीं । ऋण को चुका कर जो धन बचे उसको पुत्रियां ले लें । मनु के वचनानुसार लड़कियों में माता के अवयव का अधिक भाग होने के कारण स्त्रीधन पर लड़कियों का और पिता के धन पर पुत्रों का अधिक अधिकार होता है । इस विषय में गौतम ने इस प्रकार विशेष दर्शाया है कि 'स्त्रीधन अविवाहिता और अप्रतिष्ठिता अथवा निर्धना लड़कियों का होता है ।'

(२१) जहां तक अभ्रातृका का संबंध है महाभारत अनुशासन पर्व ८८ । २२ में कहा है 'अभ्रातृका समग्राहीं, चार्धांहे स्वपरे विदुः ॥

अर्थात् जिसके भाई न हों ऐसी पुत्री का पिता की सारी सम्पत्ति पर अधिकार होता है ऐसा अनेक आचार्यों का मत है । किसी किसी का मत यह है कि उसका आधी सम्पत्ति पर अधिकार है ।

(२२) नारद स्मृति १६।५० में ऐसी अभ्रातृका के विषय में कहा है ।

'पुत्राभावे तु दुहिता, तुल्यसन्तानकारणात् ।
पुत्रश्च दुहिता चोभौ, पितुः सन्तानकारकौ ॥

[नारदीय मनुसंहिता १४।४७]

अर्थात् पुत्र के अभाव में पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में पूरा अधिकार होता है कि वह भी पिता की पुत्र के समान ही सन्तान है ।

(२३) महाभारत अनुशासनपर्व ४५।१२ में लिखा है, 'मातुश्च यौतुके यत्स्यात् कुमारीभाग एव सः ॥'

अर्थात् माता के धन पर कुमारी का अधिकार होता है ॥

(२४) बृहस्पति स्मृति २६।१२२ में कहा है—'सदृशी सदृशेनोढा, साध्वी शुश्रूषणे रता । कृताऽकृता वा पुत्रस्य, पितुर्धनहरी तु सा ॥' अर्थात् जो पुत्री पिता के समान गुणकर्म स्वभाव वाली अपने समान योग्य पति से ब्याही गई हो, साध्वी पतिव्रता हो वह पिता के दाय भाग में अधिकारिणी होती है चाहे उसे पुत्र के रूप में माना गया हो या नहीं ।

इन वचनों पर निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करने पर हम इन परिणामों

पर पहुँचते हैं:—(१) जो कन्याएं आजीवन ब्रह्मचर्य का गार्गी सुलभा आदि की तरह अनुष्ठान करके सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा में अपने को समर्पित कर दें उनका पिता की सम्पत्ति में पुत्रों के समान अधिकार होता है और उन्हें अपने निर्वाहार्थ पुत्र के समान भाग मिलना चाहिए। यदि यह अविवाहित रहना किसी शारीरिक दोषादि के कारण हो तो भी पिता की सम्पत्ति से ऐसी पुत्रियों को भाग मिलना चाहिए।

(२) पिता की एकमात्र सन्तान पुत्री का पिता की सम्पत्ति पर अपनी माता के होते हुए उसके बराबर अन्यथा पूरा अधिकार है।

(३) अविवाहिता कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में भाइयों के भाग का चौथाई अंश मिलना चाहिए ऐसा मनु, याज्ञवल्क्य, नारद देवल, बृहस्पति, कात्यायन, विष्णु वृद्धहारीत आदि प्रायः सभी स्मृतिकारों ने माना है। शुक्राचार्य कन्याओं को पुत्रों का आधा भाग पैतृक सम्पत्ति में देने के पक्षपाती हैं।

(४) विवाहिता पुत्रियों का भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार हो इसका समर्थन करने वाले केवल तीन वचन मेरी दृष्टि में आये हैं। इनमें भी सब विवाहिता पुत्रियों को नहीं केवल अप्रतिष्ठिता अर्थात् निर्धना विवाहिता पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों का चौथा भाग देने का विधान है। ये वचन विष्णुस्मृति, गौतमधर्मसूत्र और बृहस्पति स्मृति के हैं जिनको मैंने इससे पूर्व लेख में उद्धृत किया है। विष्णु का वचन जो पिछले लेख में छपा है इस प्रकार है:—'अनूढानां अप्रतिष्ठितां पुत्रांशो दातव्यः' अर्थात् अविवाहित और निर्धना पुत्रियों को ही पैतृक सम्पत्ति में से भाग मिलना चाहिए। सुप्रसिद्ध सनातनधर्माभिमानी दाक्षिणात्य विद्वान् महामहोपाध्याय पं० अनन्तकृष्ण शास्त्री ने हिंदू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए कहा था कि याज्ञवल्क्यस्मृति की मेरी व्याख्या के अनुसार एक पुत्री चाहे वह विवाहिता हो अथवा अविवाहिता पैतृक सम्पत्ति में से चौथे भाग की जो विवाह विषयक खर्च के अतिरिक्त हो अधिकारिणी है। (देखो हिंदू ला कमेटी रिपोर्ट १९४७ पृ० ३२)।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मेरा विचार यह है कि अविवाहित कन्याओं को पुत्र के भाग का एक चोथाई पैतृक सम्पत्ति में से दिया जाना सर्वथा शास्त्रसम्मत और उचित है। उनके अतिरिक्त निर्धना विवाहिता पुत्रियों को भी पैतृक सम्पत्ति में से भाग लेने का शास्त्रानुसार अधिकार है यद्यपि इसके निश्चय करने में व्यावहारिक कठिनाइयां अवश्य हैं।

पुत्रियों के दायभागाधिकार पर विमर्श

(उत्तरार्ध)

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिंदू कोड बिल में वसीयतहीन मृत पिता की लड़कियों को लड़कों के बराबर देने का जो प्रस्ताव है उससे मैं सहमत नहीं हूं क्योंकि यदि लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों के समान भाग मिले, पति की सम्पत्ति में भी विवाहिता पत्नी का अधिकार हो, माता के स्त्रीधन में से अधिक भाग उसका हो तो वह न्याय सङ्गत बात प्रतीत नहीं होती। राव कमेटी ने लड़कियों को बिना वसीयत मृत पिता की सम्पत्ति में पुत्रों से आधा भाग देने का प्रस्ताव किया था किन्तु प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) के अनेक सदस्यों से प्रतीत होता है कि विरोध की प्रतिक्रिया के रूप में उसे लड़कों के बराबर देने का विचार प्रकट कर दिया जिसे हम बुद्धिमत्तापूर्ण व न्यायसङ्गत नहीं कह सकते। वस्तुतः ऐसा करके उन्होंने हिन्दू कोडबिल के विरुद्ध आंदोलन को अनजाने प्रबल बनाने में सहाता दी। यदि वे इस लेखमाला में उद्धृत शास्त्रीय वचनों को दृष्टि में रखते हुए और मद्रास हाई कोर्ट के भू० पू० सुयोग्य जज सर वेपा रामेशम् जैसे सुधार प्रेमी महानुभावों के वचनानुसार लड़कियों के पिता की सम्पत्ति में से लड़कों का चौथा भाग देने का प्रस्ताव भी रखते तो इस बिल का इतना विरोध न होता यह मुझे निश्चय है। अतः मेरा अब भी इस बिल के प्रस्तावक महोदय से सानुरोध निवेदन है कि वे लड़कियों को वसीयत

होन मृत पिता की सम्पत्ति में लड़कों के चौथे भाग देने का संशोधन स्वीकार कर लें। कोई निष्पक्षपात व्यक्ति शास्त्रीय दृष्टि से भी इसका विरोध करने का साहस न करेगा और व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार करने वालों को वह अधिक न्यायसङ्गत प्रतीत होगा।

इस प्रस्ताव के विरोध में यह कहा जाता है कि लड़कियों का पैतृक सम्पत्ति में भाग होने से भाई बहिनों के झगड़े बढ़ जायेंगे और उनमें परस्पर प्रेम नहीं रहेगा। यह युक्ति कुछ भी प्रबल नहीं। इस युक्ति के अनुसार तो भाइयों में भी परस्पर विभाजन नहीं होना चाहिए। संसार की प्रायः सभी जातियों में लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में भाग मिलता है उससे उनके अन्दर प्रेम नहीं रहता अथवा झगड़े बढ़ जाते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। गोआ में भी एक ही सिविल कोड हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों सब पर लागू है जिसके अनुसार लड़कियों को लड़कों की तरह पैतृक सम्पत्ति में भाग मिलता है किन्तु जांच करने पर पता लगा है कि भाई बहिनों के झगड़ों के उदाहरण वहां नहीं के बराबर हैं। भाई बहिनों का प्रेम इसलिए न रहे कि बहिन को भी मृत पिता की सम्पत्ति में कुछ भाग (जो हमारे शास्त्र-सम्मत और न्याय सङ्गत प्रस्तावानुसार भाई के भाग का चौथाई हो) मिलता है तो ऐसे प्रेम को तो केवल स्वार्थमूलक ही कहना चाहिए। कलकत्ता हाई-कोर्ट के एडवोकेट श्री ए० सी० गुप्त और मद्रास के सर पी० एस० शिवे स्वामी ऐयर ने हिन्दू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए इस युक्ति के खण्डन में ठीक ही कहा था कि भाई का वह कैसा प्रेम होगा जो अपने स्वार्थ या भाग की थोड़ी सी हानि से टूट जायगा। हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि जब बहिन को कोई भाग न दिया जाय तब प्रेम अधिक होगा अन्यथा नहीं।

इस पर भी यदि किन्हीं महानुभावों को यह आशंका हो तो उन्हें अपनी वसीयत में यह लिख देने का अधिकार है कि हमारी पुत्रियों को सम्पत्ति में कोई भाग न दिया जाए। वह प्रस्ताव केवल वसीयत किए बिना मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के विषय में है कि उसकी लड़की को भी भाग मिले। अन्यों के विषय में नहीं। इस बात को प्रायः लोग नहीं जानते अथवा भूल जाते हैं। अपनी वसीयत में कुछ भी निर्देश लिखने का प्रत्येक को अधिकार है जिसका लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति में भाग देने के विरोधी अच्छी प्रकार उपयोग कर सकते हैं।

यह आक्षेप किया जाता है और उसमें कुछ तथ्य है कि यदि लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति विशेषतः अचल सम्पत्ति में अधिकार दिया जायगा तो उससे बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। विवाह के पश्चात् लड़कियां उस सम्पत्ति को कहां और कैसे और कहां से ले जाएंगी। इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि भाई बहिनों की सम्पत्ति को खरीद लें। सबसे प्रथम अधिकार उन्हें ही दिया जाए। यही विचार श्रीयुत कन्हैयालाल जी मुन्शी आदि कई सुप्रसिद्ध महानुभावों ने प्रकट किया था। एक दूसरा संशोधन इस विषय में यह प्रस्तुत किया जाता है जो हमें उचित ही प्रतीत होता है कि लड़कियों को संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में रहने और उसके उपयोग का अधिकार हो किन्तु उसे अन्यों को बेचने अथवा उसके किसी भाग को किराये पर देने का अधिकार न होना चाहिए।

इस संशोधन को यदि स्वीकार कर लिया जाय तो उपर्युक्त आक्षेप का बहुत कुछ समाधान हो जाता है।

क्योंकि लड़कियां मृत पितरों के लिए पिण्ड नहीं देतीं अतः उनका पिता की सम्पत्ति में कोई भाग न होना चाहिए यह युक्ति जो मदुरा के राव साहब नरेश ऐय्यर, महामहोपाध्याय चिन्न स्वामी शास्त्री तथा अन्य बहुत से पौराणिक पण्डितों ने प्रस्तुत की इतनी निस्सार है कि इस विषय में कुछ भी लिखना अनावश्यक है। विवाह पर जो आडम्बरपूर्ण व्यर्थ व्यय आज कल किए जाते हैं, जिनसे सिवाय अपनी प्रतिष्ठा दिखाने के कोई लाभ नहीं होता प्रत्युत हजारों परिवार सदा के लिए ऋण से दब जाते हैं, उनको कम करके लड़कियों की शिक्षा तथा आपत्ति के समय सहायतार्थ पैतृक सम्पत्ति में से भाग दिलाया जाये तो वह सर्वथा उचित ही होगा। दहेज इत्यादि की हानिकारक और आडम्बरपूर्ण प्रथाएं भी इससे बहुत न्यून हो जायेंगी और लड़कियों को आपत्ति के समय वास्तविक लाभ हो सकेगा। आशा है इन पंक्तियों पर विचारशील लोग गम्भीरता से विचार करेंगे।

संयुक्त परिवार प्रथा

श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दूकोड बिल में जिन धाराओं के विरुद्ध घोर असन्तोष प्रकट किया जा रहा है उन में से निम्न धाराएं भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

धारा ८६—परिवार में जन्म सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित नहीं करता-इस कोड के आरम्भ होने पर तथा उसके बाद, पूर्वज के जीवन काल के दरम्यान उसकी सम्पत्ति में हित रखने का दावा करने का अधिकार जो कि केवल इस तथ्य पर निर्धारित है कि दावादार का जन्म उक्त पूर्वज के परिवार में हुआ था किसी भी अदालत में स्वीकृत नहीं होगा।

(८७) संयुक्त आसामी का स्थान सम्मिलित आसामी के रूप में बदल जायगा:—

प्रस्तुत कोड के आरम्भ पर तथा उसके बाद कोई भी अदालत, संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हित रखने के किसी ऐसे अधिकार को मान्य नहीं करेगी जो कि उत्तराधिकार के नियम पर अवलम्बित हैं और समस्त व्यक्ति जिनके जिस दिन यह कोड कार्यान्वित हो जाएगा उस दिन कोई संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है वह उक्त सम्पत्ति बतौर सम्मिलित आसामियों के (टैनेन्ट्स इन कामन) Tenants in commen अपने पास रखते हैं ऐसा विचारा जायगा मानो कि कोड के आरम्भ की तिथि पर ऐसी सम्पत्ति के विषय में संयुक्त परिवार के समस्त सदस्यों के बीच बटवारा हो गया था

और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपना भाग एकपरिपूर्ण स्वामी के रूप में अपने पास अलग रखते हैं। इत्यादि:-

(८८) हिन्दू पत्र के धार्मिक कर्तव्य का (पायस आब्लिगेशन) pious obligation का नियम खंडित किया जाता है—(१) इस कोड के आरम्भ के पश्चात् कोई भी अदालत सिवाय उसके जैसा कि उपधारा २ में विनिहित किया गया है, किसी पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के विरुद्ध, उसके पिता, पितामह, और प्रपितामह द्वारा लिये गये ऋण की वसूली के लिये और ऐसे किसी ऋण की अदायगी के सम्बन्ध में किसी सम्पत्ति को अधिकार में लेने के लिए इस आधार पर कि ऐसे किसी ऋण को चुका देना उक्त पुत्र, पौत्र अथवा प्रपौत्र का धार्मिक कर्त्तव्य है, कानूनी कार्यवाही करने के अधिकार को स्वीकृत नहीं करेगी।

(२) इस कोड के प्रयोग में आने से पहिले यदि कोई ऋण लिया गया है तो उस हालत में उपधारा १ में उल्लिखित कोई भी बात निम्नांकितों पर प्रभाव नहीं डालेगी।

(क) किसी भी लेनदार का पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र जैसी कि सूरत हो, के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही दायर करने का अधिकार या ऐसे किसी देन की वसूली के सम्बन्ध में किया गया किसी सम्पत्ति का स्वत्वार्पण या हस्तकाल (Alienation) और ऐसा कोई अधिकार या स्वत्वार्पण धार्मिक कर्त्तव्य के नियम के अधीन उसी प्रकार और उसी सीमा तक प्रयोग में लाया जायगा जैसा कि यह कोड पास न होने की अवस्था में किया जाता।

८९—संयुक्त परिवार के सदस्यों की कोड के पहिले की ऋण विषयक जिम्मेदारियों में परिवर्तन नहीं होगा—जहां इस कोड के आरम्भ से पहिले संयुक्त परिवार के नियामक एवं कर्ता द्वारा परिवार के प्रयोजनार्थ कोई कर्जा लिया गया हो तो उस अवस्था में इस कोड में उल्लिखित कोई भी बात संयुक्त परिवार के किसी भी सदस्य की उक्त ऋण चुका देने की जिम्मेवारी पर लागू नहीं होगी और ऐसी कोई जिम्मेवारी ऐसे समस्त या किन्हीं भी व्यक्तियों पर जो कि उसके लिए उत्तरदायी हैं उसी प्रकार और उसी सीमा तक आयद की जायगी जैसी यह कोड पास न होने की सूरत में की जाती॥ इत्यादि

सबसे बड़ी आपत्ति जो इन धाराओं के सम्बन्ध में उठाई जाती है यह है इनके द्वारा संयुक्त परिवार प्रथा का जो कि अनादि काल से चली आ रही एक धार्मिक प्रथा है, अंत होजायगा। हिंदू कोड बिल पर जो वाद-विवाद पिछले दिनों भारतीय राष्ट्र संसद् में होता रहा है उसको ४ दिन सुनने का अवसर मुझको भी प्राप्त हुआ। मुझे यह देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ कि इसके सबसे कट्टर विरोधी एक और प्रकार से कोड विरोधी दलके प्रमुख नेता मौलाना नसीरुद्दीन अहमद हैं जिन्होंने पग-पग पर इसकी प्रगति में रोड़े अटकाने का सिर तोड़ यत्न किया और श्रोताओं के नितान्त अरुचि प्रकट करने पर भी ७ घण्टों का भाषण कोड के विरुद्ध दिया। एक कट्टर मुस्लिमलीगी सज्जन के साथ पं० लक्ष्मीकांत मैत्रेय जैसे कट्टर पंथी सनातनधर्माभिमानी का यह गठबंधन सदस्यों और दर्शकों को अवश्य आश्चर्यचकित करने वाला प्रतीत होता है। यदि सचमुच मौलाना नसीरुद्दीन अहमद का हिंदूधर्म, हिंदू सभ्यता तथा प्रथाओं पर इतना विश्वास हो गया है कि वे इनके गुण गाते नहीं थकते तो क्यों नहीं वे इसको ग्रहण कर लेते? २ अप्रैल के भाषण में मौ० नसीरुद्दीन-अहमद ने तलाक के विरुद्ध और संयुक्त परिवार प्रथा के समर्थन में बहुत कुछ कहा। ऐसा ही पं० लक्ष्मीकान्त और अजमेर के पं० मुकुट बिहारीलाल भार्गव ने भी कहा। संयुक्त-परिवार प्रथा का प्रायः लोप ही होता जा रहा है। वर्तमान नियमों के अनुसार परिवार का कोई भी सदस्य साधारण पत्रादि द्वारा प्रार्थना करके भी उससे पृथक् हो सकता है। भारतीय न्यायालयों और प्रिवीकौंसिल के निर्णय संयुक्त-परिवार के सदस्यों के इस अधिकार को स्वीकृत करने के पक्ष में हैं। पुराने और नये विचार वाले लोगों के रहन-सहन आचार विचारादि में भेद इतना बढ़ गया है तथा अन्य भी अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं जिनमें संयुक्त परिवार प्रथा स्वयमेव नष्टप्राय हो चुकी है और प्रतिदिन होती जा रही है किन्तु मैं उनके नियम में लिखने की कोई आवश्यकता नहीं समझता, मैं तो इस बात पर शास्त्रों की दृष्टि से कुछ प्रकाश डालना चाहता हूँ जिनके नाम की दुहाई हमारे पौराणिक भाई और मौ० नसीरुद्दीन अहमद जैसे उनके वकील देते हैं। पाठक महानुभाव स्मृतियों के निम्न वचनों पर गम्भीरता से, निष्पक्ष होकर विचार करें।

(१) मनुस्मृति ६। १११ में लिखा है:—

एवं सह वसेयुर्वा, पृथग् वा धर्म काम्यया ।
पृथग् विवर्धते धर्मः तस्माद् धर्म्या पृथक् क्रिया ॥

अर्थात् इस प्रकार भाई साथ रहें अथवा अलग अलग रहें यह उनकी इच्छा पर निर्भर है । पर अलग-अलग रहने से धर्म की वृद्धि होती है इसलिए अलग-अलग रहकर कर्म करना धर्म-सम्मत है । इसकी व्याख्या में कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि "एवम् अविभक्ता भ्रातरः सह वसेयुः यदि वा धर्मकामतया कृतविभागाः पृथग् वसेयुः यस्मात् पृथगवस्थाने सति पृथग्-पृथग् महायज्ञाद्यनुष्ठानाद्धर्मस्तेषां विवर्धते तस्माद् विभागक्रिया धर्मार्था ।" अर्थात् इस प्रकार भाई अविभक्त रह कर साथ रहें अथवा धर्म की कामना से विभाग (बंटवारा) करके अलग-अलग रहें, क्योंकि अलग-अलग रहने पर पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान अलग-अलग होने से धर्म बढ़ता है । इसलिए विभाग क्रिया अर्थात् बंटवारा करके अलग-अलग क्रिया करना धर्म के अनुकूल है ।

मेधातिथि ने भी इस श्लोक की ऐसी ही व्याख्या करके यहां तक लिखा है कि "यस्तु जीवत्येव पितरि कृतविवाहस्तदैव परिगृहीताग्निस्तस्याधिकृतस्यावश्यं वा—विभागः...नहि विभागाविभागयोर्धर्माधर्मत्वं स्वरूपेणास्तीत्युक्तम् ॥"
[मनुस्मृति, मेधातिथिभाष्य, २य भाग. कलकत्ता संस्करण पृ० २७२]।

अर्थात् जो पिता के जीवित होते हुए विवाह कर लेता है और तब गृह्याग्नि का ग्रहण करता है, उसका संयुक्त परिवार से विभाग (पृथक् हो जाना) अनिवार्य या अत्यावश्यक है । परिवार के सदस्यों के बंटवारा होने या न होने में कोई धर्म या अधर्म नहीं है, यह हम बता चुके हैं ।

(२) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में कहा गया है :—
एकपाकेन वसतां, पितृदेवार्चनादिकम् । एकं भवेद्विभक्तानां, तदेवस्याद् गृहे गृहे ॥
[बृहस्पति स्मृति २६ ५ पृ० ६६ बड़ौदा संस्करण]

अर्थात् भाई इत्यादि यदि इकट्ठे रहें और एक स्थान पर भोजन खाएं तो पितृयज्ञ, देवयज्ञादि एक ही हो सकते हैं किन्तु यदि वे विभक्त हो अलग-अलग रहें तो ये यज्ञ प्रत्येक घर में होते हैं इसलिए विभक्त होकर रहना ही अधिक अच्छा है ।

(३) गौतम धर्म सूत्र २८४ में भी इसी बात को एक छोटे से सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है जो निम्नलिखित है:—

'वियागे तु धर्मवृद्धिः।'

अर्थात् संयुक्त परिवार की अपेक्षा उससे विभक्त हो जाने पर धर्म की वृद्धि होती है।

इसी प्रकार के वचन अन्य भी ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं किंतु इतने ही उन लोगों के वचन को अयथार्थ सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं जो संयुक्त परिवार की प्रथा को प्राचीन आर्य हिंदू धर्म और संस्कृति का अनिवार्य या अत्यावश्यक अङ्ग मान कर उसके भङ्ग को अधर्म्य समझते हैं। वास्तव में धर्म की दृष्टि से बात इससे ठीक विपरीत है। हां, यह तो आवश्यक धर्म है कि सबका परस्पर प्रेम और पूर्ण सहानुभूति हो, किसी प्रकार का विरोध भाव न हो। अथर्ववेद ३।३० में ऐसा ही आदेश है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सजातमिवाघ्न्या॥

अर्थात् मैं तुम्हारे अंदर हृदय और मन की एकता और अद्वेष भाव को स्थापित करता हूँ। तुम आपस में ऐसा प्रेम रक्खो जैसा गाय नवजात बछड़े के प्रति रखती है।

व्यावहारिक दृष्टि से संयुक्त परिवार प्रथा के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु मैं उस विषय में लिखना यहां आवश्यक नहीं समझता। वैयक्तिक शक्तियों का विकास, स्वावलम्बनादि गुणों की वृद्धि पृथक् रहने में अधिक हो सकती है ऐसा लोगों का प्रायः अनुभव है। निर्धन सम्बन्धियों तथा अन्यों के प्रति दया और सहानुभूति प्रदर्शित करना तो प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है ही। धार्मिक दृष्टि से इतना निर्देश ही पर्याप्त है।

हिंदु कोड बिल की आवश्यकता

पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति

गत लेख में मैंने संयुक्त परिवार प्रथा के सम्बन्ध में धार्मिक दृष्टि से कुछ प्रकाश डाला था। जन्मजात अधिकार की समाप्ति के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता मैंने नहीं समझी। हम वैदिकधर्मी तो जन्मसिद्ध अधिकार किसी विषय में भी नहीं मानते, "अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥"

[ऋग्वेद ५।६०।५]

इत्यादि मन्त्रों में मनुष्यमात्र की भ्रातृता तथा समानता का तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन करते हुए जन्मसिद्ध अधिकार का निराकरण किया गया है। बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि मतानुयायी भी समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं जिससे जन्मसिद्धाधिकार का समर्थन नहीं होता। महर्षि दयानन्द तो यहां तक बढ़ गए हैं कि उन्होंने केवल गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि:—

"न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे इसलिए 'कुछ भी अव्यवस्था न होगी।'"

मिताक्षरा और दायभाग के अन्तर के विस्तार में जाना इस लेख में संभव

नहीं किन्तु इस विषय में पटना के एक विद्वान् रिटायर्ड सबजज ने हिन्दू ला कमेटी के सन्मुख साक्षी देते हुए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और युक्तियुक्त बात अपने अनुभव के आधार पर कही जिसका उल्लेख मुझे यहां उचित प्रतीत होता है। उन्होंने कहा कि "मिताक्षरा की अपेक्षा दायभाग अधिक उपयुक्त है। मैं संयुक्त परिवार प्रथा, पुत्र के जन्मजन्य अधिकारादि को समाप्त करने के पक्ष में हूं। मैं देखता हूँ कि बिहार में धनी परिवारों के बालक आलसी होते हैं क्योंकि उन्हें पैतृक सम्पत्ति में जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त हैं जब कि बंगाल में जहां दायभाग के अनुसार नियम प्रचलित है, बालक कर्मशील और साहसी होते हैं क्योंकि उन्हें धनी परिवार में जन्म लेने के ही कारण कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता।"

(देखो हिन्दू ला कमेटी पृ० १२४)

पिता, पितामह के ऋण को नैतिक उत्तरदायिता से पुत्र, पौत्रादि को मुक्त करने की बात जो पूर्वोद्धृत धारा ८८ में कही गई है युक्तियुक्त तथा न्यायसंगत प्रतीत होती है।

जहां तक सर्वसामान्य हिंदू कोड बिल की आवश्यकता व उपयोगिता का प्रश्न है, मेरा विश्वास है कि किसी भी संगठनप्रेमी समाजहितैषी का इस विषय में मतभेद होना असम्भवप्राय है। अब अधिकतर स्थानीय वा प्रांतीय रूढ़ियों वा रीतिरिवाजों ने विधान (कानून) का स्थान ले रक्खा है। 'रूढ़िः शास्त्राद् बलीयसी' इस हानिकारिका और संगठन तथा एकता में बाधिका उक्ति ने कि रूढ़ि शास्त्र से भी अधिक प्रबल होती है, हिन्दू समाज को जीर्णशीर्ण बना दिया है। कानून का निश्चय करने में भी इसके कारण बड़ी कठिनाई होती है, और न्यायालयों के परस्पर विरुद्ध निर्णय के कारण धन और शक्ति का बड़ा अपव्यय होता है अतः एक सर्वसामान्य हिन्दूकोड का होना प्रत्येक दृष्टि से वांछनीय है। महर्षि दयानन्द ने स्वराज्य के महत्त्व को "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और अन्याय के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" इन शब्दों में दिखाते हुए लिखा "परन्तु भिन्न २ भाषा, शिक्षा, अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।" (सत्यार्थप्रकाश ८ म समु०)

मुझे इसमें सन्देह प्रतीत नहीं होता है कि हिन्दूकोड अलग २ व्यवहारादि जन्य विषमता को दूर करने में सहायक होगा अतः यह उपयोगी है। केवल हिंदुओं के लिए ही नहीं, सभी भारतीयों के लिए एक सर्वसामान्य व्यवहार संहिता (कोड) बनाई जाय इस मांग में मुझे कोई बुराई प्रतीत नहीं होती पर उसमें अधिक समय लगेगा। उससे पूर्व हिंदुओं के संगठन को दृढ़ करने तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये हिन्दू कोड की भी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। मौलाना नसीरुद्दीन अहमद जैसे व्यक्ति जो कट्टर मुस्लिम लीगी रहे हैं और जिनकी मनोवृत्ति में अब विशेष परिवर्तन हो गया है, ऐसा मानने का हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, यदि इस दृष्टि से भी हिन्दू कोड का विरोध कर रहे हैं तो कोई आश्चर्य की बात न होगी अन्यथा उनका इससे कोई सम्बन्ध तो नहीं जिससे साल २ भर भाषण की उन्हें आवश्यकता प्रतीत हो।

यह कहना कि वर्तमान संविधान सभा के सदस्यों को ऐसे कि[illegible] बनाने या स्वीकृत करने का अधिकार नहीं हमें युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता। यदि सभा विधान बनाने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य को करने का अधिकार रखती है तो उसे हिन्दू कोड बिल जैसे उपयोगी बिल को बनाने व उसे पास करने के अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है विशेषतः जब कि संविधान सभा एक सर्वाधिकार सम्पन्न स्वतन्त्र संस्था मानी जा चुकी है। हां, इतनी बात अवश्य न्यायसङ्गत और युक्तियुक्त है कि हिन्दूकोड बिल जैसे बिल पर सम्मति देने का अधिकार केवल हिन्दू सदस्यों को ही हो अन्यों को नहीं क्योंकि अहिंदुओं का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। जैसा कि मैंने इस लेखमाला में शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टि से प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल की भिन्न २ मुख्य धाराओं पर प्रकाश डालते हुए बताया है एक विवाह, अन्तर्जातीय विवाह समर्थन, स्त्रियों की दशा को उन्नत करने इत्यादि विषयक इसके प्रावधान प्रशंसनीय हैं। विवाह की आयु, पुत्रियों के दायभाग में अधिकार तथा अन्य विषयों में संशोधनों की आवश्यकता है। वर-वधू के लिए न्यूनतम आयु २५ वर्ष और १६ होनी सर्वथा उचित है २२ और १५ तो तुरन्त कर ही देनी चाहिए यदि तत्काल २५ और १६ नियत करने में कोई विशेष कठिनाई हो। अति विशेष अवस्थाओं में सम्बन्ध-विच्छेद की अनुमति देना आवश्यक हो तो उसकी शर्तों को और अधिक कठोर बनाया जाए तथा ८, १० वर्ष की ऐसी अवधि निश्चित की जाए जिसके भीतर नपुंसकता, पागलपन तथा कुष्ट

(कोढ़) इत्यादि के कारण भी सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति न दी जाए। विषम विवाहों को दूर करने के लिए भी नियम बनाने आवश्यक हैं। गोद लेने के लिए पुरुष की आयु २५ वर्ष और स्त्री की आयु २१ वर्ष की अवश्य होनी चाहिये। पुत्रियों को दायभाग में वसीयतहीन मृत पिता की सम्पत्ति में पुत्रों के बराबर नहीं किन्तु चौथाई भाग मिलना चाहिये। हां, पति की सम्पत्ति और माता के स्त्रीधन में से स्त्रियों को विशेष अधिकार मिलना चाहिए। पुत्रियों को पैतृक अचल सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार होना चाहिए, भाई के अतिरिक्त अन्यों को बेचने तथा किराये पर देने का नहीं, इत्यादि संशोधन के लिए प्रयत्न करते हुए यदि हिन्दू कोड बिल का सामान्य-रूपेण समर्थन किया जाए तो यह समाज और देशहित की दृष्टि से मेरे विचार में सर्वथा उचित ही होगा। हिन्दू समाज की वर्तमान अवस्था शोचनीय है, उसका उद्धार अनेक आवश्यक सुधारों के बिना जिनमें जातिभेद को दूर करने का प्रमुख स्थान है संभव प्रतीत नहीं होता। आशा है विचारशील महानुभाव निष्पक्षपात होकर इन विषयों पर गम्भीरता से विचार करेंगे॥

परिशिष्ट—१

समाचार पत्रों की सन्मतियां

फरवरी, मार्च तथा अप्रैल, १९४९ के दौरान में समाचारपत्रों में प्रकाशित प्रेस आलोचनाओं का सारांश :

निर्भीक विधान

ट्रिब्यून (अम्बाला) का कथन है कि प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल की निर्भीकता निस्संदेह हिन्दू जाति की बुद्धिमत्ता तथा अपने आप को समयानुकूल सामाजिक अनुरूपता देने की क्षमता का प्रशंसनीय परिचायक है। प्रस्तुत पत्र के कथनानुसार ऐसे मामलों में मूल सिद्धान्त यह होना चाहिये कि आया प्रस्तावित सुधार कोई सामाजिक उपयोगिता रखते हैं या नहीं और ऐसी सामाजिक संस्थाओं की रचना में वे कोई सहायता दे रहे हैं या नहीं, जो एक मनुष्य की अपनी प्रकृति की क्षमताओं का, यथासम्भव सम्पूर्ण रूप में साक्षात्कार कराते हैं। आगे चल कर पत्र का यह आग्रह है : "हमें जनतंत्र व्यवस्था की उन पेचीदगियों को सम्पूर्ण रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिनको सहन कर लेने के लिये हमने नवीन संविधान-व्रत ले रखा है।" बिल की व्यवस्थाओं की परीक्षा करते हुए ट्रिब्यून ने विवेचन किया है कि एक पत्नीक विवाह के निर्धारण द्वारा उक्त बिल का आशय केवल यह है कि हिन्दू विवाह-संस्था सभ्य जगत् की विवाह संस्थाओं की कोटि में लायी जाय। पत्र का कहना है : "सभ्य जगत् की दृष्टि में हमें किसी भी चीज़ ने इतना जलील

नहीं किया जितना कि बहुविवाह और विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रतिषेध ने ।"

यह पत्र बिल में विवाह-विच्छेद के लिये सम्मिलित की गई व्यवस्था का समर्थन करता है। परन्तु स्त्रियों के सम्पत्ति विषयक अधिकारों के बारे में उसकी राय है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्री को दिये हिस्से के अनुपात के प्रश्न पर दो मत हो सकते हैं। बिल की उस व्यवस्था को जिसके अधीन, गोद लेने की दशा में, गोद लिया हुआ बेटा सम्पत्ति के केवल अर्ध भाग का अधिकारी होगा और शेष अर्ध भाग गोद लेने वाली माता के पास रहेगा, प्रस्तुत पत्र "मूल्यवान् संरक्षण" कहता है।

हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड (कलकत्ता) इस बिल का बतौर एक हितकर और आवश्यक कानून के अंग के स्वागत करता है। आगे चल कर यह पत्र लिखता है कि प्रस्तावित कानून के विरुद्ध शास्त्रों के आधार पर जो भी वादविवाद किया जा रहा है वह वस्तुतः असंगत है, क्योंकि इस कोड का विस्तार-क्षेत्र सिर्फ हिन्दुओं के दीवानी कानून तक ही सीमित है जो कि धर्म से सर्वथा भिन्न है। धर्म तो इस बिल के विधानों के प्रभाव से सम्पूर्णतया अलिप्त रहेगा। अपना कथन जारी रखते हुए उक्त पत्र ने इस बात का निर्देश किया है कि प्रस्तावित बिल में किसी भी बात को बलात् लाद देने के लिये लेश मात्र भी प्रयत्न नहीं किया गया और प्रस्तुत पत्र की राय में यह बात इस बिल के पक्ष में एक अकाट्य दलील है। अपने बाप की सम्पत्ति में से यदि किसी बेटी को हिस्सा हासिल करने का अधिकार मिल गया तो परिणामतः समाज की अर्थ रचना का समूल नाश हो जायगा इस पत्र के मंतव्य के अनुसार ऐसे विचारों का रखना सरासर नादानी है। पत्र ने इस बात पर जोर दिया है कि माना कि बिल ने स्त्री को अपने पिता और पति की सम्पत्ति में से हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार दे रखा है, किन्तु इसके साथ साथ इसने उस पर, पति के असमर्थ हो जाने की सूरत में अपने जीवन काल में जायज और नाजायज बच्चोंके भरणपोषण का कर्तव्य भी तो लागू कर दिया है।

नेशनल हेरल्ड (लखनऊ) ने माननीय डा० अम्बेडकर को आधुनिक मनु की उपमा से सुशोभित किया है। इस पत्र ने यह भी कहा है कि विवाह के दो पहलू होते हैं : एक शास्त्रीय और दूसरा नागरिक। नागरिक कर्तव्यों पर ध्यान देना राज्य के लिये आवश्यक है, और इस कार्य संपादन के लिये राज्य के पास केवल एक ही मार्ग हो सकता है और वह है विवाहों को पंजीबद्ध अर्थात् रजिस्टर करना।

हितवाद (नागपुर) आशा रखता है कि कांग्रेस हिन्दू कानून के सुधार को निर्वाचक समूह को शिक्षा के प्रयोजनार्थ अपनी व्यास पीठ बनायेगी।

सामाजिक क्षेत्र में सरकार का कर्तव्य

बम्बे सैंटिनल को राय में सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं के सम्बन्ध में भारतीय सरकार का एक कर्तव्य और उत्तरदायित्व है। पत्र यह जानना चाहता है कि "संविधान में उच्च कोटि के मूल भूत अधिकारों को समाविष्ट करने से कौन सा अर्थ सिद्ध होगा यदि जनता की तमाम सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार सड़ी हुई और दूषित है जिसमें कि अनेक प्रकार के द्वेष-पूर्ण भेदभाव जीवित रखे जा रहे हों।"

इण्डियन एक्सप्रेस (मद्रास) ने बिल के निर्भीक और हितकारी उद्देश्य की प्रशंसा की है और अपने विचारों का निचोड़ इस प्रकार व्यक्त किया है: "सम्भव है कि बिल को अपना संक्रान्तिकाल निर्विघ्न पार कर सकने के लिये कुछ अधिक परिवर्तनों की आवश्यकता प्रतीत हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह एक हितकारी कानून है जो कि आधुनिक विचार धारा एवं व्यवहार के बिल्कुल अनुरूप है।"

सर्च लाइट (पटना) दावा करता है कि हिन्दुओं के कानून में ऐसे पूर्वकालीन दृष्टांत मौजूद हैं जिनके आधार पर प्रस्तावित परिवर्तन जायज करार दिये जा सकते हैं, फिर चाहे वह उत्तराधिकार के बारे में हों या विवाह तथा गोद लेने के विषय में हों या विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में। इसके विचारानुसार विवाह-विच्छेद या तलाक दुराचरण और लंपटता के द्वार खोल देने का कारण नहीं बन सकता। फिर भी प्रस्तुत पत्र ने यह राय प्रकट की है कि यदि पुत्रों और पुत्रियों को समान हिस्सा दिया जायगा तो उससे हिन्दू समाज को सदमा पहुँचने का अन्देशा जरूर है। पत्र ने अनुरोध किया है कि ऐसे मामलों में, जो कि प्राचीन कानूनों और प्रथाओं को एक ओर से दूसरी ओर तक विदीर्ण करने की चेष्टा करते हैं, राज्य व्यवस्थापिका सभा को कुछ धीरे धीरे काम लेना चाहिये।

लीडर (इलाहाबाद) ने इस बात को स्वीकार किया है कि हिन्दुओं के कानून का संगठन करके कोड के रूप में लाना अत्यन्त अनिवार्य है। पत्र ने यह भी कबूल किया है कि प्रस्तुत बिल एकता की प्रक्रिया में अवश्य सहायतास्वरूप होगा, फिर भी विवाद के तौर पर उसने यह राय प्रकट की है कि ऐसा प्रचंड कार्य एक दिन में पूरा नहीं हो सकता।

बिल का समर्थन करते हुए हिन्दुस्तान टाइम्स (नयी दिल्ली) ने निवेदन किया है कि न तो कानून और न समाज दीर्घ काल तक अविच्छिन्न या परिवर्तनशील रह सकता है। ऐसा न होने का दुष्ट परिणाम होगा समाज तथा कानून में दूषणता तथा उनका क्षय। उक्त पत्र का यह भी कथन है कि ऐसे तमाम व्यक्तियों को, जो कि स्त्रियों को समाज में सम्मानयुक्त स्थान देने के लिये इच्छुक हैं, हिन्दू कोड बिल का सस्नेह आदर करना चाहिये।

बिल जल्दबाजी में नहीं ठूंसा जा रहा है

बम्बे क्रानिकल ने इस दलील को कि वर्तमान लोक सभा प्रस्तुत बिल पर चर्चा करने का अधिकार नहीं रखती, अथवा बिल को जल्दबाजी से ठूंसा जा रहा है, सरासर मूर्खता ठहराकर उसको ठुकरा दिया है। यह पत्र बिल के विरोधियों को याद दिलवाना चाहता है कि सन् १९४१ के बाद जब कि हिन्दू ला कमेटी की नियुक्ति की गयी थी, तब यह बिल जनमत प्राप्ति के प्रयोजनार्थ सरकारी तौर पर तीन बार प्रचारित किया जा चुका है। और उस पर दो बार सेलेक्ट कमेटियों द्वारा रिपोर्ट भी पेश की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त हिन्दू ला कमेटी ने आठ प्रान्तों में विस्तारपूर्वक प्रयत्न किया और १२१ गवाहों द्वारा व्यक्तिगत तौर पर दिये गये मौखिक बयानों को एवं १०० से अधिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों की ओर से उपलब्ध साक्षियों को कलमबंद किया। अन्त में पत्र ने यह फतवा दिया है कि इस कानून के लिये समाज न सिर्फ तैयार है बल्कि पके हुए उस फल की भांति भी है जिसका कुछ पलों तक धराशायी होना अवश्यम्भावी है।

इंडियन सोशल रिफार्मर (बम्बई) का कहना है कि भारत अधिराज्य की लोक सभा में जिसे अत्यधिक मत हासिल हैं उस कांग्रेस दल का यह परम कर्तव्य है कि वह हिन्दू कोड बिल को अन्तिम ध्येय पर पहुँचाये। पत्र ने आशा व्यक्त की है कि कांग्रेस दल अवश्य अपने कर्तव्य का विवेक पूर्वक और सक्रिय रूप में पालन करेगा। पत्र ने व्यापारी समुदाय पर यह दोषारोपण किया है कि वह प्रस्तुत सुधारों का अन्तरध्वंस करने के उद्देश्य से अपने सारे प्रभावों को उपयोग में लाने का यत्न कर रहा है।

सन्डे न्यूज आफ इण्डिया 'टाइम्स आफ इंडिया' के रविवार अंक ने बिल का समर्थन किया है और कहा है कि हिन्दू कानून के एक संगठित कोड की बहुत दिनों से आवश्यकता महसूस हो रही थी। कन्याओं के शिक्षण, और वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों ने उनके लिये अपनी आजीविका स्वयं

अपार्जन करने की जो आवश्यकता उपस्थित कर दी है। इससे यह आवश्यक हो गया है कि समाज एवं परिवार में उनको उचित स्थान प्राप्त हो। इसके साथ साथ पत्र ने यह राय भी प्रकट की है कि पुत्री को जो पैतृक सम्पत्ति में पुत्र के बराबर का हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है वह राव कमेटी की सिफारिशों से सर्वथा भिन्न है, और इसका त्वरित् प्रवेश कदाचित हिन्दू परिवार की रचना पर ही महत्वपूर्ण असर डाल दे तो आश्चर्य नहीं।

स्वतंत्र मत-प्राप्ति के लिये अनुरोध

अमृतबाजार पत्रिका (कलकत्ता) ने इच्छा प्रकट की है कि प्रस्तुत बिल पर वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित की गयी नयी राज्य व्यवस्थापिका द्वारा ही विचार किया जावे। पत्र ने दलील देते हुए लिखा है कि कम से कम भारत की लोक सभा में कांग्रेस दल के सदस्यों को इस कानून पर अपनी बुद्धि अनुसार स्वतंत्र मत प्रयोग करने का अधिकार देना चाहिये। स्त्रियों के लिये सम्पत्ति विषयक अधिकारों का उल्लेख करते हुए पत्र का कथन है कि पाश्चात्य देशों में भी नारियां इन अधिकारों का उपभोग नहीं करतीं। इस हकीकत को लक्ष्य में रखते हुए कि माता-पिता की वृद्धावस्था में पुत्री की बजाय पुत्र उनका पालन-पोषण करता है, पुत्र और पुत्री को समान श्रेणी में रखना न्यायसंगत नहीं होगा। माननीय डा० अम्बेडकर की उस दलील की आलोचना करते हुए जिसमें कि आपने फरमाया है कि बिल के विधान ऐच्छिक हैं और अनिवार्य नहीं, पत्र ने राय दी है कि जब तक जनता की सामाजिक भावना सम्पूर्णतया जागृत नहीं होती, ऐच्छिक कानून निर्माण कभी भी प्रभावकारी नहीं हो सकता।

इण्डियन न्यूजक्रानिकल (दिल्ली) इस पक्ष में नहीं है कि वर्तमान काम चलाऊ लोक सभा इस बिल के बारे में कोई कार्रवाई करे। पत्र का कहना है कि असावधान और विचार-रहित कानून के निर्माण के विरुद्ध जो चेतावनियां दी जा रही हैं उन्हें बिल का समर्थन करने वाला पक्ष प्रतिगामी और राष्ट्र विरोधी कृत्य का नाम देकर तिरस्कार करे, यह उचित नहीं है।

इण्डियन नेशन (पटना) की राय के मुताबिक इस बिल ने हिन्दू समाज पर बहुत भीषण और अनुदार हमले किये हैं। पत्र के कानून निर्माताओं से अनुरोध किया है कि वह इस मामले में शनैः शनैः कदम उठावें और धक्कों से दूर रहें।

हिन्दू समाज के लिये स्वास्थ्यप्रद

हिन्दी प्रेस—

वीर अर्जुन (दिल्ली) को विश्वास है कि यद्यपि प्रस्तुत बिल में थोड़े बहुत शोधन-वर्धन की आवश्यकता हो सकती है तथापि इसमें संदेह नहीं कि वह हिन्दू समाज की सुस्वास्थ्यमय उन्नति में सहायता रूप है।

जागृति (झांसी) ने इस बात पर जोर दिया है कि इस बिल ने एक पुरातन वादी को अपनी अवस्था बदल देने पर मजबूर किये बिना समाज के प्रगतिशील तत्वों के लिये वैधानिक अनुज्ञप्ति प्राप्त हो सके इसका प्रबन्ध किया है।

हिन्दुस्तान (नयी दिल्ली) प्रस्तावित परिवर्तनों को आवश्यक समझता है और उसे यकीन है कि वे सड़े हुए हिन्दू समाज में पुनर्जीवन का संचार करेंगे और उसका पुनर्योजन कर सकेंगे।

विश्वबन्धु (कलकत्ता) ने बिल के विरोधियों को समय को पहिचान लेने के लिये और परम्परा से चले आते पक्षपातों का परित्याग कर देने के लिये आग्रह किया है।

नवराष्ट्र और प्रदीप ने जो कि दोनों पटना से प्रकाशित होते हैं बिल के विधानों का समर्थन किया है किन्तु इन दोनों पत्रों को पुत्रियों को दिये गये सम्पत्ति विषयक अधिकारों के सम्बंध में अनेक कठिनाइयां नजर आ रही हैं।

जयाजी प्रताप (ग्वालियर) ने बिल का स्वागत किया है किन्तु, कट्टर-पंथियों को शान्त करने के उद्देश्यार्थ सगोत्र-विवाहों, विवाह-विच्छेद और गोद लेने के साथ सम्बन्ध रखने वाली धाराओं में कुछ संशोधनों का सूचन भी किया है।

लोकमान्य (कलकत्ता) की राय में पुत्री को अपने पिता की सम्पत्ति में हक देना हिन्दुओं के घर की शान्ति को भंग कर देने के बराबर होगा।

स्वतन्त्र भारत (लखनऊ) का कथन है कि ऐसा प्रतीत होता है कि डा० अम्बेडकर ने निश्चय कर लिया है कि १० प्रतिशत शूद्रों के रस्मो रिवाज ६० प्रतिशत सवर्ण हिन्दुओं पर ठूँस दिये जायं। पत्र जानना चाहता है कि नैतिकता क्या सिर्फ बहुसंख्यावाद के नियम पर ही आधारित हो सकती है।

अमर भारत (देहली) ने दलील पेश की है कि पूर्व इसके कि बिल

कानून बने रियासतों की जनता को वयस्क मताधिकार द्वारा अपनी राय जाहिर करने का अवसर देना चाहिये।

उर्दू प्रेस—

प्रताप और मिलाप ने जो कि दोनों (दिल्ली) से प्रकाशित हो रहे हैं इस बिल का समर्थन किया है और उन लोगों को बड़े सख्त शब्दों में खबर ली है जो कि प्राचीनता से चिमटे हुए हैं। 'मिलाप' का अनुरोध है कि सरकार इस बिल को जब तक नवीन चुनाव नहीं हुए हैं तब तक स्थगित कर दे, दूसरी ओर प्रताप की राय है कि प्रस्तुत बिल में कुछ संशोधनों के लिये अवकाश है।

वीर भारत सनातनियों के मुख्य पत्र का कथन है कि प्रस्तुत बिल का प्रवेश धर्मशास्त्रों में घोर हस्तक्षेप के तुल्य होगा। पत्र का यह भी कहना है कि बिल को कुछ काल के लिये स्थगित कर देने से कोई भी हानि न होगी।

परिशिष्ट २

हिन्दूकोड बिल. १९४८

(जैसा कि सेलेक्ट कमेटी द्वारा संशोधित हो चुका है)

हिन्दू ला (कानून) की कुछ शाखाओं को संशोधित और जाप्तासंगत बनाने के लिए

एक बिल

चूंकि हिन्दू ला (कानून) जैसा कि अब भारत के प्रान्तों में प्रचलित है, उसकी कुछ शाखाओं को संशोधित करना और जाप्ता संगत बनाना उचित प्रतीत हो रहा है, अतः निम्न कानून बनाया जाता है।

भाग १. आरम्भिक बातें

१. संक्षिप्त नाम, सीमा विस्तार तथा आरम्भ काल—

(१) यह ऐक्ट हिन्दू कोड ई० १९४८ के नाम से प्रचलित होगा।

(२) यह भारत के सारे प्रान्तों को व्याप्त करेगा।

(३) इसका आरम्भ पहली जनवरी ई० १९४० से होगा।

२. कोड का प्रभाव—

(१) यह कोड निम्नलिखित पर लागू होता है :

(अ) समस्त हिन्दुओं पर; कहना चाहिये कि ऐसे समस्त व्यक्तियों पर जो हिन्दूधर्म के किसी भी स्वरूप या सम्प्रदाय को मानते हैं, जिसके अन्तर्गत वीरशैव्य या लिङ्गायत और ब्राह्म समाज, प्रार्थना या आर्यसमाज के सदस्य भी आ जाते हैं।

(इ) किसी भी ऐसे व्यक्ति पर जो कि बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म का अनुयायी है।

(उ) (१) किसी भी ऐसे बच्चे पर चाहे वह जायज़ है अथवा नाजायज़ किन्तु इस धारा के अर्थों में जिसके माता-पिता दोनों हिन्दू हैं।

(२) किसी भी ऐसे बच्चे पर चाहे वह जायज़ है अथवा नाजायज़ किन्तु इस धारा के अर्थों में उसके माता-पिता में से कोई एक हिन्दू है किन्तु शर्त यह है कि ऐसे बच्चे का पालन-पोषण ऐसी जाति, ग्रुप अथवा कुटुम्ब के एक हिंदू सदस्यके रूप में किया गया हो जिसको कि उसकी ऐसी माता या पिता रखता था अथवा रखता है। और

(ऋ) हिन्दू धर्मग्रहण करने वाले व्यक्ति पर।

(२) यह कोड दूसरे ऐसे किसी भी व्यक्ति पर लागू होता है जो कि मुसलिम, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं है। किन्तु शर्त यह है कि यदि साबित कर दिया जाता है कि कोई व्यक्ति यदि यह हिन्दू कोड पास न होता, हिन्दू ला द्वारा या उसके अंगीभूत रिवाज या प्रथा द्वारा वह इस कोड में व्यवहृत मामलों के विषय में प्रशासित नहीं हो सकता था, तब उन मामलों में ऐसे व्यक्ति पर यह कोड लागू नहीं होगा।

(३) इस कोड के किसी भी अंश में "हिन्दू" शब्द का व्यवहार यह भाव प्रकट करेगा, गोया कि इस (शब्द) ने ऐसे व्यक्ति को अन्तर्गत कर लिया है जो कि यद्यपि धर्म अनुसार हिन्दू नहीं है तथापि इस कोड के विधानों द्वारा प्रशासित किया जा चुका है।

(४) स्पेशल मैरेज ऐक्ट १८७२ ई० (१८७२ का ३) में किसी बात का ज़िक्र होने पर भी यह कोड ऐसे समस्त हिन्दुओं पर लागू होगा, जिनके विवाह उस ऐक्ट के विधानों के अधीन इस कोड के प्रारम्भ काल से पहिले हो चुके हैं।

३. परिभाषायें—

जब तक विषय अथवा प्रसंग के विपरीत कोई बात नहीं होती। इस कोड में "रिवाज" और "प्रथा" इन शब्दों का व्यवहार, ऐसे रिवाज और प्रथा पर होता है जो कि दीर्घकाल से निरंतर, और समरूपता में गृहीत होते चले आरहे हैं और जो कि किसी स्थानिक क्षेत्र, कबीले जाति, ग्रुप अथवा कुटुम्ब के हिंदुओं में कानून का प्रभाव रखते हैं।

लेकिन शर्त यह है कि ऐसा रिवाज निश्चित हो और युक्ति विरुद्ध न

हो या सरकारी नीति का विरोधक न हो।

अधिक शर्त यह है कि किसी ऐसे रिवाज के मामले में जोकि केवल एक कुटुम्ब पर लगता है वह ऐसे कुटुम्ब द्वारा निरन्तरता रहित न किया जा चुका हो।

(२) "जिला अदालत" इस शब्द के व्यवहार से तात्पर्य है मूल अधिकार क्षेत्र का मुख्य सिविल कोर्ट जो कि धारा ४४ और ४६ में छोड़कर हाईकोर्ट को इस के साधारण मौलिक अधिकार या क्षेत्र के प्रयोग में अन्तर्गत करता है।

(३) "पूर्ण रक्त" (Fullblood) तथा "अर्धरक्त" दो व्यक्ति आपस में तब पूर्ण-रक्त-युक्त कहे जाते हैं जबकि वह समान बाप और समान माता की सन्तान हैं और अर्धरक्त-युक्त तब कहे जाते हैं जब कि वह समान बाप किन्तु भिन्न भिन्न माताओं की सन्तान हैं।

(४) "सहोदर रक्त" दो व्यक्ति आपस में तब सहोदर रक्त-युक्त कहे जाते हैं जब कि वह समान माता किन्तु भिन्न भिन्न पिताओं की सन्तान हैं। व्याख्या—इस वाक्य खण्ड में "ऐनसेस्टर" (ancestor) पिता का द्योतक है जब कि "ऐनसेस्टरेस्स" ancestoress) माता का।

(५) "भाग" से तात्पर्य है इस कोड का कोई भी भाग।

(६) "निर्धारित" से तात्पर्य है इस कोड के अधीन निर्मित नियमों द्वारा निर्धारित।

(७) "सम्बन्धी" से तात्पर्य है जायज रिश्ते द्वारा सम्बन्धी।

किन्तु शर्त है कि नाजायज़ बच्चे अपनी माता के और परस्पर आपस में एक दूसरे के सम्बन्धी विचारे जायेंगे और उनकी जायज सन्तान उन के तथा परस्पर आपस में एक दूसरे के सम्बन्धी विचार किये जायेंगे और कोई भी शब्द जो कि रिश्ते के व्यवहार में प्रयुक्त होगा अथवा सम्बन्धी या रिश्तेदार का संकेत करता है उसकी व्याख्या ऊपर कहे गये के अनुसार ही होगी।

(८) "पुत्र" किसी गोद लिये पुत्र को अन्तर्गत करता है चाहे वह इस कोड के आरम्भ काल से पहले गोद लिया गया है अथवा बाद में किन्तु यह किसी नाजायज पुत्र को सम्मिलित नहीं करता।

४. कोड का सर्वोपरि प्रभाव—

इस कोड में जो बातें दूसरे रूप में व्यवस्थित की जा चुकी हैं उनके सिवाय हिन्दू ला का कोई भी उल्लेख, नियम अथवा व्याख्या या कोई भी

रस्म या प्रथा अथवा कोई भी अन्य कानून जो कि इस कोड के आरम्भ से पूर्व सन्निहित काल में प्रभावकारी है, उनका प्रभाव ऐसे समस्त विषयों के मामले में जोकि इस कोड में व्यवहारगत हो चुके हैं शून्य हो जायगा।

भाग २. विवाह तथा विच्छेद (तलाक)

अध्याय १

विवाह

५. व्याख्या—जब तक कि विषय तथा प्रसंग के विपरीत कोई बात नहीं होती इस भाग में।

(अ) (१) "सपिण्ड रिश्ता" किसी भी व्यक्ति का ऊपर की ओर सम्मिलित वंश, माता से लेकर क्रमशः ऊपर की ओर तीन पीढ़ी (पुश्त) तथा पिता से लेकर ऊपर की ओर पांच पीढ़ी (पुश्त) तक सपण्डि रिश्ता कहा जाता है किन्तु ऊपर कहे दोनों मामलों में पीढ़ी गिनते समय सम्बन्धित व्यक्ति की गिनती पहली पीढ़ी में होती है।

(२) दो व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के तब तक "सपिण्ड" कहे जाते हैं यदि वह एक दूसरे की वंशपरम्परा से "सपिण्ड रिश्ता" की सीमा के भीतर समवंशज हैं अथवा यदि वह दोनों 'सपिण्ड रिश्ता' की सीमा के भीतर सम्मिलित वंश-परम्परागत आपस में एक दूसरे के साथ समान वंशज के रूप में हैं।

(इ) "निषेधात्मक रिश्तों की कोटियां" दो व्यक्ति आपस में निषेधात्मक रिश्तों की कोटियों में आ जाते हैं जब कि वह एक दूसरे के वंश परम्परा से पूर्वज हैं अथवा उनमें कोई एक वंशपरम्परागत पूर्वज की पत्नी अथवा पति है अथवा दूसरे की सन्तान है या यदि दोनों आपस में भाई और बहिन हैं,

चाचा और भतीजी, फूफी और भतीजा अथवा, दो भाइयों या दो बहिनों की सन्तान हैं ।

व्याख्या—वाक्य खण्ड (अ) और (इ) के उद्देश्यार्थ रिश्ता निम्नाङ्कित को अन्तर्गत करता है—

(१) ऐसा रिश्ता या सम्बन्ध जो कि अर्धरक्तयुक्त, सहोदररक्तयुक्त और इसी भांति पूर्णरक्त युक्त है ।

(२) नाजायज रक्तसम्बन्ध और उसी भांति जायज रक्त का सम्बन्ध ।

(३) गोद लिया रिश्ता और उसी भांति रक्त का रिश्ता । और इन वाक्य-खण्डों में रिश्ता सम्बन्धी समस्त परिभाषायें उस के अनुसार ही व्याख्यात होंगी ।

उदाहरण

(१) ग, क के बाप की माता के बाप का और ख की माता के बाप का समान पूर्वज है, इस भांति ग, क, के बाप की सम्मिलित पंक्ति में क से पांचवीं पीढ़ी (पुश्त) में है और ग की माता की सम्मिलित पंक्ति में ग, से तीसरी पीढ़ी में है, इस प्रकार क, और ग आपस में सपिण्ड हैं ।

(२) क और ख आपस में सगोत्र (बाप की ओर से समान किन्तु मां की ओर से भिन्न-भिन्न) भाई, बहिन हैं, उन की सन्तान सपिण्ड-रिश्ता की सीमा के भीतर आपस में एक दूसरे के सपिण्ड होंगे तथा उन दोनों के बाप की सन्तान और उक्त के बाप के सम्मिलित पूर्वज क और ख के सपिण्ड होंगे और उन की सन्तान सपिण्ड रिश्ता की सीमा के भीतर आपस में सपिण्ड होगी किन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि क, का नाना ख, के नाना का सपिण्ड होवे, और न ही यह ज़रूरी है कि पहले कहे नाना का पुत्र पश्चात् कथित नाना के पुत्र का सपिण्ड हो ।

(३) क और ख आपस में सहोदर (मां की ओर से समान किन्तु बाप की ओर से भिन्न-भिन्न) भाई बहिन हैं, उन की सन्तान सपिण्ड रिश्ते के भीतर आपस में एक दूसरे के सपिण्ड होंगी तथा उन दोनों की माता की सन्तान और उस के (माता के) सम्मिलित पूर्वज क और ख के सपिण्ड होंगे और उन की सन्तान सपिण्ड रिश्ता की सीमा के भीतर परस्पर सपिण्ड होंगी किन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि क का दादा (बाप का बाप) ख के दादा का सपिण्ड होवे और न ही यह ज़रूरी है कि पहले कथित दादा का पुत्र पश्चात् कहे दादा के पुत्र का सपिण्ड हो ।

६. हिन्दू शास्त्रीय विवाह की रीतियां—

इस भाग में दूसरे रूप में जो स्पष्ट व्यवस्था की गई है उसे जुदा छोड़ कर दो हिन्दुओं में हुआ विवाह तब तक जायज़ स्वीकार नहीं होगा जब तक कि वह इस भाग के विधानों के अनुसार या तो शास्त्रीय विवाह के रूप में अथवा सिविल मैरेज (विवाह) के रूप में सम्पूर्ण नहीं हो चुका होगा।

शास्त्रीय विवाह

७. शास्त्रीय विवाह सम्बन्धी शर्तें—

यदि निम्न लिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं तो किन्हीं भी दो हिन्दुओं में शास्त्रीय रीति अनुसार विवाह सम्पन्न हो सकेगा।

(१) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई पक्ष भी पति अथवा पत्नी नहीं रखता।

(२) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय कोई जड़बुद्धि, या पागल नहीं है।

(३) यदि विवाह के समय पर वर अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुका है और वधू चौदह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी है।

(४) यदि दोनों पक्ष परस्पर निषेधात्मक रिश्ते की कोटियों के अन्तर्गत नहीं आते।

(५) यदि दोनों पक्ष आपस में परस्पर सपिण्ड नहीं हैं और जब तक कि ऐसा रिवाज़ अथवा प्रथा जो कि उन दोनों को प्रशासित करती है दोनों में शास्त्रीय विवाह होने के लिये स्वीकृति नहीं देती।

(६) जहां पर कि वधू सोलह वर्ष की आयु को पूरा नहीं कर चुकी है उस के अभिभावक (Guardian) की स्वीकृति प्राप्त की जा चुकी है।

८. धार्मिक रस्में आवश्यक हैं

(१) एक शास्त्रीय विवाह तब तक सम्पूर्ण नहीं होगा और दोनों पक्षों को कानूनी तौर पर बाध्य नहीं करेगा जब तक कि वह दोनों पक्षों की ऐसी रस्मों तथा संस्कारों के अनुसार सम्पूर्ण नहीं होता जो कि उस विवाह के सम्पन्न होने में आवश्यक हैं।

(२) जहां पर कि ऐसी रस्में अथवा संस्कार सप्तपदी (जो कि विवाह वेदी में वर-वधू हवन कुण्ड की अग्नि के समक्ष दोनों अपना एक २ पांव मिला कर इकट्ठे साथ साथ पद सरकाते हैं) को अन्तर्गत करती हैं वहां पर सातवां पद सरकाने के पश्चात् विवाह सम्पूर्ण हो जाता है और दोनों पक्षों को कानूनी परिभाषा में विवाह बन्धन में जकड़ लेता है।

(३) इस धारा में किसी बात का जिक्र होने पर भी शास्त्रीय विवाह की रीति अनुसार सम्पूर्ण हुआ विवाह सम्पन्न हो चुकने के पश्चात् किसी ऐसे हेतु के आधार पर कि दोनों पक्षों की विवाह सम्बन्धी रस्मों अथवा संस्कारों को करने में कुछ ढील रह गई थी, कानून की दृष्टि में नाजायज़ नहीं होगा।

९. शास्त्रीय विवाहों की रजिस्ट्री—

(१) किसी भी शास्त्रीय विवाह के सबूत के विषय में सुविधायें देने के प्रयोजनार्थ प्रान्तीय सरकार नियमों द्वारा व्यवस्था करेगी कि······

(अ) ऐसे विवाह सम्बन्धी विशिष्ट उस हिन्दू शास्त्रीय विवाह रजिस्टर में दर्ज होंगे जो कि इस प्रयोजन के लिये ऐसे ढंग पर और ऐसी स्थिति के अधीन रखा गया होगा जिन को कि, वह (प्रान्तीय सरकार) उचित विचारती है। और

(इ) ऐसे मामलों में अथवा ऐसे क्षेत्रों में ऐसे विशिष्टों का दर्ज करना आवश्यक होगा जिन का कि नियमों में ज़िक्र होगा।

(२) उपधारा (१) के अधीन कोई भी नियम बनाने में प्रान्तीय सरकार व्यवस्था करेगी कि उन का उल्लंघन करने पर जुर्माना दण्ड होगा जो कि एक सौ रुपया तक हो सकेगा।

सिविल मैरेज (विवाह)

१०. सिविल मैरेज सम्बन्धी शर्तें—

किन्हीं भी दो हिन्दुओं में सिविल मैरेज होने के लिये निम्न शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

(१) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई पक्ष भी पति अथवा पत्नी नहीं रखता।

(२) यदि विवाह के समय पर दोनों में कोई जड़बुद्धि या पागल नहीं है।

(३) यदि विवाह के समय पर वर आयु के अठारह वर्ष पूरे कर चुका है और वधू अपनी आयु के चौदह वर्ष पूरे कर चुकी है।

(४) यदि दोनों पक्ष परस्पर निषेधात्मक रिश्ता की कोटियों के अन्तर्गत नहीं आते।

(५) विवाह के दोनों पक्षों में से यदि वर अथवा वधू आयु के इक्कीस वर्ष पूरे नहीं कर चुकी है, तो ऐसी स्थिति में इस विवाह के विषय में वर

अपने अथवा वधू के अभिभावक (वली) की स्वीकृति प्राप्त कर चुका है।

किन्तु शर्त है कि ऐसी स्वीकृति विधवा के मामले में अभीष्ट नहीं होगी।

११. विवाह के रजिस्ट्रार—

प्रान्तीय सरकार इस भाग में जो बतौर रजिस्ट्रार के निर्दिष्ट है, प्रान्त भर के लिए अथवा उसके किसी भाग के लिए हिन्दू विवाहों के रजिस्ट्रार होने के रूप में ऐसे एक अथवा अधिक व्यक्तियों को नियुक्त करेगी और ऐसा क्षेत्र जिस में कि ऐसा रजिस्ट्रार नियुक्त होगा वह उस का जिला कहलायेगा।

१२. रजिस्ट्रार को विवाह का नोटिस देना—

जबकि इस भाग के अधीन एक सिविल विवाह सम्पन्न होने के लिये चाहा जा रहा है, विवाह के दोनों पक्ष इस विवाह के विषय में तीसरी सूची (शेडूल) में जिक्र की रीति पर उस जिला के रजिस्ट्रार को नोटिस भेजेंगे जिस में कि विवाह करने वाले दोनों पक्षों में से कोई एक नोटिस देने की तारीख से पहले कम से कम इतनी अवधि के लिए निवास कर चुका है जिसका समय तीस दिनों से कम नहीं है।

१३. विवाह नोटिस पुस्तक और प्रकाशन—

(१) रजिस्ट्रार ऐसे समस्त नोटिसों को जो कि धारा १२ के अधीन दिये गये हैं, अपने दफ्तर के रेकार्डों में रखेगा और ऐसा करने के बाद शीघ्र ऐसे नोटिस की एक असली नकल ऐसी पुस्तक में भी दर्ज करेगा जो कि प्रान्तीय सरकार द्वारा इसी प्रयोजन के लिए तैयार की गई है। तथा जो कि हिन्दू सिविल मैरेज नोटिस बुक के नाम से पुकारी जायगी तथा ऐसी पुस्तक उचित समय पर हर उस व्यक्ति के निरीक्षण के लिये बिना फीस दिये खुली होगी जो कि उसे देखने का इच्छुक होगा।

(२) रजिस्ट्रार ऐसे समस्त नोटिसों को ऐसे तरीके पर प्रकाशित भी करेगा जो कि ऐसा करने के लिये निर्धारित होगा।

१४. विवाह के सम्बन्ध में शिकायत—

(१) ऐसे नोटिस देने की तारीख से लेकर बाद में तीस दिन समाप्त हो जाने के बाद जो कि धारा १२ के अधीन चाहे गये विवाह के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार को भेजा गया है, यदि उस पर उपधारा (२) के अधीन कोई शिकायत नहीं उठाई गई होगी तो वह विवाह सम्पूर्ण हो जायगा।

(२) कोई भी व्यक्ति चाहे गये विवाह के विषय में दिये नोटिस के तीस दिन समाप्त होने से पहले ऐसे आधारों पर शिकायत करेगा कि वह (विवाह) धारा १० के वाक्य खण्ड (१) (२) (३) (४) और (५) में निर्धारित शर्तों में से एक अथवा अधिक का उल्लंघन करता है।

(३) की गई शिकायत का प्रकार (nature) रजिस्ट्रार द्वारा लिखित रूप में हिन्दू सिविल मैरेज नोटिस बुक में रिकार्ड किया जायगा और यदि वह आवश्यक समझेगा तो वह (शिकायत) शिकायत करने वाले व्यक्ति के सामने पढ़ी जायगी और उसकी व्याख्या की जायगी और उसके द्वारा अथवा उसके बदले में दूसरे व्यक्ति द्वारा उस पर हस्ताक्षर किया जायगा।

१५. शिकायत प्राप्त होने पर अदालती कार्यवाही—

(१) यदि चाहे गये विवाह के सम्बन्ध में धारा १४ के अधीन कोई शिकायत की जा चुकी है तो रजिस्ट्रार उस विवाह को सम्पूर्ण होने के लिये तब तक स्वीकृति नहीं देगा, जब तक कि उसके सम्बन्ध में पहुंची शिकायत की तीस दिन की अवधि समाप्त नहीं हो जाती, किन्तु शर्त यह है कि उस समय पर समुचित अधिकार क्षेत्र रखने वाली अदालत खुली होनी चाहिये या यदि उस समय पर ऐसी अदालत खुली नहीं होगी तो ऐसी अदालत को खुले हुए तीस दिन की अवधि समाप्त हो चुकने के बाद स्वीकृति देगा।

(२) चाहे गये विवाह के सम्बन्ध में शिकायत करने वाला व्यक्ति मुकामी अधिकार क्षेत्र रखने वाली जिला अदालत में या किसी दूसरी ऐसी अदालत में जो कि प्रान्तीय सरकार द्वारा इस काम के लिये साधिकार बनाई गई है और ऐसे मुकदमा के सुनने के लिये अधिकार क्षेत्र रखती है शिकायत करेगा कि ऐसा विवाह धारा १० के वाक्य खण्ड (१) (२) (३) (४) और (५) में निर्धारित शर्तों में से किसी एक अथवा अधिक का उल्लंघन करता है, और ऐसी अदालत जिसमें कि ऐसी शिकायत या मुकदमा दायर किया गया है उसके बाद अभियोग दायर करने वाले व्यक्ति को इस सबूत के लिये एक सर्टीफिकेट देगी कि वह ऐसी शिकायत या मुकदमा दायर कर चुका है।

(३) यदि उपधारा (२) में निर्दिष्ट सर्टीफिकेट, उस शिकायत के पहुंचने की तारीख के बाद शिकायत करने वाले द्वारा तीस दिनों के भीतर रजिस्ट्रार को सौंप दिया जाता है बशर्ते कि उस समय पर समुचित अधिकार क्षेत्र रखने वाली अदालत खुली हो और यदि ऐसी अदालत खुली नहीं होगी तब ऐसी अदालत के खुलने के बाद तीस दिनों के भीतर रजिस्ट्रार को सौंप दिया

जाता है तब वह विवाह तब तक सम्पूर्ण नहीं होगा जब तक कि ऐसी अदालत द्वारा निर्णय नहीं दिया जा चुकता और अपील करने के लिये नियत किया काल समाप्त नहीं हो चुकता अथवा यदि अपील दायर की जा चुकी है तो अपेलेट कोर्ट द्वारा उस अभियोग पर अपना निर्णय नहीं दिया जा चुकता।

(४) यदि ऐसा सर्टीफिकेट उस तरीके के अनुसार और उस समय के भीतर रजिस्ट्रार के सुपुर्द नहीं किया गया है जो कि उपधारा (३) में निर्धारित किया गया है अथवा यदि अदालत का निर्णय यह है कि वह विवाह धारा १० के वाक्य खंड (१) (२) (३) (४) और (५) में निर्धारित शर्तों में से किसी एक को भी नहीं तोड़ता या उल्लंघन करता तो रजिस्ट्रार द्वारा ऐसा विवाह जिसके लिये कि नोटिस दिया गया था सम्पूर्ण किया जा सकेगा।

(५) यदि अदालत का फैसला यह है कि वह विवाह धारा १० के वाक्य खंड (१) (२) (३) (४) और (५) में निर्धारित शर्तों में से किसी एक को उल्लंघन कर चुका है तब वह विवाह सम्पूर्ण नहीं हो सकेगा।

१६. शिकायत के सही न होने पर अदालत का जुर्माना करने के अधिकार—

जिसके सामने मुकदमा पेश है यदि उस अदालत को मालूम हो चुका है कि शिकायत सही और बोनाफाइड नहीं थी तो वह उस शिकायत करने वाले पर जुर्माना करेगी जो कि एक हज़ार रुपया से अधिक न होगा और ऐसे जुर्माना की समूची रकम अथवा उसके कुछ अंश को विवाह के चाहने वाले पक्षों को देगी।

१७. पक्षों तथा गवाहों द्वारा डिक्लेरेशन—

(१) पूर्व इसके कि विवाह सम्पूर्ण हो दोनों पक्ष और गवाह रजिस्ट्रार के सामने ऐसी रीति अनुसार एक डिक्लेरेशन हस्ताक्षर करेंगे जो कि चौथी सूची (शेड्यूल) में जिक्र की गई है और जहां पर दोनों पक्षों में से किसी एक ने अपनी आयु का इक्कीसवां वर्ष पूरा नहीं किया है, तब डिक्लेरेशन वर अथवा वधू के अभिभावक (वली) द्वारा हस्ताक्षर किया जायेगा किन्तु विधवा (वधू) के मामले में यह अपवाद है।

१८. विवाह सम्पूर्ण होने का स्थान तथा रीति—

(१) विवाह निम्न अंकित स्थानों पर सम्पूर्ण हो सकेगा—

(अ) रजिस्ट्रार के दफ़्तर में या

(इ) ऐसे स्थान पर जहां पर कि दोनों पक्ष चाहेंगे और जो कि उस

स्थान से युक्तिसंगत फ़ासले पर स्थित होगा और जो कि ऐसी शर्तों पर तथा उतनी अधिक फीस के अदा करने पर होगा जो कि निर्धारित होंगी।

(२) विवाह किसी भी रीति अनुसार सम्पूर्ण हो सकेगा किन्तु शर्त यह है कि यह विवाह तब तक पूर्ण और दोनों पक्षों को कानूनी बन्धन में जकड़ने वाला नहीं होगा जब तक कि प्रत्येक पक्ष रजिस्ट्रार और तीन गवाहों के सन्मुख ऐसा नहीं कहता कि मैं (अ) तुम्ह (ह) को अपनी कानून-संगत पत्नी अथवा पति) बनने के लिये ग्रहण करता हूं।

(३) विवाह रजिस्ट्रार और तीन गवाहों के सामने सम्पूर्ण होगा।

१६. विवाह का सर्टीफिकेट—

(१) जब विवाह सम्पूर्ण हो चुकेगा तो रजिस्ट्रार उस पर पांचवीं सूची (शेडूल) में निश्चित रीति अनुसार एक सर्टीफिकेट को उस पुस्तक में दर्ज करेगा जो कि इसी उद्देश्य के लिये उसके पास रखी गई होगी और जो कि हिन्दू सिविल मैरेज सर्टीफिकेट बुक के नाम से पुकारी जायगी और ऐसा सर्टीफिकेट विवाह करने वाले दोनों पक्षों तथा तीनों गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किया जायेगा।

(२) रजिस्ट्रार द्वारा ऐसा सर्टीफिकेट "हिन्दू सिविल मैरेज" सर्टिफिकेट बुक में दाखिल हो जाने पर उस तथ्य पर ऐसी प्रामाणिक गवाही विचार किया जायेगा कि उस सिविल मैरेज के गवाहों के हस्ताक्षरों के सम्बन्ध में सामान्य शर्तें पूरी की जा चुकी हैं।

२०. जब नोटिस देने के बाद तीन मास में विवाह सम्पूर्ण नहीं होगा तब नया नोटिस देना आवश्यक होगा—

जब कभी ऐसा नोटिस देने के बाद जो कि धारा १२ द्वारा रजिस्ट्रार को दिया जा चुका है जन्त्री के तीन मासों के भीतर विवाह सम्पूर्ण नहीं किया जा चुका है, और जबकि इस प्रकार चाहे विवाह पर शिकायत करने वाला व्यक्ति किसी समुचित अधिकार क्षेत्र रखने वाली अदालत में अभियोग दायर कर चुका है, तथा उस अदालत द्वारा जन्त्री के तीन महीनों के भीतर ही अपना निर्णय दिया जा चुका है और ऐसे निर्णय पर अपील करने का समय भी इन तीन महीनों में समाप्त हो चुका है यदि उस पर अपील दायर की गई थी तो जन्त्री के तीन महीनों के भीतर ही अपेलेट कोर्ट द्वारा अपना निर्णय दिया जा चुका है। ऐसी स्थिति में विवाह निमित्त दिया नोटिस और उस पर

की गई कानूनी कार्यवाही समाप्त हुई विचार की जायेगी और रजिस्ट्रार तब तक ऐसे विवाह को सम्पूर्ण होने के लिये स्वीकृति नहीं देगा जब तक कि उसके लिये इस अध्याय में निर्धारित रीति अनुसार एक नया नोटिस नहीं दिया जा चुका होगा।

२१. कुछ शास्त्रीय विवाहों का रजिस्ट्रेशन—

(१) जहां पर कि कोई भी दो हिन्दू शास्त्रीय विवाह की रीति पर विवाह कर चुके हैं—

(अ) यदि विवाह इस कोड के आरम्भ होने से पहले हो चुका है और ऐसे विवाह के विषय में हिन्दू ला के भी उल्लेख, नियम अथवा व्याख्या के विधानों अथवा उस विवाह के समय पर प्रचलित किसी भी प्रथा या रिवाज के हेतुओं से ऐसे विवाह के जायजपन में संदेह पाये जाते हैं। अथवा

(इ) यदि विवाह इस कोड के आरम्भ होने के बाद हुआ है, और ऐसा विवाह ऐसी हक़ीकत की बिना पर नाजायज है कि वह धारा ७ के वाक्य खण्डों में वर्णित विधानों का उल्लंघन करता है।

ऐसा व्यक्ति किसी भी समय पर जिला के रजिस्ट्रार को ऐसे विवाह को रजिस्टर्ड होने के लिये प्रार्थना-पत्र भेज सकेगा जिस (जिला) में कि दोनों पक्षों में से कोई भी प्रार्थना-पत्र देने के समय से पहले सन्निहित इतने समय तक निवास कर चुका हो जिसकी कि अवधि तीस दिनों से कम न हो, ऐसा होने पर गोया कि वह विवाह एक सिविल मैरेज विवाह है जो कि रजिस्ट्रार के सामने सम्पूर्ण हुआ है।

(२) किसी भी ऐसे प्रार्थना पत्र के पहुंचने पर रजिस्ट्रार ऐसी रीति के अनुसार एक सरकारी नोटिस देगा जैसा कि वह निर्धारित होगी, और उस पर एक शिकायत करने के लिये और ऐसी शिकायत सुनने के लिये तीस दिन की अवधि जो कि इस कार्य के लिये नियत होगी समाप्त हो चुकने के पश्चात् यदि रजिस्ट्रार को तसल्ली हो जाती है कि—

(अ) विवाह की धार्मिक रस्में उसी तारीख पर मनाई गई थीं जो कि प्रार्थना-पत्र में अंकित की गई है और वह दोनों पक्ष तब से लेकर इकट्ठे पति-पत्नी के रूप में रह रहे हैं।

(इ) और धारा १० के वाक्य खण्ड (१) से लेकर (४) में निर्धारित

शर्तें प्रार्थना पत्र देने की तारीख पर विवाहित पक्षों में तसल्ली देने वाली हैं।

(ड) और जहां पर कि विवाह के समय पर दूसरा पक्ष विधवा नहीं थी और इस प्रार्थना पत्र देने की तारीख पर वह अपनी आयु का इक्कीसवां वर्ष पूरा नहीं कर चुकी थी और कि वह *विवाह बतौर सिविल मैरेज के रजिस्टर्ड होना चाहिये था* और जहां पर कि उसके वली की ऐसी अनुमति प्राप्त की जा चुकी है, तब वह (रजिस्ट्रार) ऐसे विवाह का एक सर्टिफिकेट "हिन्दू शास्त्रीय विवाह रजिस्टर" में ऐसी रीति अनुसार दाखिल करेगा जैसा कि छठे परिशिष्ट में जिक्र किया गया है तथा ऐसा सर्टिफिकेट दोनों पक्षों तथा उसी प्रकार तीन गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किया जायगा।

(३) उपधारा (२) में वर्णित किसी भी सर्टिफिकेट के दाखिल हो जाने पर तमाम उद्देश्यों के लिए वह विवाह जायज विचारा जायेगा और ऐसा शास्त्रीय विवाह सम्पूर्ण होने की तारीख के बाद पैदा हुए तमाम बच्चे (जिनके नाम भी सर्टिफिकेट में और हिन्दू शास्त्रीय विवाह रजिस्टर में दर्ज होंगे) समस्त मामलों में अपने माता-पिता के जायज बच्चे विचारे जायेंगे और सदा के लिये विचारे जाया करेंगे।

(४) ऐसे विवाह में कोई भी पक्ष इस धारा के आधीन पास हुए किसी आर्डर द्वारा पीड़ित होने की हालत में उस जिला अदालत में जिसके कि अधिकार क्षेत्र की सीमा में वह रजिस्ट्रार अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा है, अपील कर सकेगा और ऐसी अपील पर उस जिला अदालत द्वारा दिया निर्णय अन्तिम निर्णय माना जायेगा।

२२. विवाह सम्बन्धी रेकार्डों का निरीक्षण के लिये खुला होना इत्यादि—

हिन्दू शास्त्रीय विवाह तथा हिन्दू सिविल मैरेज सर्टिफिकेट बुक समस्त उचित समयों पर प्रत्येक व्यक्ति के निरीक्षण करने के लिये खुली होगी तथा उनमें उल्लिखित वक्तव्य सचाई को ग्रहण करने योग्य गवाही होगी।

और रजिस्ट्रार को प्रार्थना पत्र देने पर तथा निर्धारित फीस अदा करने पर उनमें (दोनों पुस्तकों में) से प्रामाणिक सारांश प्राप्त हो सकेंगे।

२३. विवाह के रेकार्डों में अंकित उल्लेखों की नकलों को पैदायश, मौत तथा विवाह के जनरल रजिस्ट्रार के पास भेजना—

रजिस्ट्रार ऐसे तमाम इन्दराज को जोकि उसके द्वारा हिन्दू शास्त्रीय विवाह रजिस्टर तथा हिन्दू सिविल मैरेज सर्टिफिकेट बुक में अन्तिम वक्फे (interval) तक दर्ज किये जा चुके हैं, पैदायश, मौत तथा विवाह के उस प्रान्त के जनरल रजिस्ट्रार को जिसमें कि उस (रजिस्ट्रार) का अपना जिला स्थित है, ऐसे वक्फों पर जोकि निर्धारित किये जा चुके हैं, अपने द्वारा प्रमाणित करके भेजेगा।

२४. विवाह में वलीपन (Guardianship)—

चौथे भाग के विधानों के विषय में जहां पर कि विवाह में वली की अनुमति है तथा इस भाग के आधीन अनुमति लेना आवश्यक समझा जाता है, वहां पर ऐसा व्यक्ति ऐसी अनुमति देने के लिये हक रखेगा, जोकि निम्न क्रम में दिये हुए व्यक्तियों में से होगा :

(१) पिता।

(२) माता।

(३) दादा (पिता का बाप)।

(४) पूर्ण रक्त युक्त अथवा अर्धरक्त-युक्त भाई। किन्तु दोनों में पूर्ण रक्त-युक्त भाई को विशेषता (preference) दी जायेगी और पूर्ण रक्त-युक्त अथवा अर्ध रक्त-युक्त दोनों में से जो बड़ा होगा उसे विशेषता दी जायेगी।

(५) पूर्ण रक्त-युक्त चाचा तथा अर्धरक्त-युक्त चाचा में से विशेषता के विषय में ऊपर (४) मद में लिखे के अनुसार ही होगा।

(६) नाना (माता का बाप)।

(७) मामा (माता का भाई) परन्तु जहां तक विशेषता का विषय है मद (४) में लिखे के अनुसार ही होगा।

(८) किसी भी दूसरे रिश्तेदार को जो किसी दूर के रिश्तेदार की अपेक्षा नज़दीकी रिश्तेदार हैं विशेषता दी जायेगी और जहां पर कि नज़दीकी रिश्तेदार समानरूप में सम्बन्ति होंगे, वहां विषशेता ऊपर मद (४) में लिखे के अनुसार ही होगी।

व्याख्या—ऊपर लिखी मद (८) के लिये अथवा यह निश्चय करने के लिये कि नज़दीकी रिश्तेदार कौन होगा, उनमें से जो कोई भाग ७ में बेवसीयत उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार वार्ड (ward) की उत्तराधिकार योग्य

सम्पत्ति को विरासत में लेने का सबसे पहले अधिकार रखता है, वह नंजदीकी रिश्तेदार माना जायेगा।

(२) इस धारा के विधानों के आधीन तब तक कोई भी व्यक्ति वलीपन के कर्त्तव्यों को पालन करने का हक़ नहीं रखेगा जब तक कि वह (स्त्री अथवा पुरुष) स्वयं अपनी आयु का इक्कीसवां वर्ष पूरा नहीं कर सकेगा।

(३) जहां पर कि किसी विवाह में कोई ऐसा व्यक्ति जोकि ऊपर कहे विधानों के अनुसार वली होने का हकदार है, वलीपन के कर्त्तव्यों का पालन करने में इन्कार करता है या हाजिर न होने का अथवा अयोग्य होने का हेतु रखने पर अपना कर्त्तव्य पालन में असमर्थ है, वहां पर कथित क्रम में से क्रमशः उससे अगला व्यक्ति वलीपन का हक रखेगा।

(४) इस भाग में ऐसी कोई बात वर्णित नहीं है जो किसी अदालत के ऐसे अधिकार क्षेत्र पर प्रभावकारी हो सके, जो कि उसे चाहे गये विवाह के प्रबन्ध करने वाले वली को नाबालिग पक्ष के हित लाभ के बदले में विवाह रोकने के निमित्त दिया गया है।

२५. बहुविवाह और उसके लिये दण्ड—

कोई भी ऐसा व्यक्ति जो अपने पति अथवा पत्नी के जीवन-काल में जब कि उनका विवाह किसी समुचित अधिकार रखने वाली अदालत द्वारा खण्डित नहीं किया जा चुका है इस कोड के आरम्भ होने के बाद दूसरा विवाह कर लेता है वह ऐसे दण्डों के वशीभूत होगा जो कि इण्डियन पीनल कोड १८६० (१८६० का ४५) की धारा ४९४ और ४९५ में पत्नी अथवा पति के जीवित होने पर दूसरा विवाह करने के अपराध में व्यवस्थित किये गये हैं।

२६. बनावटी डिक्लेरेशन अथवा सर्टिफिकेट पर हस्ताक्षर करने पर दण्ड—

कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे डिक्लेरेशन को देने पर या सर्टिफिकेट पर हस्ताक्षर करने पर जो कि इस भाग के अधीन चाहा गया है और जो कि एक झूठे वक्तव्य पर अवलम्बित है, और जिसको कि वह जानता है या बनावटी होने के लिये विश्वास रखता है अथवा जिसके सच्चे होने पर उसे विश्वास नहीं है, वह एक ऐसे दोष का अपराधी हुआ विचारा जायगा जो कि इण्डियन पीनल कोड १८६० (१८६० का ४५) की धारा १९९ में निर्धारित किया गया।

२७. पहले विवाहों के सम्बन्ध में छूट—

ऐसा विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने से पहले दो हिन्दू पक्षों में

सम्पूर्ण हो चुका है और जो कि किसी दूसरे तौर पर जायज़ है वह नाजायज़ नहीं होगा और कभी भी केवल इस हेतु तथा हकीकत पर नाजायज़ नहीं विचारा जायगा कि दोनों पक्ष समान गोत्री थे अथवा समान प्रवर रखते थे अथवा भिन्न जाति अथवा समान जाति में से विभक्त, उपजाति से सम्बन्ध रखते थे।

अध्याय २

खण्डित तथा खण्डित होने योग्य विवाह

२८. खण्डित विवाह—

(१) कोई भी विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने से पहले सम्पूर्ण हो चुका है वह खण्डित होगा —

(अ) यदि उस विवाह के समय पर प्रचलित किसी भी कानून के विधानों के कारणों से ऐसा विवाह इस आधार पर नाजायज़ था कि उन दोनों पक्षों में कोई एक विवाह के समय पर अपना युगल (पति अथवा पत्नी) जीवित रखता था या

(इ) यदि दोनों पक्ष आपस में परस्पर ऐसे निषेधात्मक रिश्ते की कोटियों में सम्बन्धित थे जैसा कि धारा ४ के वाक्यखंड (इ) में व्याख्या की गई हैं।

किन्तु शर्त यह है कि उपधारा (१) के वाक्य खंड (इ) के विधानों के अधीन कोई भी ऐसा विवाह खण्डित नहीं विचारा जायगा यदि ऐसा विवाह सम्पूर्ण होने के समय पर उस समय प्रचलित कानून के विधानों के अधीन जायज़ था।

(२) कोई विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने के बाद सम्पूर्ण हुआ है खण्डित होगा—

(अ) यदि ऐसा विवाह शास्त्रीय विवाह होने के लिये अभिप्राय रखता था, और वह धारा ७ के वाक्य खण्ड (१), (४) और (५) में वर्णित शर्तों में से किसी शर्त को तोड़ चुका है।

(इ) यदि ऐसा विवाह सिविल मैरेज होने के लिये अभिप्राय रखता था और यह धारा १० के वाक्य खण्ड (१) और (४) में वर्णित शर्तों में से किसी शर्त को तोड़ चुका है।

किन्तु शर्त यह है कि ऐसे मामले में जो कि उपधारा (२) के वाक्यखण्ड (अ) में वर्णित है, धारा ७ के वाक्य खण्ड (५) में जिक्र हुई शर्त लागू नहीं

होगी, जबकि ऐसा विवाह सम्पूर्ण होने के पश्चात् किसी अदालत में ऐसे विवाह के परित्याग के प्रयोजयार्थ प्रार्थना पत्र देने से पहले धारा २१ के अधीन किसी समय पर भी बतौर सिविल मैरेज के रजिस्टर्ड हो चुका है।

२६. खण्डित होने योग्य विवाह—

(१) कोई भी ऐसा विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने से पहले सम्पूर्ण हो चुका है, वह इस दोष पर खण्डित होने योग्य होगा यदि विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक विवाह के समय जड़बुद्धि (idiot) अथवा पागल था।

(२) कोई भी ऐसा विवाह जोकि इस कोड के आरम्भ होने के बाद सम्पूर्ण हो चुका है वह खण्डित होने योग्य होगा—

(अ) यदि ऐसा विवाह शास्त्रीय विवाह होने के लिये अभिप्राय रखता था और वह धारा ७ के वाक्य खण्ड (२) (३) और (६) में वर्णित शर्तों में से किसी शर्त को तोड़ता है।

(इ) यदि ऐसा विवाह सिविल मैरेज होने के लिये अभिप्राय रखता है और वह धारा १० के वाक्य खण्ड (२) (३) और (६) में वर्णित शर्तों में से किसी शर्त को तोड़ता है।

किन्तु शर्त यह है कि जहां तक ऐसे विवाह में बल प्रयोग और धोखा नहीं किया गया एक शास्त्रीय विवाह सम्पूर्ण हो चुकने के बाद वह केवल मात्र इसी आधार पर नाजायज़ अथवा सदा के लिये नाजायज़ नहीं माना जायेगा कि ऐसे विवाह के लिये वधू के वली की अनुमति नहीं ली गई थी अथवा नहीं ली जा सकी थी।

(३) कोई भी ऐसा विवाह चाहे वह इस कोड के पहले अथवा बाद में सम्पूर्ण हो चुका है वह धारा ३० में वर्णित आधारों में किसी भी आधार पर खंडित होने योग्य होगा।

(४) जहां पर कि इस भाग के अधीन किसी प्रार्थना-पत्र को पेश करने के लिये समय की अवधि (सीमा) निर्धारित है, और उस निर्धारित्त अवधि (सीमा) में कोई प्रार्थना-पत्र नहीं दिया गया है, ऐसा विवाह जायज विचारा जायगा तथा समस्त प्रयोजनों में सदा के लिये जायज माना जाता रहेगा।

३०. विवाह खण्डित होने के लिये अन्य हेतु—

कोई ऐसा विवाह चाहे वह इस कोड के आरम्भ होने से पहले अथवा

बाद में सम्पूर्ण हो चुका है, निम्न अंकित आधारों में से किसी एक के कारण खत्म हो जायेगा—

(१) यदि ऐसे विवाह के समय पर और तब से लेकर लगातार इस सम्बन्ध की अदालती कार्यवाही के आरम्भ तक, विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक नपुंसक था।

(२) यदि पति किसी स्त्री को रखेली (concubine) के रूप में रख रहा है अथवा पत्नी किसी परपुरुष की रखेली बन कर रह रही है या वेश्या का जीवन व्यतीत कर रही है।

(३) यदि विवाह के दोनों पक्षों में से कोई पक्ष कोई दूसरा धर्म ग्रहण कर लेता है और हिन्दू धर्म को त्याग देता है।

(४) यदि विवाह के दोनों पक्षों में एक पक्ष असाध्य रूप में उन्मत्त या पागल है और ऐसे प्रार्थना-पत्र के देने के पहले निरन्तर पांच वर्ष के लिये उसका इलाज किया जा चुका है।

(५) यदि दोनों पक्षों में से कोई एक बड़े भयानक और असाध्य प्रकार के कुष्ठ (leprosy) से पीड़ा उठा रहा है।

अध्याय ३

दाम्पत्य अधिकारों का दिलवाना तथा विवाह का परित्याग

दाम्पत्य अधिकारों का दिलवाना

३१. दाम्पत्य अधिकारों को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना-पत्र—

जहां पर कि पति अथवा पत्नी किसी हेतु विशेष बगैर एक दूसरे के सहवास से जुदा हो चुके हैं उनमें से पीड़ित पक्ष दाम्पत्य अधिकारों को लेने के लिये एक प्रार्थना-पत्र के रूप में जिला अदालत को निवेदन करेगा, और अदालत प्रार्थना-पत्र में लिखे वक्तव्य की सचाई पर विश्वास करने पर तथा कोई ऐसा कानूनी आधार न देखने पर जो कि ऐसे प्रार्थना-पत्र पर विचार करने में प्रतिबन्ध लगाता हो, उसके अनुसार दाम्पत्य अधिकारों को दिलवाने का आर्डर पास करेगी।

३२. विवाह सम्बन्धी अधिकारों की प्राप्ति के लिये दिये प्रार्थना-पत्र के विषय में कानूनी कार्यवाही—

दाम्पत्य अधिकारों की प्राप्ति के लिये दिये ऐसे प्रार्थना-पत्र पर किसी प्रकार की सफाई के बयान पर बहस नहीं की जायेगी जो कि अदालती अलहदगी अथवा विवाह के परित्याग की डिग्री होने के लिये आधार भूमि नहीं होगा।

अदालती अलहदगी

३३. अदालती अलहदगी—

विवाह के दोनों पक्षों में से कोई भी व्यक्ति चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हो चुका है जिला अदालत को इस आधार पर अदालती अलहदगी की डिगरी प्राप्ति के लिये प्रार्थना करेगा कि दूसरा पक्ष—

(अ) प्रार्थी को एक ऐसे समय से छोड़ (Deserted) चुका है जिस की अवधि दो वर्ष से कम नहीं है अथवा

(इ) ऐसे ज़ुल्म या अत्याचार का दोषी हो चुका है कि जिस के फलस्वरूप प्रार्थी उक्त पक्ष के साथ रहने में भयभीत हो चुका है, अथवा

(उ) असाध्य सुजाक, आतशक व्याधि से पीडित हो रहा है जो कि प्रकट अवस्था में है तथा जोकि उसे प्रार्थी की ओर से नहीं लगी है, तथा इतने समय से वह इस व्याधि से पीड़ित है जिस की अवधि उस प्रार्थना-पत्र देने के सन्निहित काल से आरम्भ कर के एक वर्ष से कम नहीं है, अथवा

(ऋ) एक भयानक प्रकार के कुष्ट (leprsoy) से पीड़ित हो रहा है, अथवा

(ए) विवाह की तारीख से लेकर उसे लगातार स्वाभाविक पागल-पन हो चुका है, अथवा

(ओ) दाम्पत्य काल के दौरान में व्यभिचार कर चुका है।

व्याख्या:—इस धारा में "छोड़ना" (to desert) इस शब्द के वैय्याकरणिक अर्थ में व्यावहारिक तबदीली है, यह दूसरे व्यवहारों में सधातुज है, इस का तात्पर्य है विवाह के एक पक्ष को बिना किसी युक्तिसंगत हेतु के तथा बिना उक्त पक्ष की अनुमति अथवा अनुमति के प्रतिकूल आचरण करते हुए छोड़ देना।

३४. अदालत की आज्ञा बिना किसी भी विवाह का विच्छेद नहीं होगा—

इस भाग में किसी बात का वर्णन होने पर भी इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पश्चात् सम्पूर्ण हुआ कोई भी विवाह चाहे वह ऐसा विवाह

खण्डित है अथवा खण्डित होने के योग्य है, तब तक कानूनी तौर पर विच्छिन्न हुआ नहीं विचारा जायेगा जब तक कि उस पर किसी समुचित अदालत द्वारा यह घोषित करते हुए डिगरी नहीं दी जाती कि ऐसा विवाह या तो विवाह विच्छेद के लिये दिये प्रार्थना-पत्र पर खत्म किया गया है अथवा किसी भी अन्य ऐसी कानूनी कार्यवाही में समाप्त किया गया है, जिस में कि विवाह का जायज़पन विचारणीय विषय था।

३५. विच्छेद के लिये प्रार्थना-पत्र दायर करने के लिए साधिकार व्यक्ति—

(१) जहां पर कोई विवाह चाहे वह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हो चुका है, इस आधार पर विवाद का विषय बना है, कि ऐसा विवाह खण्डित विवाह है, अदालत द्वारा उस पर तब समाश्रत की जायेगी,

(१) जब कि विवाह के दोनों पक्षों में से किसी एक द्वारा विवाह विच्छेद के लिये प्रार्थना-पत्र पेश किया जायेगा, या

(२) जब कि किसी कानूनी कार्यवाही में किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा कोई हेतु (issue) उठाया गया है, जो कि ऐसे विवाह द्वारा प्रभावग्रस्त हो चुका है, अथवा उस में रुचि रखता है।

(२) जहां पर कि कोई विवाह, चाहे वह इस कोड के आरम्भ-काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हुआ है इस आधार पर विवादास्पद विषय (impugned) बना हुआ है कि ऐसा विवाह खण्डित होने योग्य विवाह है, वहां ऐसे विषय पर अदालत द्वारा तब तक कार्यवाही नहीं की जायगी, जब तक कि विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक ऐसी कार्यवाही चलाने के लिये निवेदन नहीं करता। किन्तु शर्त यह है कि दोनों पक्षों में कोई भी सहायता (रिलीफ) पाने के निमित्त अपने निजी अपराध अथवा अयोग्यता का लाभ उठाने के लिये हकदार नहीं होगा।

३६. विवाह का विच्छेद --

धारा ३५ के विधानों के विषय के सम्बन्ध में विवाह के दोनों पक्षों में से कोई भी एक किसी भी समय पर किसी भी ऐसे आधार पर जिला अदालत को विवाह-विच्छेद के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकेगा जोकि विवाह को खण्डित अथवा खण्डित होने योग्य विवाह ठहराता है।

(२) उपधारा (१) में कोई भी ऐसी बात नहीं है जोकि किसी अदालत

की किसी निम्नाङ्कित मामले में कोई डिगरी पास करने के लिये साधिकार बनाने के लिये विचारी गई होगी—

(१) किसी ऐसे मामले में जहां पर कि ऐसा विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ काल के पहले सम्पूर्ण हुआ था तथा जोकि विवाह सम्पूर्ण होने के समय पर निम्न आधार पर जायज विवाह था।

(अ) कि विवाह सम्पूर्ण होने के समय पर पुरुष पक्ष (male party) की पहली पत्नी जीवित थी, या

(इ) कि दोनों पक्ष आपस में, धारा ५ के वाक्यखण्ड (इ) द्वारा व्याख्या हुई निषेधात्मक रिश्ते की कोटियों के अन्तर्गत आते हैं।

(२) किसी खण्डित होने योग्य विवाह के मामले में चाहे वह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हुआ है, इस धारा पर कि विवाह के दोनों पक्षों में एक विवाह के समय पर जड़बुद्धि (idiot) अथवा पागल था अथवा उत्तर पक्ष (मुद्दाअलेह) विवाह के समय पर नपुंसक था और इस कानूनी कार्यवाही के आरम्भ काल तक लगातार नपुंसक चला आ रहा है, ऐसी स्थिति में जब तक कि ऐसा विवाह सम्पूर्ण हो चुकने के बाद तीन वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद होने के लिये प्रार्थना-पत्र उपस्थित नहीं किया जा चुका है, अथवा ऐसे मामले में जहां पर कि विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले सम्पूर्ण हो चुका है, ऐसे आरम्भ काल के पश्चात् दो वर्ष के भीतर विवाह विच्छेद के लिये प्रार्थना पत्र उपस्थित नहीं किया गया है। अथवा

(३) किसी खण्डित होने योग्य विवाह के मामले में चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हुआ है इस आधार पर कि प्रार्थी की अनुमति अथवा जहां पर कि वर अथवा वधू में से किसी के वली की अनुमति बलप्रयोग द्वारा अथवा धोखावश प्राप्त की गई थी, ऐसी स्थिति में जब तक कि विवाह-विच्छेद के लिये दिया ऐसा प्रार्थना पत्र, उक्त बल प्रयोग समाप्त हुए अथवा उक्त धोखा प्रकट हो चुकने पर उस के पश्चात् एक वर्ष के भीतर नहीं दायर किया गया है। किन्तु शर्त यह है कि अदालत ऐसे प्रार्थना-पत्र को रद्द कर देगी यदि—

(अ) किसी ऐसे खण्डित होने योग्य विवाह के मामले में जो कि इस कोड के आरम्भ काल से पहले सम्पूर्ण हुआ था, जब कि उक्त बल प्रयोग इस कोड के आरम्भ होने से पहले ही प्रभाव शून्य हो चुका था, या उक्त धोखा प्रकट किया जा चुका था तथा विवाह सम्बन्धी विच्छेद के लिये प्रार्थना-पत्र इस कोड के

आरम्भ काल के बाद एक वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् दायर किया गया था, अथवा

(इ) प्रार्थी उक्त बल प्रयोग के प्रभाव शून्य हो चुकने पर अथवा मामले के अनुसार उक्त धोखा प्रकट हो चुकने पर उस के बाद अपने युगल की स्वतन्त्र अनुमति के साथ पति-पत्नी के रूप में रहता था ।

३७. विवाह के व्यर्थ घोषित हो जाने पर उसका प्रभाव—

जहां पर कि कोई विवाह इस आधार पर खत्म हो चुका है कि वह एक खण्डित विवाह है या जहां पर कि कोई विवाह खण्डित घोषित किया जा चुका है, ऐसा विवाह "व्यर्थ" सिद्ध हुआ विचारा जा चुका होगा तथा ऐसे विवाह से पैदा हुआ कोई भी बच्चा नाजायज विचारा जायेगा तथा सदा के लिये नाजायज हो चुकेगा, किन्तु शर्त यह है कि यदि कोई विवाह इस आधार पर खत्म अथवा खण्डित हो चुका घोषित किया जा चुका है कि पहला पति अथवा पत्नी जीवित थे, तथा यदि ऐसा निर्णय किया गया है कि बाद में हुआ विवाह नेकनीयती (शुभ भावना) को लक्ष्य रख कर सम्पूर्ण हुआ था और ऐसे विवाह के दोनों पक्ष अथवा एक पक्ष पूर्ण विश्वास रखता था, कि उसकी पहली पत्नी अथवा पति मर चुका था, ऐसे विवाह में डिगरी देने से पहले पैदा हुए बच्चे डिगरी में जिक्र किये जायेंगे तथा वह प्रत्येक बात में अपने माता-पिता के जायज बच्चे विचारे जायेंगे तथा सदा के लिए जायज बच्चे विचार किये जाते रहेंगे ।

(२) जहां पर कि कोई विवाह किसी भी ऐसे आधार पर विच्छेद हो चुका है जो कि धारा २६ और ३० में जिक्र किये गये हैं, उस में से पैदा हुए बच्चों में से कोई भी तमाम बातों में अपने माता-पिता का जायज बच्चा माना जायेगा तथा सदा के लिये विचारा या माना जाया करेगा तथा ऐसे बच्चों के नाम डिगरी में ज़िक्र किये जायेंगे ।

३८. विवाह-विच्छेद के लिये अधिक हेतु—

विवाह के दोनों पक्षों में कोई भी एक पक्ष चाहे वह विवाह इस कोड के प्रारम्भ काल के पहले अथवा बाद में सम्पूर्ण हुआ है, यह निवेदन करता हुआ जिला अदालत में एक प्रार्थना-पत्र उपस्थित करेगा कि उस (स्त्री या पुरुष) का विवाह इस आधार पर विच्छेद किया जाये, क्योंकि दूसरा पक्ष—

(अ) अदालती अलहदगी की डिगरी अथवा आर्डर पास हो चुकने

के पश्चात् दो अथवा दो वर्ष से ऊपर तक के काल के लिये दाम्पत्य समागम (marital intercourse) नहीं कर चुका है, अथवा

(इ) उत्तरपक्षी (मुद्दाअलेह) दाम्पत्य अधिकारों के देने के लिये हुई डिगरी को दो वर्ष अथवा दो वर्ष से ऊपर तक के काल के लिये पूरा करने में असफल हो चुका है।

अधिकार क्षेत्र तथा कानूनी कार्यवाही

३६. इस भाग के अधीन सहायता देने के लिये अधिकारों का विस्तार—

इस भाग में कोई भी ऐसी बात नहीं है जो कि किसी भी अदालत को साधिकार करेगी।

(अ) विवाह विच्छेद की डिगरी देने के लिये—

(१) किसी ऐसे खण्डित विवाह के मामले में अथवा ऐसे खण्डित होने योग्य विवाह के मामले में जोकि धारा ७ के वाक्यखण्ड (२) अथवा धारा १० के वाक्यखण्ड (२) के विधानों को तोड़ता है, या जोकि इस आधार पर परित्यक्त हो सकता है कि विवाह के समय पर विवाह का एक पक्ष नपुसंक था तथा इसके विषय में दावा दायर करने तक लगातार नपुसंक चला आ रहा है, ऐसी स्थिति में तब तक, जब तक कि ऐसा विवाह किसी प्रान्त में सम्पूर्ण नहीं हो चुका है और प्रार्थी ऐसा प्रार्थनापत्र उपस्थित करने के समय पर उस प्रान्त का निवासी नहीं है, अथवा

(२) ऐसे खण्डित होने योग्य विवाह के मामले में जोकि इस धारा के वाक्य खण्ड (अ) के उपवाक्य खण्ड (१) के अन्तर्गत नहीं आता है, जब तक विवाह के दोनों पक्ष विवाह-विच्छेद के लिये पेश किये प्रार्थना-पत्र के समय पर इस प्रान्त के अधिवासी (domiciled) नहीं है तब तक, अथवा

(इ) इस भाग के अधीन किसी प्रकार की भी सहायता देने के लिये जोकि विवाह-विच्छेद की डिगरी से भिन्न रूप में है, सिवाय इसके जहां पर कि प्रार्थी ऐसे प्रार्थना-पत्र को पेश करते समय उसी ही प्रान्त में निवास कर रहा है।

४०. जहां पर प्रार्थना-पत्र देना होगा वह अदालत—

इस भाग के अधीन प्रत्येक प्रार्थना-पत्र उस जिला अदालत में दिया जायेगा, जिसकी सामान्य मौलिक-अधिकार क्षेत्र की मुकामी सीमा में पति और पत्नी इकट्ठे रहते हैं अथवा विच्छेद से पहले अन्तिम समय तक रह चुके हैं।

४१. प्रार्थना-पत्र के विषय तथा प्रामाणिकता—

(१) इस भाग के अधीन उपस्थित किया प्रत्येक प्रार्थना-पत्र प्रत्येक मामले के प्रकार को, जैसा कि वह होगा ऐसे तथ्यों पर जिन पर कि सहायता देने का दावा आधारित है, पृथक् रूप में बयान करेगा तथा प्रत्येक प्रार्थना-पत्र जो कि विवाह-विच्छेद की डिगरी के लिये या अदालती अलहदगी के लिये दिया गया है, बयान करेगा कि प्रार्थी और विवाह के दूसरे पक्ष में आपस में साजिश (collusion) नहीं है।

४२. सिविल प्रोसीजर कोड की प्रभावकारिता—

इस भाग में लिखित दूसरे विधानों के विषय में विवाह के दोनों पक्षों के मध्य में होने वाली कानूनी कार्यवाही जहां तक हो सकेगी, कोड आफ सिविल प्रोसीजर १९०८ (१९०८ का ५) द्वारा नियमित की जायगी।

४३. कानूनी कार्यवाही के सम्बन्ध में डिगरी—

किसी भी प्रार्थना-पत्र में जो कि इस भाग के अधीन दिया गया है, चाहे उस पर सफाई दी गई है अथवा नहीं, यदि अदालत को विश्वास हो जाता है कि सहायता देने वाले आधारों में कोई एक आधार मौजूद है, और ऐसा प्रार्थना-पत्र मुद्दाअलेह (प्रतिपक्षी) के साथ वैर भाव के कारण उपस्थित अथवा दायर नहीं किया गया है, और जो व्यभिचार का दूषण लगाया गया है, यदि कोई है, ऐसा व्यभिचार न तो प्रार्थी की इच्छा से किया गया था और न ही उस द्वारा वह क्षमा किया जा चुका था ऐसी अवस्था में इसके अनुसार अदालत ऐसी सहायता के लिये डिगरी देगी।

४४. जिला जज द्वारा विवाह समाप्ति के लिये दी डिगरी को पक्का करना—

(१) विवाह समाप्ति सम्बन्धी प्रत्येक डिगरी जो कि जिला जज द्वारा दी गई है, वह हाईकोर्ट द्वारा पक्का होने का विषय होगी।

(२) यदि हाईकोर्ट उस पर अधिक जांच करना अथवा अन्य गवाही लेना आवश्यक समझेगा तो वह ऐसी अधिक जांच करने अथवा अन्य गवाही लेने के लिये हिदायत देगा।

(३) ऐसी अधिक जांच अथवा अन्य गवाही का परिणाम हाईकोर्ट के लिये जिला जज द्वारा प्रमाणित किया जायेगा, और उस के बाद हाईकोर्ट विवाह-विच्छेद सम्बन्धी ऐसी डिगरी को पक्का करता हुआ आर्डर देगा अथवा कोई दूसरा ऐसा आर्डर देगा जो कि उसे देना उचित प्रतीत होगा।

४५. विवाह-विच्छेद के अभियोग का खर्च देना—

जहां पर कि इस भाग के अधीन कानूनी कार्यवाही में अदालत को प्रतीत होता है कि पत्नी अपनी ऐसी स्वतन्त्र आमदनी नहीं रखती जो कि उस के गुजारा के लिये और कानूनी कार्य्यवाही के आवश्यक खर्च के लिये पर्याप्त मात्रा में है, ऐसी स्थिति में अदालत पत्नी के प्रार्थना पत्र पर उस के पति को मुकद्दमा के खर्च को अदा करने के लिये, और ऐसे मुकद्दमा के दौरान में मासिक रूप में उतनी रक़म अदा करने के लिये आर्डर देगी जो कि उस की खालिस मासिक आमदनी के पांचवें भाग से अधिक नहीं होगी तथा जो कि अदालत को ठीक प्रतीत होगी।

४६. विवाह-समाप्ति पर स्थायी भरण-पोषण (गुजारा)—

(१) कोई भी अदालत इस भाग के अधीन अपने अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करती हुई कोई डिगरी पास करने के समय पर अथवा उसके बाद इस प्रयोजन के लिये दिये प्रार्थना-पत्र पर आर्डर देगी कि पति, जब कि पत्नी पतिव्रता (chaste) और अविवाहित रह रही है, पत्नी के जीवन-निर्वाह तथा सहायता के लिये, (यदि जरूरी है तो) अपनी (पति की) सम्पत्ति या जायदाद में से कुछ इकट्ठी रकम, अथवा मासिक रूप में या सामयिक रूप में पत्नी की जायदाद को और अपनी जायदाद को ध्यान में रखते हुये पत्नी के जीवन-काल के लिये सुरक्षित कर देगा, और उन दोनों का यह आचरण कानूनसंगत विचारा जायेगा।

(२) यदि अदालत को उपधारा (१) के अधीन आर्डर देने के बाद किसी समय पर भी तसल्ली हो जाती है कि दोनों पक्षों की स्थितियों में परिवर्त्तन हो चुका है वह (अदालत) दोनों पक्षों में से किसी एक की प्रार्थना पर उस आर्डर को ऐसे ढंग पर तबदील, सुधार अथवा रद्द कर सकेगी जो कि उस को न्यायसंगत प्रतीत होगा,

(३) यदि अदालत को तसल्ली हो जाती है कि ऐसी पत्नी जिस के पक्ष में उपधारा (१) और (२) के अधीन आर्डर दिया जा चुका है वह पुनर्विवाह कर चुकी है अथवा पतिव्रता नहीं रही है, तब वह उस आर्डर को तबदील अथवा रद्द कर देगी।

४७. बच्चों का संरक्षण—

इस भाग के अधीन की जाने वाली किसी भी कार्यवाही के दौरान में,

अदालत समय समय पर ऐसी अन्तःकालीन आज्ञायें जारी कर सकती है, और डिगरी में ऐसे आदेश दर्ज कर सकती है, जो कि नाबालिग बच्चों के संरक्षण, भरण-पोषण और शिक्षण के सम्बन्ध में उस द्वारा न्यायानुकूल और उचित विचारे जाते हैं; और यह आज्ञायें एवं आदेश, जहां पर सम्भव हो सकेगा वहां पर, उन बालकों की इच्छानुसार जारी किये जाएंगे तथा उक्त अदालत, डिगरी के बाद, यदि इस प्रयोजनार्थ कोई प्रार्थना की जाएगी तो, बच्चों के संरक्षण भरण-पोषण और शिक्षण के सम्बन्ध में जारी किये गए ऐसे सकल आदेश, और विधान, जो कि ऐसी डिगरी या अन्तःकालीन आज्ञाओं द्वारा बनाये जाते यदि ऐसी डिगरी प्राप्त करने के उद्देश्यार्थ की गई कार्यवाही उस वक्त तक विचाराधीन होती, समय समय पर, जारी, खण्डित, निषेध और परिवर्तित कर सकती है।

४८. अभियोग बन्द द्वारों के भीतर सुने जाएंगे—

इस भाग के अधीन की जाने वाली कार्यवाही किसी एक पक्ष के कहने पर, अथवा यदि ऐसा करना अदालत द्वारा उचित विचारा जाएगा तो, बन्द द्वारों के भीतर सुनी जाएगी।

४९. आर्डरों तथा डिगरियों का प्रभावकारी होना तथा उन पर अपील दायर करना—

इस भाग के अधीन की जाने वाली किसी भी कार्यवाही में अदालत द्वारा की हुई समस्त डिगरियां और आज्ञायें इसी प्रकार प्रभावकारी होंगी जिस प्रकार कि असली दीवानी अधिकार के प्रयोग अधीन अदालत द्वारा डिगरियाँ और आज्ञायें प्रभावकारी होती हैं और इनके सम्बन्ध में अपीलें उस समय प्रवर्त्तमान कानून के अधीन दायर की जाएंगी :

बशर्ते-कि—

(अ) जिला अदालत की ऐसी डिगरी के खिलाफ, जो कि विवाह विच्छेद के बारे में है, अथवा हाई कोर्ट के ऐसे आर्डर के खिलाफ, जो कि ऐसी डिगरी को स्वीकार करता है अथवा स्वीकार नहीं करता, कोई अपील नहीं होगी।

(इ) सिर्फ खर्च के विषय पर कोई अपील नहीं होगी।

५०. दोनों पक्षों को पुनर्विवाह की स्वतन्त्रता—

जब ज़िला जज द्वारा प्रदत्त विवाह-विच्छेद की डिगरी को स्वीकार करते हुए हाई कोर्ट ने आर्डर जारी कर दिया होगा और इस आर्डर को जारी होने

की तारीख के बाद छः महीनों की अवधि समाप्त हो चुकी होगी।

अथवा जब विवाह-विच्छेद के बारे में हाई कोर्ट द्वारा जारी शुदा डिगरी की तारीख के बाद छः मास की अवधि समाप्त हो चुकी हो पर उक्त डिगरी के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई हो।

अथवा जब ऐसी कोई अपील खारिज की गई हो या ऐसी किसी अपील के परिणामरूप किसी विवाह का विच्छेद हो चुका हो, तब, उस हालत में विवाह से परस्पर सम्बन्ध रखने वाले पक्षों के लिये पुनर्विवाह करना कानून की दृष्टि से जायज होगा गोया कि प्रथम विवाह का मृत्यु द्वारा ही विच्छेद हो चुका था।

५१. अपवाद (छूट)--

(१) इस भाग में किसी भी ऐसी बात का जिक्र नहीं है, जो कि मदरास मरुमक्कतायम् ऐक्ट १९३२, (The Madras Marumakkattayam Act, 1932) द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार पर शास्त्रीय विवाह-विच्छेद करने के लिये प्रभावकारी हो सके, चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल के पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हुआ है।

(२) इस भाग में किसी भी ऐसी बात का जिक्र नहीं है जो कि उस काल में प्रचलित किसी दूसरे कानून के अधीन, विवाह-विच्छेद अथवा विवाह को व्यर्थ सिद्ध करने के लिये या विवाह सम्बन्धी अदालती अलहदगी के लिये इस कोड के आरम्भ होने के समय पर विचाराधीन (Pending) पड़ी कानूनी कार्यवाही पर प्रभावकारी हो सके, और ऐसी कोई भी कार्यवाही लगातार जारी रहेगी और निर्णय दी जायेगी, ऐसे मामले में गोयाकि यह कोड पास नहीं हो चुका है।

भाग ३ : गोद लेना (Adoption)

अध्याय १

सामान्यत: गोद लेना

५२. इस भाग का उल्लंघन करके गोद लेने का निषेध—

(१) इस कोड के आरम्भ काल के बाद किसी हिन्दू पुरुष द्वारा स्वयं अथवा उस के निमित्त गोद लेने का कार्य नहीं किया जायेगा किन्तु गोद लेने की ऐसी क्रिया जोकि इस भाग में वर्णन हुए विधानों के अनुसार है; वह अपवाद होगी।

(२) धारा ६६ की उपधारा (२) में निर्दिष्ट मामले को छोड़ कर गोद लेने की ऐसी कोई क्रिया जो इस भाग के विधानों का उल्लंघन करती है, वह खण्डित होगी।

(३) गोद लेने की ऐसी क्रिया जो कि खण्डित (void) है वह किसी व्यक्ति के पक्ष में न तो गोद लेने वाले परिवार में कोई अधिकार उत्पन्न करेगी और न ही किसी ऐसे व्यक्ति के जन्म देने वाले परिवार में प्राप्त अधिकारों का नाश करेगी किन्तु ऐसा व्यक्ति जिन अधिकारों को गोद लेने की क्रिया के हेतुओं के आधार द्वारा प्राप्त कर चुका होगा वह इस का अपवाद है।

५३. जायज गोद लेने की अनिवार्यता—

तब तक कोई भी गोद लेना जायज नहीं होगा जब तक कि—

(१) गोद लेने वाला व्यक्ति योग्यता नहीं रखता है तथा इस के साथ ही

गोद लेने का अधिकार नहीं रखता है।

(२) गोद लेने वाला व्यक्ति ऐसा करने के लिये योग्यता नहीं रखता है।

(३) गोद लिया जाने वाला व्यक्ति गोद लिये जाने के योग्य नहीं है।

(४) गोद लेने की क्रिया शरीर को देने और लेने के विषय में सम्पूर्ण नहीं की जा चुकी है, और

(५) गोद लेने की क्रिया ऐसी अन्य शर्तों को पूरी नहीं कर चुकी है जो कि इस भाग में वर्णित हैं।

गोद लेने के विषय में योग्यता

५४. गोद लेने के विषय में एक हिन्दू पुरुष की योग्यता—

कोई भी ऐसा हिन्दू पुरुष जिस के होश व हवास (स्वस्थ मानसिक अवस्था) कायम हैं और अपनी आयु के अठारह वर्ष पूरे कर चुका है, वह पुत्र गोद लेने की योग्यता रखता है।

किन्तु शर्त यह है कि कोई भी हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी की अनुमति ग्रहण किये बिना गोद नहीं लेगा और यदि वह एक से अधिक पत्नियां रखता है तब उन पत्नियों में से कम से कम एक पत्नी की अनुमति लेगा, किन्तु ऐसा तब होगा जब कि उस की एक पत्नी अथवा मामला अनुसार सब पत्नियां ऐसी अनुमति देने के अयोग्य न होंगी।

व्याख्या—इस धारा के प्रयोजन के लिये कोई पत्नी ऐसी अनुमति देने के अयोग्य तब मानी जायेगी, जबकि उसकी मानसिक स्थिति स्वस्थ नहीं है अथवा अपनी आयु के अठारहवें वर्ष को पूरा नहीं कर चुकी है।

५५. गोद लेने में एक विधवा की योग्यता—

(१) कोई भी ऐसी हिंदू विधवा जिसकी मानसिक अवस्था स्वस्थ है तथा जो अपनी आयु के अठारह वर्ष पूरे कर चुकी है वह अपने पति के लिये एक पुत्र गोद लेने के लिये योग्य होगी, किंतु शर्त यह है कि

(अ) उसका पति उसे गोद लेने के लिये स्पष्ट या सूचित रूप में मनाही न कर गया हो, तथा

(इ) उस (विधवा) के गोद लेने के अधिकार समाप्त न हो चुके हों।

(२) उपधारा (१) में किसी भी ऐसी बात का वर्णन नहीं है जोकि किसी विधवा को जिस ने कि अपनी आयु के अठारह वर्ष पूरे नहीं

किये हैं ऐसे लड़के को गोद लेने से वंचित कर सके जिसका कि नाम उसके पति द्वारा उस (विधवा) को किसी भी ऐसी अधिकार-सत्ता के रूप में प्रदान किया गया है जो कि निम्न में व्यवस्थित हैं।

५६. गोद लेने के मामले में प्रामाणिकसत्ता या निषेध—

(१) कोई भी ऐसा हिंदू पुरुष जो कि पूर्वोक्त कहे के अनुसार एक पुत्र गोद लेने की योग्यता रखता है, उसे अधिकार प्राप्त होगा कि वह अपनी मृत्यु के पश्चात् पुत्र गोद लेने के लिये अथवा गोद न लेने के लिये अपनी पत्नी को साधिकार कर सके।

(२) जहाँ पर कि एक पत्नी की बजाय बहुत पत्नियाँ हैं वहाँ पर उक्त अधिकारसत्ता अथवा निषेध, उन सब को अथवा उन में से किसी एक को देगा।

(३) जहाँ पर कि कोई हिन्दू दो अथवा अधिक विधवायें छोड़ गया है और उन में से एक या अधिक को पुत्र गोदी लेने के लिये साधिकार कर गया है, वहाँ पर माना जायगा कि वह शेष को गोदी लेने के लिये निषेध कर गया है।

५७. प्रामाणिक सत्ता देने अथवा निषेध लागू कर देने की रीति या उनका रद्द करना—

(१) तब तक गोदी लेने तथा इसके निषेध की कोई भी प्रामाणिक सत्ता (Authority) जायज नहीं होगी, जब तक कि वह (प्रामाणिक सत्ता) इण्डियन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, १९०८ (१९०८ का १६) के अधीन रजिस्टर्ड लेख द्वारा नहीं दी जाती अथवा इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट, १९२५ (१९२५ का ३९) की धारा ६३ के विधानों के अनुसार की गई वसीयत द्वारा लागू नहीं की जाती।

(२) कोई भी ऐसी प्रामाणिकसत्ता अथवा निषेध जो कि इस भांति दी गई या लगाया गया है, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वह या तो एक रजिस्टर्ड लेख द्वारा या की गई वसीयत द्वारा खण्डित हो जायेगी या जायेगा।

(३) यदि कोई प्रामाणिक सत्ता या निषेध किसी वसीयत द्वारा दी गई या लगाया गया है, वह भी इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट, १९२५ (१९२५ का ३९) जैसा कि वह उस ऐक्ट के शेड्यूल २ द्वारा सुधारा गया है, की धारा ७० में अंकित की रीतियों में से किसी एक में खण्डित हो जायेगी या जायेगा।

५८. दो अथवा अधिक विधवाओं में से गोद लेने के लिये अधिकार—

जहाँ पर कि एक हिन्दू दो या अधिक विधवाओं को पुत्र गोद-लेने की क्षमता में छोड़ गया है, उन में गोद लेने का अधिकार निम्नांकित विधानों के अनुसार ही निर्णीत होगा—

(अ) यदि वह सब पत्नियों को अथवा उन में से किसी एक को गोद लेने के लिये क्रम विशेषता (तर्जीह) का संकेत करता हुआ प्रामाणिक सत्ता दे गया है तब गोद लेने का अधिकारक्रम उस का अनुकरण करेगा।

(इ) यदि वह ऐसा संकेत नहीं कर गया होगा तो गोद लेने का अधिकार क्रमशः उन विधवाओं में से सब से मुख्य को प्राप्त होगा, ऐसी मुख्यता जो कि धारा ५६ द्वारा निर्धारित की गई है।

(उ) यदि वह न तो गोद लेने के लिये अधिकार दे गया है और न ही निषेध कर गया है तब गोद लेने का अधिकार क्रमशः विधवाओं में से मुख्य विधवा को होगा, ऐसी मुख्यता जो कि धारा ५६ द्वारा निर्धारित की गई है।

(ऋ) एक ऐसी विधवा जो कि वाक्य खण्ड (इ) और वाक्यखण्ड (उ) के अधीन गोद लेने का अधिकार रखती है, वह एक रजिस्टर्ड लेख द्वारा अपने अधिकार को अपने से अगली मुख्य विधवा के पक्ष में छोड़ सकेगी और यदि वह ऐसे अधिकार को इस भाँति नहीं छोड़ती है और यदि वह किसी न्याय युक्त हेतु के बिना अपने गोद लेने के अधिकार को पूरा करने के लिये इन्कार करती है, और उस समय में जो कि उस से गौण विधवा या किसी दूसरी विधवा द्वारा इस कार्य सम्पादन के लिये उसे दिया गया है, अपने अधिकार का प्रयोग करने में असफल रहती है तब ऐसा अधिकार उस से अगली मुख्य विधवा को मिल जायेगा और इसी प्रकार मुख्यता का क्रम अन्तिम विधवा तक पहुँच जायेगा।

५६. पत्नियों और विधवाओं में मुख्यता—

इस भाग के प्रयोजनों के लिये किसी व्यक्ति की पत्नियों और विधवाओं में से मुख्यता उस क्रम द्वारा निर्धारित की गई है, जिस क्रम से उस ने उन्हें विवाहा था, उन में से जिस को उसने पहले विवाहा था, वह बाद में ब्याही जाने वालियों में से मुख्य होगी।

६०. विधवा का गोद लेने का अधिकार पहले प्रयोग द्वारा ही समाप्त नहीं होगा—

इस भाग के विधानों के अधीन, एक विधवा गोद लेने के विषय में पहले पुत्र के मरने के बाद दूसरे पुत्र को इसी प्रकार आगे तब तक गोद ले सकेगी जब तक कि कोई ऐसी अधिकारसत्ता यदि कोई है तो जो कि उसके पति द्वारा उसे प्रदान की गई है, दूसरे रूप में उसे ऐसा करने में मना नहीं करती।

६१. विधवा के अधिकार की समाप्ति—

(१) एक विधवा का गोद लेने का अधिकार समाप्त हो जाता है—

(अ) जब कि वह पुनर्विवाह कर लेती है, अथवा

(इ) जब कि उसके पति का हिन्दू पुत्र मर जाता है और अपने पीछे कोई हिन्दू पुत्र, विधवा अथवा पुत्र की विधवा छोड़ जाता है, या

(उ) वह (विधवा) हिन्दू धर्म को त्याग देती है।

व्याख्याः—इस उपधारा में पुत्र से तात्पर्य है, कोई पुत्र, पुत्र का पुत्र या पुत्र के पुत्र का पुत्र चाहे वह रक्तसम्बन्ध से है अथवा गोद लेने के सम्बन्ध से।

(२) विधवा का गोद लेने का अधिकार एक बार समाप्त हो जाने के बाद दोबारा वापस नहीं मिलेगा।

गोद देने की योग्यता

६२. गोद देने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति—

(१) बच्चे के माता-पिता को छोड़ कर दूसरे किसी व्यक्ति में बच्चा गोद देने की योग्यता नहीं होगी।

(२) उपधारा (३) के वाक्य खण्ड (इ) और (उ) के विधानों के विषय अधीन यदि पिता जीवित है तो केवल वही बच्चे को गोद देगा, किन्तु ऐसा अधिकार बच्चे के माता-पिता की अनुमति की उपेक्षा नहीं करेगा जहां पर कि माता ऐसी अनुमति या स्वीकृति की योग्यता रखती है।

(३) माता बच्चे को गोद दे सकेगी—

(अ) यदि बच्चे का पिता मर चुका है,

(इ) यदि वह पूर्णतया और अन्तिम तौर पर किसी ऐसी रीति अनुसार संसार को त्याग चुका है जो कि भाग ७ की धारा ११० की उपधारा (१) में अंकित है।

(उ) यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है, अथवा

(ऋ) यदि वह अनुमति या स्वीकृति देने के अयोग्य है :

किन्तु शर्त यह है कि पिता ऐसा करने के लिये इण्डियन रजिस्ट्रेशन एक्ट, १९०८ (१९०८ का १६) के अधीन रजिस्टर्ड किसी लेख द्वारा अथवा इण्डियन सक्सेशन एक्ट, १९२५ (१९२५ का ३९) की धारा ६२ के विधानों के अनुसार की गई वसीयत द्वारा निषेध नहीं कर चुका है।

(४) माता या पिता को बच्चे को गोद देने के अवसर पर मानसिक रूप में स्वस्थ और अपनी आयु के अठारह वर्ष समाप्त कर चुके होने चाहियें।

व्याख्या :—इस धारा के प्रयोजनों के लिये—

(१) "पिता" या "माता" इन शब्दों का प्रयोग गोद लेने वाले पिता और माता को अन्तर्गत नहीं करता, और

(२) कोई माता या पिता अनुमति देने में अयोग्य होंगे जब कि वह (माता या पिता) मानसिक रूप में अस्वस्थ है और अपनी आयु के अठारह वर्ष पूरे नहीं कर चुका है।

गोद लिये जाने की योग्यता

६३. गोद कौन लिया जा सकेगा—

(१) किसी भी हिन्दू पुरुष या स्त्री के लिये अथवा द्वारा स्त्रीलिङ्ग (लड़की) को गोद नहीं लिया जायेगा।

(२) कोई भी व्यक्ति तब तक गोद लिये जाये योग्य क्षमता नहीं रखेगा जब तक कि निम्नलिखित शर्तों के सम्बन्ध में तसल्ली नहीं हो जाती, जैसा कि—

(१) वह हिन्दू है

(२) वह विवाहित नहीं है,

(३) वह पहले से ही गोद नहीं लिया जा चुका है,

(४) वह अपनी आयु के पन्द्रह वर्ष पूरे नहीं कर चुका है,

६४. कुछ लोग गोद लिये जाने योग्य निर्धारित होंगे—

संदेह निवारण करने के लिये निम्न में निर्धारित व्यक्ति गोद लिये जाने योग्य स्वीकृत होंगे, यथा—

(१) अपने पिता का सब से बड़ा या इकलौता पुत्र,

(२) ऐसी स्त्री का पुत्र जिसको कि गोद लेने वाला पिता कानूनी तौर पर विवाह नहीं सकता था तथा विशेष तौर पर अपनी पुत्री का पुत्र, बहिन का पुत्र अथवा माता की बहिन का पुत्र, और

(३) कोई अज्ञात (अजनबी) या पराया, यद्यपि गोद लेने वाले पिता का नज़दीकी रिश्तेदार विद्यमान है।

जरूरी रस्मों का मनाना

६५. गोद लेने की प्रक्रिया की सम्पूर्णता—

गोद लेने का कोई भी कार्य तब तक जायज़ नहीं होगा, और न ही कानूनी बन्धन बनेगा, जब तक कि गोद लिया जाने वाला बच्चा तत्सम्बन्धित माता-पिता द्वारा शारीरिक तौर पर गोद नहीं दिया लिया जायेगा अथवा उन (तत्सम्बन्धित माता-पिता) की प्रामाणिक सत्ता के आधीन उस बालक की इच्छा के साथ वह (बालक) जन्म देने वाले परिवार से गोद लेने वाले परिवार में परिवर्त्तित नहीं होगा।

व्याख्या—दत्त होम (datta homam) क्रिया का करना किसी गोद लेने की क्रिया के जायज़पन के लिये आवश्यक नहीं है।

गोद लेने के लिये अन्य शर्तें

६६. अन्य शर्तें—

(१) प्रत्येक गोद लेने के कार्य में निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

जिसके द्वारा या जिसके निमित्त गोद लेने की क्रिया की जा रही है, ऐसे गोद लेने वाले पिता के गोद लेने के अवसर पर पुत्र, पुत्र का पुत्र या पुत्र के पुत्र का पुत्र (चाहे रक्तसम्बन्ध से अथवा गोद लेने के सम्बन्ध से) को जरूरी तौर पर जीवित नहीं होना चाहिए।

व्याख्या—एक ऐसा व्यक्ति जो कि गोद लेने के अवसर पर वास्तव में उत्पन्न नहीं हुआ है और माता के गर्भाशय में है, और ऐसा होने के बाद जीवित पैदा होता है, इस वाक्यखण्ड के प्रयोजन के लिये वह गोद लेने के अवसर पर जीवित है, ऐसा नहीं स्वीकार होगा।

(२) एक ही बच्चा दो अथवा अधिक व्यक्तियों के लिये या द्वारा एक ही समय पर गोद नहीं लिया जा सकेगा, तथा न ही दो अथवा अधिक बच्चे एक ही समय पर एक व्यक्ति के लिये अथवा द्वारा गोद लिये जा सकेंगे।

(३) प्रत्येक गोद लेने का कार्य गोद देने वाले तथा लेने वाले व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुमति द्वारा सम्पन्न होना जरूरी है।

(४) जहां पर कि गोद देने वाले या लेने वाले व्यक्ति की अनुमति बल-प्रयोग, अनुचित प्रभाव, धोखा, मिथ्यावाद अथवा गलती से ली जा चुकी है दोनों पक्षों में कोई भी एक पक्ष इस निर्णय के लिये दावा दायर कर सकेगा

कि गोद लेने की ऐसी क्रिया नाजायज़ है। किन्तु शर्त यह है कि अदालत ऐसे मुकद्दमा को खारिज कर देगी—

(अ) यदि उक्त बल-प्रयोग या अनुचित प्रभाव समाप्त हो चुकने पर, या धोखा या मिथ्यावाद या गलती के प्रकट हो चुकने पर दो वर्ष से भी अधिक काल गुज़र जाने के बाद मुकद्दमा दायर किया गया है, या

(इ) यदि वह व्यक्ति जिसकी कि अनुमति इस भांति ली जा चुकी थी, वह ऐसे बल-प्रयोग या अनुमति प्रभाव समाप्त हो चुकने के अथवा मामले के अनुसार धोखा, या मिथ्यावाद या गलती के प्रकट किये जा चुकने के बाद गोद लेने के ऐसे कार्य को स्वीकार कर चुका है और जहाँ पर उसकी ऐसी स्वीकृति दूसरे के हकों का विरोध नहीं करती है।

(२) जहाँ पर कि उपधारा (२) के वाक्य खण्ड (अ) में जिक्र की काल-सीमा के भीतर २ अभियोग दायर नहीं किया गया है अथवा जहाँ पर कि पूर्वोक्त उपधारा के वाक्य खण्ड (इ) के अधीन गोद लेने का कार्य्य स्वीकार किया जा चुका है, वहां पर यह कार्य जायज़ विचारा जायेगा और गोद लेने की तारीख से लेकर समस्त प्रयोजनों के लिये प्रभाव करने वाला होगा।

अध्याय ३

गोद लेने के प्रभाव

६७. गोद लेने के प्रभाव—

गोद लिया पुत्र (दत्तक) गोद लेने की तारीख से लेकर समस्त प्रयोजनों में अपने गोद लेने वाले पिता का पुत्र विचारा जायेगा और उस तारीख से उसके जन्मदाता परिवार में समस्त रिश्ते (सम्बन्ध) समाप्त समझे जायेंगे और गोद लेने के कार्य द्वारा गोद लेने वाले परिवार में उत्पन्न हुए रिश्तों के रूप में उसे परिवर्त्तित हो जायेंगे।

किन्तु शर्त यह है कि—

(अ) वह किसी ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह नहीं कर सकता जिस को कि वह जन्म देने वाले परिवार में लगातार रहने की अवस्था में नहीं विवाह सकता था।

(इ) कोई भी ऐसी जायदाद जोकि उसके गोद लिये जाने से पहले उस के अधिकार में पहुंचती थी, वह ऐसी शर्तों के अधीन (यदि कोई होगी तो) जो कि ऐसी जायदाद की मिलकियत पर

लागू होती है, उसे निरन्तर प्राप्त होगी, तथा उन शर्तों में उस के जन्म देने वाले परिवार से सम्बन्धित रिश्तेदारों को भरण-पोषण की शर्त भी सम्मिलित होगी।

(उ) गोद लिया पुत्र (दत्तक) किसी व्यक्ति की जायदाद के ऐसे अधिकार को जो कि उसे (स्त्री या पुरुष को) उस के गोद लेने के पहले अधिकार में मिल चुका है, उसे (ऐसी जायदाद को) नहीं छीनेगा, किन्तु जो जायदाद धारा ६८ में वर्णित रीति और विस्तार में है वह पूर्वोक्त का अपवाद है।

६८. गोद लिये द्वारा जायदाद से वञ्चित करना—

(१) जहां पर कि इस कोड के आरम्भ होने के बाद कोई विधवा गोद लेती है, उसके द्वारा गोद लिया पुत्र (दत्तक)—

(अ) उस विधवा या उस की सौत विधवाओं, यदि कोई है, द्वारा उस के गोद लेने वाले पिता के वारिस होने के रूप में, ऐसी जायदाद में से, जो कि उस गोद लेने के कार्य्य के पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी, उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी, उसका आधा भाग लेगा।

(इ) यदि गोद लेने का कार्य्य गोद लेने वाले पिता के पुत्र, पुत्र के पुत्र, पुत्र के पुत्र के पुत्र की मृत्यु के बाद किया गया है, तब उस जायदाद का आधा भाग लेगा जो कि उसको गोद लेने वाली माता या उसकी सौत विधवाओं, यदि कोई है, द्वारा गोद लेने वाले पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त की थी तथा इसके अतिरिक्त आधा भाग उस जायदाद का लेगा जो कि उसको गोद लेने वाली माता द्वारा अपने पुत्र, पुत्र के पुत्र या पुत्र के पुत्र के पुत्र के वारिस होने के रूप में उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी।

ऐसा भाग (शेयर) उस जायदाद में से निर्धारित होगा जोकि गोदी लेने के कार्य्य से पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी।

किन्तु शर्त यह है कि यदि उस (गोदी लेने वाली माता) या उन द्वारा (विधवाओं) उत्तराधिकार में पाई सारी जायदाद अथवा उसका कुछ भाग किसी रिवाज, प्रथा या किसी दान या कानून की शर्तों द्वारा अविभक्त (Impartible) है, तब गोद लिया पुत्र (दत्तक) ऐसी समस्त अविभक्त जायदाद को लेगा, जो कि गोद लेने की क्रिया से पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी, तथा इसके अतिरिक्त वह जायदाद भी लेगा जिस को वह आत्म

खण्ड (अ) अथवा वाक्य खण्ड (इ) के अधीन लेने के लिये हकदार है।

(२) उपधारा (१) के विधान कृषि सम्बन्धी भूमि के मामले में भारत के जिस किसी भी प्रांत में ऐसी भूमि होगी लागू होंगे।

६६. गोद लेने वाले माता-पिता का अपनी सम्पत्तियों को निवटाने का अधिकार —

किसी भी ऐसे एकरारनामा के विषयाधीन जो कि गोद लेने की क्रिया के विपरीत है कोई भी दत्तक (गोद लिया पुत्र) गोद लेने वाले माता या पिता को उसकी सम्पत्ति को उस के जीते हुए अथवा मृत्यु लेख (वसीयत) द्वारा हस्तकाल के अधिकार से वञ्चित नहीं कर सकता।

७०. रण्डुए द्वारा गोद लेने के मामले में, गोद लेने वाली माता (दत्तक माता) का निर्धारण—

(१) जहां पर कि कोई हिन्दू अपनी पत्नी के जीते हुए गोद लेता है, वह पत्नी दत्तक (गोद लेने वाली) माता विचार की जायेगी।

(२) जहां पर कि कोई हिन्दू एक से अधिक जीवित पत्नियां रखता है।

(१) वह पत्नी जिस के मेल अथवा जिसकी अनुमति से गोद लेता है, या

(२) यदि वह एक से अधिक पत्नियों के मेल या अनुमति द्वारा गोद लेता है तो उन सब में जो सब से पहले विवाही गई है, (मुख्यतम) वह गोदी लेने वाली माता विचार की जायेगी, तथा अन्य पत्नियां उसकी सौतेली मातायें होंगी।

(३) जहां पर कि कोई रण्डुआ अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद किसी भी समय में गोद लेता है, उस की वह पत्नी जो कि गोद लेने की क्रिया से पहले सन्निहित अन्तिम काल में मरी थी, वह गोद लिये पुत्र की माता विचारी जायेगी और कोई भी उससे पहले मरी अथवा गोद लेने की क्रिया के बाद विवाही पत्नी तब तक दत्तक की सौतेली माता विचारी जायेगी जब तक कि दत्तक पिता हिदायत नहीं दे चुका होगा अथवा स्पष्ट रूप में संकेत नहीं दे चुका है कि उन पत्नियों में कोई और दत्तक माता विचार की जाये, और ऐसे मामले में कोई भी पहले मरी पत्नी जो कि दत्तक माता नहीं है, तथा दत्तक पिता द्वारा बाद में विवाही पत्नी है, दत्तक पुत्र की सौतेली माता विचार की जायेगी।

(४) जहां पर की कोई कुंवारा (bachelor) गोद लेता है, उसके द्वारा बाद में विवाही पत्नी दत्तक पुत्र की सौतेली माता विचार की जायेगी।

७१. विधवा द्वारा गोद लेने के मामले में दत्तक माता का निर्धारण—

(१) जहां पर कि किसी मृत हिन्दू की बहुत विधवाओं में से कोई एक पुत्र गोद लेने का कार्य करती है, वह दत्तक माता विचारी जायेगी तथा अन्य विधवायें ऐसे दत्तक पुत्र की सौतेली मातायें विचार की जायेंगी।

(२) जहां पर कि दो अथवा अधिक विधवायें साझे रूप में गोद लेने का कार्य्य करती हैं, उन सब विधवाओं में सबसे पहले विवाहित विधवा दत्तक माता विचारी जायेगी और दूसरी अथवा अन्य विधवायें ऐसे दत्तक पुत्र की सौतेली मातायें विचार की जायेंगी।

७२. जायज गोद लिया रद नहीं होगा—

जायज़ रूप में गोद लिया (दत्तक किया किया) जा चुका, दत्तक-पिता दत्तक-माता या किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा रद नहीं हो सकेगा और न ही ऐसा दत्तक-पुत्र अपने गोद लिये स्थान (status) को त्याग कर जन्म-दाता परिवार में वापस आ सकता है।

७३. कुछ एकरारनामे रद हो जायेंगे—

गोद न लेने का एकरारनामा, अथवा दत्तक-पुत्र के अधिकारों को कम करने वाला एकरारनामा खण्डित होगा।

अध्याय ३

गोद लेने के कार्य्य को रेकार्ड में लाना

७४. गोद लेने की क्रिया को रेकार्ड अन्तर्गत करने के लिये प्रार्थना-पत्र—

जब कि गोद लेने की क्रिया इस भाग के विधानों के आधीन की जा चुकी है, और जब कि गोद लेने की क्रिया के दोनों पक्ष ऐसी क्रिया को उस रजिस्टर में दर्ज करने के लिए चाहते हैं, जोकि गोद लेने की क्रिया को दर्ज करने के लिये नियत किया गया है, वह इस कार्य के लिये उस प्रामाणिक सत्ता को प्रार्थना-पत्र देंगे जो कि सरकारी गज़ट में प्रकाशित नोटिफिकेशन द्वारा प्रांतीय सरकार ने इस कार्य्य-सम्पादन के लिये नियत की हुई है, तथा जोकि उस स्थान में अधिकार-क्षेत्र रखती है जहां पर कि गोद लेने की ऐसी क्रिया सम्पूर्ण हो चुकी थी।

७५. प्रार्थना-पत्र देने का समय और उसमें दर्ज होने के लिये विशिष्ट—

दत्तक देने वाले और दत्तक लेने वाले व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित प्रार्थना-पत्र देना होगा जोकि दत्तक क्रिया समाप्ति होने के बाद नब्बे (ninety) दिन

के भीतर भीतर दिया जायेगा, तथा वह (प्रार्थना-पत्र) निम्न विशिष्टों तथा कुछ अन्य विशिष्टों को जैसा कि वह निर्धारित होंगे बयान करेगा—

(१) गोद लेने की तारीख,

(२) गोद लेने का प्रकार,

(३) गोद लेने वाले व्यक्तियों का या के नाम, उम्र या उम्रें (आयु),

(४) यदि दत्तक-पिता विवाहित पुरुष है तो पत्नी का नाम, और यदि वह रण्डुआ है तो उसकी पहले मृत पत्नियों के नाम,

यदि दो या अधिक पत्नियां अथवा पहले मृत पत्नियां हैं तो उनके नाम तथा वह क्रम और तारीख जिसके अनुसार उसने उन्हें विवाहा था और पूर्व मृत पत्नी का नाम यदि है तो जोकि दत्तक-माता है।

(५) यदि गोद लेने वाला व्यक्ति कोई स्त्री है तो उसके पति और उसकी सौत पत्नियों, यदि कोई है तो, अथवा संगिनी (सौत) विधवाओं का नाम,

(६) गोद देने वाले व्यक्ति का नाम तथा उसकी आयु,

(७) दत्तक पुत्र का वह नाम जो कि उसके जन्मदाता परिवार में था,

(८) दत्तक पुत्र की आयु, और

(९) दत्तक पुत्र का दत्तक लेने वाले परिवार में रखा नाम।

७६. गोद लेने की क्रिया को रेकार्ड में लाना—

यदि धारा ७४ के अधीन नियत की अधिकार सत्ता तसल्ली देती है कि गोद लेने तथा देने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किये गये हैं, और गोद लेने की क्रिया जैसा कि बयान किया गया है उसके अनुसार ही है, तो वह गोद लेने के ऐसे कार्य्यों को उस रजिस्टर में दर्ज या रेकार्ड करवायेगा।

भाग ४ : नाबालिगपन तथा वलीपन

७७. परिभाषायें—

इस भाग में......

(अ) "नाबालिग" से तात्पर्य है ऐसा व्यक्ति जो कि अपनी आयु का अठारहवां वर्ष पूरा नहीं कर चुका है।

(इ) "स्वाभाविक वली" (natural guardian) से तात्पर्य है, कोई भी ऐसा वली जो कि धारा ७८ में निर्देश किया गया है, किन्तु वह किसी ऐसे वली को अन्तर्गत नहीं करता—

(१) जो कि नाबालिग़ के पिता की वसीयत (मृत्युलेख) द्वारा नियत किया गया है, या

(२) जो कि किसी अदालत द्वारा घोषित अथवा नियत किया गया है, या

(३) जो कि किसी कोर्ट आफ़ वार्डस् से सम्बन्धित कानून द्वारा वलीपन के लिये साधिकार किया गया है।

७८. किसी हिन्दू नाबालिग का स्वाभाविक वली—

किसी नाबालिग हिन्दू की निजता (person) तथा उस के साथ ने उसकी सम्पत्ति के मामले में उस के स्वाभाविक वली हैं—

(अ) किसी बालक या अविवाहित कन्या के मामले में पिता, और उस के बाद माता, किन्तु शर्त यह है कि ऐसे नाबालिग का संरक्षण (Custody) जो कि अपने आयु के तीन वर्ष समाप्त नहीं कर पाया है, सामान्यतया उस का वली उस की माता है।

(इ) किसी नाजायज़ बालक अथवा अविवाहित कन्या के मामले माता और उस के बाद पिता,

(उ) किसी विवाहित लड़की के मामले में उस का पति

किन्तु शर्त यह है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का वली होने का अधिकार नहीं रखेगा—

(अ) यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है अथवा

(इ) यदि यह पूर्णतया और अन्तिम रूप में धारा ११० की उपधारा (१) में वर्णित रीतियों में से किसी रीति अनुसार संसार को त्याग चुका है।

७९. गोद लिये पुत्र (दत्तक) का स्वाभाविक वली—

किसी भी नाबालिग दत्तक पुत्र का वलीपन उस के जन्मदाता परिवार से गोद लेने वाले परिवार में बदल जाता है।

८०. स्वाभाविक वली के अधिकार—

(१) इस धारा के विधानों के अधीन किसी हिन्दू नाबालिग का वली ऐसे समस्त कार्य करने के लिये साधिकार होगा जो कि नाबालिग के हित लाभ के लिये आवश्यक, अथवा युक्ति-युक्त और उचित हैं या उस की जायदाद की वसूली, रक्षा या बचत के लिये हैं, किन्तु वली अपने द्वारा किये व्यक्तिगत एकरार-नामों (covenant) द्वारा उस को किसी भी मामले में बन्धन युक्त नहीं कर सकता।

(२) स्वाभाविक वली अदालत से पूर्व प्राप्त स्वीकृति लिये बिना—

(अ) ऐसे नाबालिग की अचल-जायदाद के किसी भी भाग को गिरवी (रहन) या व्यय (charge) अथवा बेचने, पुरस्कार में देने (gift), परिवर्तन करने अथवा किसी अन्य प्रकार की क्रिया द्वारा व्यवहृत नहीं कर सकेगा।

(इ) तथा ऐसी जायदाद को पांच वर्ष से अधिक अवधि के लिये या ऐसे नाबालिग की बालिग होने की तारीख से लेकर आगे के लिये एक वर्ष से अधिक समय के लिये पट्टा (लीज़) पर नहीं दे सकेगा।

(३) स्वाभाविक वली द्वारा नाबालिग की अचल सम्पत्ति का किसी भाँति का भी लेनदेन (disposal) जो कि उपधारा (१) या उपधारा (२) का

उल्लंघन है, वह नाबालिग अथवा ऐसे मामले में प्रभावगत हुए किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रार्थना करने पर खण्डित होने योग्य (voidable) हो जायेगा।

(४) कोई भी अदालत किसी भी स्वाभाविक वली को किसी भी ऐसे कार्य्य करने के लिये स्वीकृति प्रदान नहीं करेगी जो कि उपधारा (२) में वर्णित है, किन्तु कोई ऐसा आवश्यक काम जो कि नाबालिग के स्पष्ट वाले हितलाभ के लिये है, वह उपयुक्त निषेध का अपवाद होगा।

(५) ऐसा प्रार्थना पत्र जो कि उपधारा (२) के आधीन अदालत की स्वीकृति प्राप्ति के लिये है, उसके सब मामलों में, ऐसे प्रार्थना-पत्र पर और उसके विषय में, गार्डियन और वार्ड्‌ज़ ऐक्ट, १८६०, (१८६० का ८) लागू होगा, गोया कि यह एक ऐसा प्रार्थना पत्र है जो कि उस ऐक्ट की धारा २८ आधीन अदालत से स्वीकृति प्राप्ति के लिये दिया गया है, और विशेष तौर में—

(अ) प्रार्थना-पत्र के सम्बन्ध में कानूनी कार्यवाही उस ऐक्ट की धारा ४ अ के अर्थ में उस ऐक्ट के आधीन होने के लिये कानूनी कार्यवाही है।

(इ) अदालत उस ऐक्ट की धारा ३१ की उपधारा (२) (३) और (४) में वर्णित कार्यवाही का ढंग और अधिकार अपनायेगी।

(उ) स्वाभाविक वली को इस धारा की उपधारा (२) में वर्णित कार्य्यों के करने के लिये अदालती स्वीकृति प्राप्त करने के लिये दिये प्रार्थना पत्र को रद्द करने पर अदालत के ऐसे निर्णय क विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील लागू हो सकेगी।

(६) इस धारा में अदालत से तात्पर्य है कोई ऐसा जिलाकोर्ट जिस की मुकामी सीमाओं के अन्दर वह अचल सम्पत्ति या उसका कोई भाग स्थित है जिसके मामले में प्रार्थना-पत्र दिया गया है अथवा कोई ऐसी अदालत जो गार्डियन और वार्ड्‌ज़ ऐक्ट, (१८६० का ८) की धारा ४ अ के अधीन साधिकार की गई है।

८१. स्वाभाविक वली की अधिकारसत्ता का खण्डन—

जहाँ पर किसी नाबालिग हिन्दू का स्वाभाविक वली ऐसे नाबालिग की संरक्षकता किसी दूसरे व्यक्ति को दे देता है, वह निम्न अंकित को छोड़ कर खण्डन योग्य होगी—

(अ) जहाँ पर उस को खण्डित करने की स्वीकृति देना नाबालिग के हितलाभ के लिये नहीं हैं, अथवा

(इ) जहाँ पर स्वाभाविक वली हिन्दू धर्म को त्याग चुका है, अथवा

(उ) जहाँ पर किसी दूसरे ठोस हेतु के लिये ऐसा खण्डन अभीष्ट नहीं है।

८२. वसीयत (मृत्यु लेख) द्वारा बना वली तथा उस के अधिकार—

(१) कोई हिन्दू पिता वसीयत (मृत्यु लेख) द्वारा अपने जायज़ बच्चों में से किसी नाबालिग के लिये भी उस (नाबालिग) की निजता तथा उस की सम्पत्ति अथवा निजता और सम्पत्ति दोनों के विषय में कोई वली नियुक्त करेगा,

किन्तु शर्त यह है कि इस धारा में किसी भी ऐसी बात का होना नहीं विचारा जायगा जो कि किसी भी व्यक्ति को वली का कार्य पूरा करने के लिये साधिकार कर सके यदि ऐसे नाबालिग की माता जीवित है और अपने ऐसे नाबालिग बच्चे का स्वाभाविक वली होने की क्षमता या योग्यता रखती है।

(२) इस भाँति नियुक्त हुआ वली पिता की मृत्यु के पश्चात् नाबालिग का वली होने के रूप में कार्य सम्पादन करने का और इस भाग के अधीन स्वाभाविक वली के समस्त अधिकारों को उस परिमाण तक और ऐसी बन्दिशों के अधीन यदि कोई है, जैसा कि वे मृत्यु लेख (वसीयत) में उल्लिखित हैं, अधिकार रख सकेगा।

(३) इस भाग के विधानों के विषय के आधीन कोई भी हिन्दू विधवा अपने बच्चों में से किसी भी नाबालिग बच्चे की निजता (person) की रक्षा के लिये वसीयत द्वारा वली नियुक्त करेगी, किन्तु शर्त यह है कि उस का पति पहले से ही उस नाबालिग की निजता रक्षण के लिये वसीयत द्वारा कोई वली नियुक्त न कर चुका हो।

(४) इस भांति नियुक्त किये वली के अधिकार जहां पर कि नाबालिग एक कन्या है, उसके विवाह हो जाने पर समाप्त हो जायेंगे।

८३. नाबालिग को हिन्दू के रूप में पालन-पोषण करने के लिये वली का कर्त्तव्य—

किसी नाबालिग हिन्दू के वली का कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसे नाबालिग का हिन्दू के रूप में पालन-पोषण करे।

८४. वास्तविक वली नाबालिग की सम्पत्ति का लेन-देन नहीं करेगा—

इस कोड के आरम्भ काल के बाद किसी भी व्यक्ति को हक हासिल नहीं होगा कि वह केवल मात्र ऐसे नाबालिग का वास्तविक वली होने के आधार पर उस नाबालिग हिन्दू की सम्पत्ति या जायदाद को समाप्त कर सके या व्यवहार में ला सके।

८५. नाबालिग कबेहतरी मुख्य कर्त्तव्य होगा—

किसी अदालत द्वारा किसी व्यक्ति का किसी नाबालिग हिन्दू का वली नियुक्त होने अथवा घोषित होने पर ऐसे नाबालिग की बेहतरी करना ही मुख्य कर्त्तव्य होगा और ऐसा कोई भी व्यक्ति इस भाग के विधानों के प्रभाव (रू) से वलीपन का हक नहीं रख सकेगा यदि उसके (स्त्री अथवा पुरुष) सम्बन्ध में अदालत की धारणा बन चुकी है कि वह उक्त नाबालिग का हितेच्छुक नहीं है।

भाग ५ : संयुक्त परिवार की सम्पत्ति

८६. परिवार में जन्म सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित नहीं करता—

इस कोड के आरम्भ होने पर तथा उसके बाद, पूर्वज के जीवनकाल के दौरान में उसकी सम्पत्ति में हित रखने का दावा करने का अधिकार, जो कि केवल इस तथ्य पर निर्धारित है कि दावादार का जन्म उक्त पूर्वज के परिवार में हुआ था किसी भी अदालत में स्वीकृत नहीं होगा।

व्याख्या—इस धारा में "सम्पत्ति" में चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्तियों का समावेश होता है फिर चाहे वह पूर्वजों द्वारा प्रदत्त हो या नहीं अथवा परिवार के अन्य अंगों के साथ प्राप्त की गई हो, या पूर्वजों की सम्पत्ति में किसी वृद्धि होने के कारण, या किसी भी अन्य प्रकार प्राप्त की गई हो।

८७. संयुक्त आसामी का स्थान सम्मिलित आसामी के रूप में बदल जाएगा—

प्रस्तुत कोड के आरम्भ पर तथा उसके बाद, कोई भी अदालत, संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हित रखने के किसी ऐसे अधिकार को मान्य नहीं करेगी जो कि उत्तराधिकार के नियम पर अवलम्बित है, और ऐसे समस्त व्यक्ति जिन के कि पास, जिस दिन यह कोड कार्यान्वित हो जाएगा उस दिन, कोई संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है, वह, उक्त सम्पत्ति बतौर सम्मिलित आसामियों के अपने पास रखते हैं ऐसा विचारा जाएगा गोयाकि इस कोड के आरम्भ की तारीख पर, ऐसी सम्पत्ति के बारे में, संयुक्त परिवार के समस्त सदस्यों के बीच बटवारा हो गया था और गोया कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति

अपना अपना भाग बतौर एक परिपूर्ण मालिक के अपने पास अलग रखता है।

लेकिन शर्त यह है कि इस धारा में उल्लिखित कोई बात भी, ऐसे व्यक्तियों के अतिरिक्त जो कि अपने भाग अलग रखने के लिये अधिकार-युक्त हो गए हैं, संयुक्त परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण और निवास क अधिकार पर, यदि कोई हों तो, प्रभाव नहीं डालता और ऐसा कोई भी अधिकार इस प्रकार प्रयोग में लाया जा सकेगा गोया कि इस विषय में प्रस्तुत कोड अमल में ही नहीं आया था।

अधिक शर्त यह है कि किसी ऐसी स्त्री की हालत में जो कि इस धारा के विधानों के अधीन अपने भाग पर अलग अधिकार रखने के क़ाबिल हो जाती है वह केवल ऐसी सम्पत्ति लेगी जो कि सीमित होगी, और जो इस कोड के अस्तित्व में आने से पहले हिन्दू स्त्री की जायदाद (स्त्रीधन) के नाम से उस समय प्रवर्तमान कानून द्वारा वर्णित की जाती थी, तथा इसकी मृत्यु पर, ऐसी सम्पत्ति उन व्यक्तियों के अधिकार में फिर से आ जाएगी जो कि इस कोड के आरम्भ के पूर्व प्रवर्तमान कानून के अधीन] उस पर अधिकार रखने के योग्य थे।

८८. हिन्दू पुत्र के धार्मिक कर्त्तव्य का नियम खंडित किया जाता है—

(१) इस कोड के आरम्भ के पश्चात्, कोई भी अदालत, सिवा कि जैसा उप-धारा (२) में विनिहित किया गया है, किसी पुत्र, पौत्र और प्र-पौत्र के विरुद्ध, उसके पिता, पितामह और प्र-पितामह द्वारा लिये गए देन की वसूल-याबी के लिये, और ऐसे किसी देन की अदाएगी के सम्बन्ध में किसी सम्पत्ति को अधिकार में लेने के लिये, इस आधार पर कि ऐसे किसी देन का चुका देना उक्त पुत्र, पौत्र अथवा प्र-पौत्र का धार्मिक कर्त्तव्य है, कानूनी कार्यवाही करने के अधिकार को स्वीकृत नहीं करेगी।

(२) इस कोड के आरम्भ में आने से पहिले यदि कोई कर्ज लिया गया है, तो उस हालत में उपधारा (१) में उल्लिखित कोई भी बात निम्नांकित पर प्रभाव नहीं डालेगी—

(अ) किसी भी लेनदार के, पुत्र, पौत्र और प्र-पौत्र, जैसी कि सूरत हो, के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही दायर करने का अधिकार, या

(इ) ऐसे किसी देन की वसूलयाबी के सम्बन्ध में किया गया किसी सम्पत्ति का स्वत्वार्पण या हस्तकाल (alienation)

और ऐसा कोई अधिकार या स्वत्वार्पण धार्मिक कर्तव्य के नियम के आधीन उसी प्रकार और उसी हद तक प्रयोग में लाया जायगा जैसा कि यह कोड पास न होने की सूरत में किया जाता।

८९. संयुक्त परिवार के सदस्यों की कोड से पहिले की देन विषयक जिम्मेदारियों में परिवर्तन नहीं होगा—

जहां इस कोड के आरम्भ से पहिले, संयुक्त परिवार के नियामक एवं कर्त्ता द्वारा, परिवार के प्रयोजनार्थ कोई कर्जा लिया गया हो तो, उस हालत में, इस कोड में उल्लिखित कोई भी बात, संयुक्त परिवार के किसी भी सदस्य की, उक्त देन चुका देने की जिम्मेवारी पर असर नहीं डालती और ऐसी कोई जिम्मेवारी ऐसे समस्त या किन्हीं भी व्यक्तियों पर जो कि उसके लिये उत्तरदायी हैं इसी प्रकार और इसी हद तक लागू होगी जैसी कि वह यह कोड पास न होने की सूरत में लागू होती।

व्याख्या—धारा ८८ की उपधारा (२) के प्रयोजनों के लिये कथन "पुत्र, पौत्र अथवा प्र-पौत्र" से तात्पर्य है वह पुत्र, पौत्र या प्र-पौत्र, जैसी कि सूरत हो, जो कि प्रस्तुत कोड से पहिले जन्मा था या गोद लिया गया था।

९०. बटवारा न हो सकें ऐसी जायदादों के सम्बन्ध में अपवाद—

इस भाग में सम्मिलित कोई भी उल्लेख ऐसी किसी जायदाद पर लागू नहीं होगा जो कि उत्तराधिकार के नियम की प्रथा अनुसार एक ही वारिस की स्वाधीनता में चली जाती है अथवा जो कि किसी दान-पत्र या कानून द्वारा इसको मिलती है।

भाग ६ : स्त्री की सम्पत्ति

९१. स्त्री की सम्पत्ति के प्रकार—

(१) इस कोड के सम्पूर्णतया अस्तित्व में आने के बाद किसी स्त्री द्वारा जो भी सम्पत्ति प्राप्त की जावेगी वह निश्चयात्मक (absolute) उसकी सम्पत्ति होगी।

(२) उपधारा (१) में उल्लिखित कोई बात, किसी ऐसी सम्पत्ति पर लागू नहीं होगी जो कि स्त्री द्वारा बतौर दान के या किसी वसीयतनामा के अधीन प्राप्त की गई है और जहां दान-पत्र एवं वसीयतनामा की शर्तें, स्पष्ट रूप या आनुषंगिक रूप में ऐसी सम्पत्ति के बारे में सीमित अधिकार प्रदत्त करती हैं।

बशर्ते कि उक्त आनुषंगिक आदेश का उद्भव केवल उसकी स्त्री जाति के कारण ही नहीं होता।

व्याख्या—इस धारा में "सम्पत्ति" में, स्त्री द्वारा उपलब्ध चल और अचल उभय सम्पत्तियों का समावेश होगा, फिर चाहे यह प्राप्ति उसके विवाह से पहिले या बाद हुई हो अथवा वैधव्य काल के दौरान में हुई हो और चाहे वह उत्तराधिकारी के रूप में या किसी कार्य के फलस्वरूप अस्तित्व में आई हो या बटवारे पर अथवा भरण-पोषण के बदले में या भरण-पोषण के बकाया के बदले में मिली हो अथवा किसी सम्बन्धी या गैर रिश्तेदार द्वारा बतौर किसी दान के या अपनी युक्ति अथवा मेहनत द्वारा, या खरीद द्वारा, या किसी हककदीमी की बिना पर, अथवा किसी भी अन्य प्रकार उपलब्ध हुई हो।

६२. स्त्री सम्पत्ति विषयक उत्तराधिकार—

इस कोड के आरम्भ के बाद जब किसी स्त्री की मृत्यु हो जायगी तो उसके द्वारा जो कोई भी सम्पत्ति प्राप्त की गई होगी, इस कोड के आरम्भ में आने से पहिले प्राप्त की गई हो या बाद में, वह जहां तक कि उसका सम्बन्ध विरासत द्वारा उपलब्ध सम्पत्ति से होगा, उसके उत्तराधिकारियों के अधिकार में, भाग ७ में सम्मिलित पद्धति अनुसार चली जायगी।

(२) उपधारा (१) का कोई भी उल्लेख, स्त्री की ऐसी सम्पति पर लागू नहीं होगा जिसमें कि उसका, उसकी मृत्यु के वक्त, केवल वह सीमित अधिकार था जो कि हिंदू "स्त्री की सम्पत्ति" की संज्ञा से सूचित किया गया है, और ऐसी सम्पत्ति में निम्न प्रकार अधिकार परिवर्तन होगा—

(१) जबकि ऐसा सीमित अधिकार विरासत द्वारा उपलब्ध हुआ हो तो उसके उरात्तधिकार ऐसे व्यक्तियों के स्वाधीन हो जायंगे जोकि भाग ७ के आधीन उनके अन्तिम पूर्ण मालिक के उत्तराधिकारी हो सकते थे यदि उक्त मालिक उस स्त्री के बाद तत्काल वसीयतनामा किये बगैर मर चुका होता;

(२) जब ऐसा सीमित अधिकार किसी बटवारा द्वारा अथवा ऐसे किसी अन्य प्रकार से, जिसके लिये यहां पर कोई विधान नहीं दिये गये, प्राप्त हुआ हो तो वह उन व्यक्तियों के स्वाधिकार में चला जायगा जो कि, यदि यह कोड पास न किया जाता, तो उसे हासिल करने के लिए हकदार होते।

६३. स्त्री-धन पत्नी के लिये एक बतौर अमानत के रखा जायगा—

(१) इस कोड के आरम्भ के बाद किसी विवाह के संस्कार सम्पूर्ण होने की सूरत में कोई भी ऐसा स्त्री-धन जोकि उस विवाह प्रसंग पर, अथवा उसकी किसी शर्त के रूप में, या उसके सम्बन्ध में बतौर एक प्रति उपहार के दिया गया है, वह, उस स्त्री की सम्पत्ति विचारी जाएगी जिसका कि इस प्रकार विवाह संस्कारसम्पन्न सम्पूर्ण किया गया है।

(२) जहां ऐसी स्त्री के अलावा जिसका कि इस प्रकार विवाह-संस्कार सम्पन्न किया गया है किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई स्त्री-धन प्राप्त किया जाता है, तो उस हालत में, ऐसे व्यक्ति को वह अपने पास उस स्त्री के लाभ तथा व्यक्तिगत उपयोग के लिये बतौर एक अमानत के रखना होगा तथा जब वह स्त्री अपनी आयु का अठारहवां वर्ष पूरा करे तब उसे दे देना होगा और यदि वह अपनी आयु कीउक्त अवधि पूरी करने से पहिले ही मर जाए तो भाग ७

में निश्चित किये गए उसके उत्तराधिकारियों के नाम पर परिवर्तन कर देना होगा।

व्याख्या—

इस धारा में "स्त्री-धन" में ऐसी किसी भी सम्पत्ति का समावेश होगा जो कि विवाह के किसी एक पक्ष द्वारा, या उसकी ओर से, या उसके किसी भी सम्बन्धी द्वारा, या उसकी ओर से, अन्य पक्ष के किसी सम्बन्धी के नाम परिवर्तित कर दी गई है, फिर यह परिवर्तन चाहे विवाह के प्रसंग पर अथवा उसकी किसी शर्त के रूप में, या उसके सम्बन्ध में बतौर एक उपहार के, परोक्ष या अपरोक्ष तौर पर किया गया हो या अन्यथा किया गया हो, किन्तु इसमें ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओं का समावेश नहीं होगा जोकि बतौर लौकिक पुरस्कारों के वर या दुलहा को या विवाह के किसी एक पक्ष के किसी भी रिश्तेदार को दी जाती है।

भाग ७ : उत्तराधिकार

अध्याय १

सामान्य

६४. कुछ खास सम्पत्तियों का इस भाग के कार्यक्षेत्र में समावेश नहीं होगा—

यह भाग निम्नांकित पर लागू नहीं होगा—

(१) गवर्नरों के प्रान्तों में कृषि सम्बन्धी भूमि पर, अथवा

(२) ऐसी किसी भी जायदाद पर, जोकि एक ही उत्तराधिकारी के पास विरासत के प्रथा रूप नियम द्वारा अथवा किसी दान-पात्र एवं कानून की शर्तों द्वारा चली आती है।

६५. भाग का लागू होना—

धारा ६४ में अंकित विधानों के अतिरिक्त यह भाग, इस कोड के आरम्भ के बाद ऐसे हिन्दू की सम्पत्ति की विरासत को निम्न हालतों में, नियमान्तर्गत करता है जोकि वसीयतनामा किये बगैर मर जाता है, यथा—

(अ) जहां सम्पत्ति चल सम्पत्ति हो, तो उस हालत में जब तक कि ऐसा प्रामाणित न किया जाय कि बिना वसीयत लिखे मर जाने वाला व्यक्ति अपनी मृत्यु के वक्त भारत के किसी भी प्रान्त में अधिवासित था,—

(इ) जहां सम्पत्ति भारत के किसी भी प्रान्तान्तर्गत अचल सम्पत्ति हो, तो उस हालत में चाहे बिना वसीयत लिखे मर जाने वाला

व्यक्ति अपनी मृत्यु के वक्त भारत के किसी प्रान्त में अधिवासित हो या नहीं।

व्याख्या—

इस भाग के प्रयोजनों के लिये किसी हिन्दू का अधिवास, भारतीय उत्तराधिकार (इण्डियन सक्सेसन) ऐक्ट, सन्, १९२५ ई० (सन् १९२५ के ऐक्ट संख्या ३९) की धारायें ६ से १८, जिनमें कि उक्त दोनों धाराओं का भी समावेश होगा, में सम्मिलित विधानों के अनुसार निश्चित किया जायगा।

९६. उत्तराधिकार के प्रयोजनों के लिये विभक्त और अविभक्त पुत्रों के बीच कोई भिन्नता नहीं होगी—

बेवसीयत उत्तराधिकार के प्रयोजनार्थ निम्नांकितों के मध्य कोई भी भिन्नता नहीं होगी—

(१) ऐसा पुत्र जोकि बिना वसीयत किये ही मर जाने वाले व्यक्ति से विभक्त था तथा ऐसा पुत्र जो इस प्रकार विभक्त न था तथा ऐसा जो कि अलग होने के बाद उसके साथ फिर से मिल गया था;

(२) ऐसी उत्तराधिकारिणी जोकि विवाहित है तथा जो अविवाहित है अथवा ऐसी उत्तराधिकारिणी जो कि विधवा है तथा जो विधवा नहीं है या ऐसी कोई उत्तराधिकारिणी जो कि दरिद्र है और ऐसी जो धनाढ्य है या ऐसी उत्तराधिकारिणी जो कि ससन्तान है और ऐसी जो निःसन्तान है अथवा जिसके यहां सन्तान होने की कोई संभावना नहीं।

अध्याय २

वसीयतहीन उत्तराधिकार

हिन्दू पुरुष की सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तराधिकार

९७. परिभाषायें—

(१) इस भाग में यदि कोई बात विषय या सन्दर्भ से विपरीत नहीं है तो—

(अ) "गोत्रज"—एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति का गोत्रज (agnate) तब कहलायेगा जब कि दोनों सम्पूर्णतया अपने पूर्वज पुरुषों की ओर से रक्त या गोद लेने के संस्कार द्वारा एक दूसरे के सम्बन्धी हों;

(इ) "बन्धु"—एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति का बन्धु (cognate) तब कहलायेगा जब कि दोनों रक्त अथवा गोद लेने के संस्कार

द्वारा एक दूसरे के सम्बन्धी तो हैं किन्तु सम्पूर्णतया पूर्वज पुरुषों की ओर से नहीं ;

(उ) "उत्तराधिकारी"—से तात्पर्य है ऐसा कोई भी व्यक्ति पुरुष अथवा स्त्री जो कि इस भाग के अधीन किसी वसीयतहीन की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने का हक रखता है ;

(ऋ) "वसीयतहीन"—जब कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के बारे में किसी ऐसी व्यवस्था किये बगैर जो कि उसकी मृत्यु के बाद में अमल में आ सकती है मर जाता है तो वह उक्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में वसीयतहीन मर गया है ऐसा विचारा जायगा ।

(२) इस भाग में यदि कोई बात विषय या सन्दर्भ से विपरीत नहीं पाई जाती तो ऐसे शब्द जो कि पुल्लिंग हैं वह अपने में स्त्रीलिंग को भी शामिल करते हैं ऐसा नहीं विचारा जाएगा ।

९८. हिन्दू पुरुष की हालत में उत्तराधिकार का नियम—

किसी वसीयतहीन मर जाने वाले हिन्दू पुरुष की सम्पत्ति, इस भाग के विधानों की सीमा में, इस भाग में सम्मिलित नियमों के अनुसार सौंपी जाएगी :—

(अ) प्रथम हक, क्रमशः ऐसे उत्तराधिकारियों को जो परिशिष्ट ७ के प्रथम विभाग में निश्चित किये हुए सम्बन्धी हैं ;

(इ) द्वितीय हक, यदि विभाग १ का कोई क्रमशः उत्तराधिकारी नहीं हैं तो, उस हालत में, क्रमशः ऐसे उत्तराधिकारियों को जो कि परिशिष्ट ७ के द्वितीय विभाग में निश्चित किये हुए सम्बन्धी हैं ;

(उ) तृतीय हक, यदि उक्त दो विभागों के किसी भी विभाग का कोई भी क्रमशः उत्तराधिकारी नहीं है तो, उस हालत में, उन सम्बन्धियों को जो कि धारा १०२ में निश्चित किये गये उसके गोत्रज हैं ; और

(ऋ) अंतिम हक, यदि कोई गोत्रज ही न हो तो उन सम्बन्धियों को जो धारा १०३ में निश्चित किये गये उसके बन्धु हैं ।

९९. क्रमवार वारिसों के बीच उत्तराधिकार की व्यवस्था—

ऐसे वारिस अर्थात् उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में जो कि निश्चित क्रम के अनुसार निर्वाचित किये जाते हैं, परिशिष्ट ७ के प्रथम विभाग में जो दर्ज हैं वह समान अधिकार रखेंगे, और वह जो द्वितीय विभाग की पहली सूची में दर्ज हैं उन्हें द्वितीय

सूची में दर्ज सम्बन्धियों की अपेक्षा रिआयत दी जाएगी तथा वह जो द्वितीय सूची में सम्मिलित हैं उन्हें तृतीय सूची में दर्शित सम्बन्धियों की बनिस्बत रिआयत मिलेगी और इस प्रकार सिलसिला जारी रहेगा।

१००. प्रथम विभाग में दर्शित क्रमवार वारिसों के बीच सम्पत्ति का बटवारा—

(१) किसी वसीयतहीन व्यक्ति की सम्पत्ति का प्रथम विभाग में क्रमानुसार दर्ज वारिसों में इस प्रकार बटवारा किया जाएगा कि जिससे विधवा का हिस्सा प्रत्येक पुत्र के हिस्से के बराबर हो जाय और पुत्र में वसीयतहीन की मृत्यु के समय जीवित हो ऐसे पुत्र या पौत्र को छोड़ कर पहिले से ही मरे हुए पुत्र का भी समावेश होगा, तथा प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के हिस्से के बराबर होगा :

किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जहां मृत पुत्र कोई पुत्र अथवा पौत्र नहीं छोड़ जाता, परन्तु वसीयतहीन की मृत्यु पर जीवित है ऐसी अपनी विधवा या अपने पुत्र की विधवा छोड़ जाता है, तो उस स्थिति में, ऐसे मृत पुत्र का भाग वसीयतहीन के पुत्र के हिस्से का आधा होगा।

(२) उपधारा (१) के अधीन वसीयतहीन के पहिले से ही मरे हुए पुत्र को जो हिस्सा मिलेगा उसका निम्न प्रकार बटवारा किया जाएगा :—

(अ) यदि ऐसा मृत पुत्र ऐसे पुत्र या पौत्र को छोड़ कर मरा हो जो कि वसीयतहीन की मृत्यु पर जीवित था, तो उसके हिस्से का इस प्रकार बटवारा होगा कि जिससे उक्त मृत पुत्र की विधवा का हिस्सा ऐसे मृत पुत्र के पुत्र के हिस्से के बराबर हो। इस पुत्र में, ऐसे किसी पुत्र का भी समावेश होगा, जो वसीयतहीन की मृत्यु पर जीवित हो ऐसा बेटा छोड़ कर, वसीयतहीन से पहिले ही मर चुका हो।

शर्त यह है कि यदि उक्त मृत पुत्र का कोई भी बेटा वसीयतहीन से पहिले विधवा छोड़ कर, परन्तु ऐसा कोई लड़का छोड़े बगैर जो कि वसीयतहीन की मृत्यु पर जीवित हो, मर जाता है, तो, उस हालत में, उक्त मृत पुत्र के ऐसे बेटे का हिस्सा ऐसे मृत पुत्र के किसी भी अन्य बेटे के हिस्से का आधा होगा।

(इ) वसीयतहीन से पहिले मर चुका हो ऐसे मृत पुत्र के किसी भी बेटे का हिस्सा उसकी विधवा और बेटों के बीच समान हिस्सों में बांटा जाएगा।

(उ) यदि उक्त मृत पुत्र एक विधवा या पुत्र की विधवा अथवा दो और इससे भी अधिक पुत्रों की विधवायें छोड़ कर मर जाता है परन्तु कोई ऐसा पुत्र या पौत्र नहीं छोड़ जाता जो कि वसीयतहीन की मृत्यु पर जीवित हो, तो, उस हालत में उक्त मृत पुत्र के हिस्से का उसकी विधवा और उसके पुत्रों की विधवाओं के बीच इस प्रकार बटवारा होगा जिससे कि मृत पुत्र की विधवा का हिस्सा, ऐसे मृत पुत्र के प्रत्येक पुत्र की विधवा के हिस्से से दुगना हो जाय।

(३) इस धारा के प्रयोजनों के लिये जहां कोई व्यक्ति एक से अधिक विधवायें छोड़ जाता है, तो, उस स्थिति में, सब विधवायें आपस में उस हिस्से का समभाग में बटवारा कर लेंगी जो कि यदि एक विधवा होती तो उसको मिलता।

उदाहरण

(१) एक वसीयतहीन के निम्नलिखित जीवित उत्तराधिकारी हैं : तीन बेटे, "अ," "इ" "उ" तथा पहिले मरे हुए पुत्र 'ऋ' द्वारा पांच पौत्र और एक अन्य मृत पुत्र 'ए' के मरे हुए पुत्र द्वारा दो प्रपौत्र। 'अ', 'इ' और 'उ' प्रत्येक को एक हिस्सा प्राप्त होगा और 'ऋ' तथा 'ए' की शाखाओं में से प्रत्येक शाखा को एक हिस्सा मिलेगा। 'ऋ' की शाखा में पौत्र और 'ए' की शाखा में प्रपौत्र आपस में वह हिस्सा सम भाग में बांट लेंगे जो कि उनकी शाखाओं के लिये क्रमशः नियत किया गया है। इस प्रकार वसीयतहीन का प्रत्येक पुत्र विरासत पाने योग्य सम्पत्ति का पांचवां हिस्सा, प्रत्येक पौत्र २५वां हिस्सा तथा प्रत्येक प्रपौत्र १०वां हिस्सा लेता है।

(२) वसीयतहीन सिर्फ विधवा अथवा बेटी छोड़ जाता है। उसे विरासित के काबिल सारी सम्पत्ति मिल जाएगी।

(३) जीवित उत्तराधिकारी एक विधवा और मृत बेटे द्वारा प्राप्त दो पौत्र विधवा को एक हिस्सा मिलेगा और उभय पौत्र आपस में एक हिस्सा लेंगे। इस प्रकार विधवा को विरासित में आई हुई सम्पत्ति का अर्ध-भाग और प्रत्येक पौत्र को चतुर्थ भाग मिलेगा।

(४) जीवित वारिस हैं एक बेटी और मृत पुत्र की विधवा। बेटी एक हिस्सा लेगी और विधवा को आधा हिस्सा मिलेगा।

(५) जीवित वारिस एक पुत्र एक पुत्री और मृत पुत्र की विधवा हैं।

पुत्र एक हिस्सा लेगा, पुत्री एक हिस्सा लेगी तथा मृत पुत्र की विधवा आधा हिस्सा लेगी।

(६) जीवित उत्तराधिकारी निम्न प्रकार हैं: एक बेटा, एक बेटी, मृत पुत्र की विधवा और उसका बेटा।

बेटे को एक हिस्सा बेटी को एक हिस्सा तथा मृत पुत्र की विधवा और बेटे के बीच एक हिस्सा आएगा जो कि उन में सम भाग में बांटा जाएगा।

(७) जीवित वारिस निम्न प्रकार हैं—

(अ) विधवा,

(इ) बेटा,

(उ) बेटी,

(ऋ) मृत बेटे की विधवा,

(ए) अन्य मृत बेटे की विधवा और दो पुत्र।

विधवा को एक हिस्सा मिलेगा, पुत्र को भी एक हिस्सा प्राप्त होगा, बेटी एक हिस्सा लेगी, प्रथम उपर्युक्त (ऋ) में उल्लिखित मृत पुत्र की विधवा आधा हिस्सा पाएगी, तथा उपर्युक्त (ए) में कथित वारिसों के बीच एक हिस्सा आएगा जो कि बाद में उनके बीच सम भाग में बांटा जाएगा।

(८) जीवित उत्तराधिकारी निम्न प्रकार हैं—

(अ) बेटा,

(इ) प्रथम से ही मरे हुए पुत्र की विधवा और तीन बेटे,

(उ) उपर्युक्त (इ) में सम्बोधित प्रथम से ही मरे हुए पुत्र के मृत बेटे की विधवा।

पुत्र को एक हिस्सा मिलेगा और सूची (इ) और सूची (उ) में उल्लिखित वारिसों को मिला कर एक हिस्सा मिलेगा। यह अंतिम हिस्सा इस प्रकार बांटा जाएगा जिससे कि विधवा और सूची (उ) में उल्लिखित प्रत्येक बेटे को एक हिस्सा मिले तथा सूची (उ) में उल्लिखित विधवा को ऐसे हिस्से का आधा भाग मिले। परिणाम यह होगा कि वसीयतहीन के पुत्र को विरासत के क़ाबिल सम्पत्ति का आधा भाग मिलेगा, और उसके मृत बेटे की विधवा को ऐसी सम्पत्ति का नवमां भाग, उक्त मृत बेटे के तीन पुत्रों में से प्रत्येक को भी नवमां भाग और वसीयतहीन के पौत्र की विधवा को अठारहवां भाग मिलेगा।

१०१. विभाग २ में क्रमानुसार दर्शित वारिसों के बीच बटवारे का तरीका—

वसीयतहीन की सम्पत्ति का परिशिष्ट ७ के द्वितीय विभाग की किसी

भी क सूची में वर्णित क्रमानुसार निर्वाचित किये जाने वाले वारिसों के बीच ठवारा इस प्रकार किया जाएगा जिससे कि उन्हें सम भाग में हिस्सा प्राप्त हु ।

१०२. ऐसे गोत्रज जो कि उत्तराधिकारी हैं—

परिशिष्ट ७ क प्रथम या द्वितीय विभाग में क्रमानुसार दर्शित उत्तराधिकारियोंकी अनुपस्थिति में मृत व्यक्ति के ऐसे गोत्रज, जो वसीयत हीन की पांच पीढियों के अन्दर अन्दर सम्बन्धी होते हैं, वह, प्रस्तुत भाग में सम्मिलित नियमों के अनुसार उत्तरा- धिकारी बनने का हक़ रखेंगे ।

१०३. बन्धु जो कि उत्तराधिकारी हैं—

क्रमानुसार विशेषता पाने वाले किसी उत्तराधिकारी और गोत्रजों की अनुपस्थिति में, मृत व्यक्ति के ऐसे बन्धुजो कि मृत व्यक्ति की पांच पीढ़ियों के अन्दर अन्दर सम्बन्धी होते हैं, वह प्रस्तुत भाग में सम्मिलित नियमों के अनुसार उत्तर.धिकारी बनने का हक़ रखेंगे ।

१०४. गोत्रजों और बन्धुओं में उत्तराधिकार हासिल करने की व्यवस्था—

गोत्रजों और बन्धुओं के बीच जिस क्रमानुसार उत्तराधिकार के हक़ स्थापित होंगे वह, स्थितिअनुसार, निम्न दर्शित क्रम विषयक नियमों के अनुसार निश्चित किये जाएंगे—

नियम १—दो वारिसों में से ऐसे को विशेषता (Preference) दी जाएगी जो पूर्वजों की बनिस्बत कोई दर्जा या पीढ़ी नहीं रखता या कम दर्जा या पीढ़ी रखता है ।

नियम २—जहां पूर्वजों की बनिस्बत कोटियों (degrees) की संख्या बराबर की है या है ही नहीं तो, उस हालत में, उस वारिस को विशेषता दी जाएगी जो कि पूर्वज की कोटि में शुमार ही नहीं किया जाता या जो इस विषय में कम दर्जा या पीढ़ी रखता है ।

नियम ३—जहां वंश की परंपरा की कोटि भी समान है या है ही नहीं तो; उस हालत में, मातृ पक्ष से सम्बन्ध रखने वाले प्रथम पंक्ति के उत्तराधिकारी की अपेक्षा, (यहां वंशक्रम की गिनती वसीयतहीन से लेकर उत्तराधिकारी तक की जाएगी) पितृ पक्ष से सम्बन्ध रखने वाले उत्तराधिकारी को

विशेषता दी जाएगी, लेकिन यह सिर्फ उस वक्त होगा जब कि उक्त दो उत्तराधिकारियों के वंशक्रम में इस प्रकार का भेद प्रतीत हो सकेगा।

नियम ४—जहां इस प्रकार के दो वंशक्रमों में भेद प्रतीत नहीं हो सकता तो, इस हालत में, ऐसे उत्तराधिकारी की अपेक्षा जो कि स्त्री है, पुरुष उत्तराधिकारी को विशेषता दी जाएगी।

नियम ५—जहां उपर्युक्त नियमों के अधीन दोनों वारिसों में से कोई एक वारिस भी एक दूसरे की अपेक्षा विशेषता पाने के लिए अधिकार नहीं रखता तो, उस हालत में उन दोनों को उत्तराधिकारी के हक़ हासिल होंगे।

उदाहरण

निम्न उदाहरणों में अक्षर 'फ' और 'म' वंशक्रम के उस विभाग स्थित क्रमशः पिता और माता को सूचित करते हैं जो कि वसीयत हीन से ले कर समान पूर्वज की ओर जाता है तथा अक्षर 'स' और 'ड' वंशक्रम के उस विभाग स्थित क्रमशः पुत्र और पुत्री को सूचित करते हैं जो कि समान पूर्वज की ओर से उत्तराधिकारी तक उतरता है। यथा शब्द 'मफसस', वसीयतहीन की माता के पिता के पुत्र के पुत्र (माता के भ्राता के पुत्र) को सूचित करता है और 'फडस' वसीयतहीन के पिता की पुत्री के पुत्र (बहिन के पुत्र) को सूचित करता है।

(१) (अ) 'सडसस' (पुत्र की पुत्री के पुत्र का पुत्र), तथा (इ) 'फडडस, (बहिन की पुत्री का पुत्र); इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहां (इ) जो कि पूर्वज की एक कोटि के वंशक्रम में आता है, इसकी बजाए (अ), जो कि पूर्वजों के वंशक्रम की कोई भी कोटि नहीं रखता, उसे विशेषता दी जाएगी।

(२) (१) 'फडडड' (बहिन की बेटी की बेटी) और दो (२) 'मफससड' (मामा के पुत्र की बेटी), इस प्रकार के दो प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहाँ प्रथम दर्शित वारिस को जो कि पूर्वजों की बनिस्बत एक मात्र पंक्ति का वंशज है, उसे अन्तिम दर्शित वारिस, जो कि उक्त प्रकार की दो पंक्तियों का वंशज है उस पर विशेषता दी जाएगी।

(३) (१) 'फडससस' (बहिन के पुत्र का पुत्र) और

(२) 'मफससड' (मामा के पुत्र की बेटी) इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी वारिस हैं। यहां प्रथमोक्त उत्तराधिकारी, जो कि केवल एक श्रेणी का वंशज है, उसे

अंतिम दर्शित उत्तराधिकारी की अपेक्षा, जो कि दो श्रेणियों का वंशज है, विशेषता दी जायगी।

(४) (१) 'मफडसस' (मां की बहिन के बेटे का बेटा) और (२) 'मफफडस' (मां के बाप की बहन का बेटा) इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहां पूर्वोक्त उत्तराधिकारी, जो कि दो कोटि का वंशज है उसे अन्तिम वर्णित उत्तराधिकारी की अपेक्षा, जो कि तीन कोटियों का ऐसा वंशज है, विशेषता दी जाएगी।

(५) (१) 'मफम' (माता के पिता की माता) और (२) 'फफफडसस' (पिता के पिता की बहिन के पुत्र का पुत्र) इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहां पर दोनों हालतों में पूर्वजों की श्रेणी समानसंख्य अर्थात् तीन हैं किन्तु पूर्वोक्त उत्तराधिकारी वंशज की किसी भी श्रेणी में नहीं आता और अन्तिम दर्शित उत्तराधिकारी तीसरी श्रेणी का ऐसा वंशज होता है। यथा पूर्वोक्त (१) को विशेषता दी जायगी।

(६) (१) 'फमफ' (पिता की मां का बाप) और (२) 'मफफ' (मां के बाप का बाप)। यहां पर दोनों हालतों में पूर्वजों की श्रेणी समानसंख्य हैं और वंशज की कोई भी श्रेणी नहीं। दोनों उत्तराधिकारियों का वंशक्रम पहले केन्द्र से ही बदल जाता है, जैसा कि (१) संख्या द्वारा संबोधित उत्तराधिकारी पुरुष पंक्ति में और (२) संख्या वाला उत्तराधिकारी स्त्री पंक्ति में वंशक्रम रखता है। अतः (१) संख्या वाले वारिस को (२) संख्या वाले पर विशेषता दी जाएगी।

(७) (१) 'फडसस' (बहिन के बेटे का बेटा) और (२) 'फडडस' (बहिन की बेटी का बेटा) इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी वारिस हैं। यहां दोनों उत्तराधिकारी पूर्वजों तथा वंश की श्रेणिओं के सम्बन्ध में निकटवर्ती हैं। वंशक्रम में भिन्नता तीसरे केन्द्र पर उत्पन्न होती है और इस केन्द्र पर नम्बर (१) का समावेश पुरुष पंक्ति और नम्बर (२) का स्त्री पंक्ति में है: अतः नम्बर (१) को ही विशेषता दी जाएगी।

(८) (१) 'फमफसस' (पिता की माता के भ्राता का पुत्र) और (२) 'फमफडस' (पिता की माता की बहिन का पुत्र) इस प्रकार दो प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहां प्रथमोक्त उत्तराधिकारी को विशेषता दी जाएगी।

(९) (१) 'फडडस' (बहिन की पुत्री का पुत्र) और (२) 'फडडड' (बहिन की पुत्री की पुत्री) इस प्रकार प्रतिस्पर्धी उत्तराधिकारी हैं। यहां पर पूर्वोक्त को विशेषता दी जाएगी।

१०५. वंशक्रम की श्रेणी अथवा कोटियों की गणना —

(१) गोत्रजों और बन्धुओं में उत्तराधिकार का क्रम निश्चित करने के प्रयोजनों के लिये रिश्तेदारी की गणना वसीयतहीन से लेकर उत्तराधिकारी तक पूर्वज और वंशज की श्रेणी एवं कोटि अनुसार, अथवा दोनों की कोटि अनुसार जैसी की सूरत होगी की जाएगी।

(२) पूर्वज और वंशज की कोटियों की गणना वसीयतहीन के सिवा की जाएगी।

(३) प्रत्येक पुश्त या पीढ़ी एक पूर्वज सम्बन्धी या वंश सम्बन्धी कोटि एवं श्रेणी विचारी जाएगी।

उदाहरण

(१) यहां पर विचार करने योग्य उत्तराधिकारी वसीयतहीन के पिता की माता का पिता है। यह वंशज की कोई कोटि नहीं रखता किन्तु पूर्वजों की तीन श्रेणियां रखता है जोकि निम्न क्रम में हैं (१) वसीयतहीन का पिता, (२) उक्त पिता की माता और (३) उसका पिता (अर्थात् उत्तराधिकारी स्वयं)।

(२) विचार करने योग्य उत्तराधिकारणी वसीयतहीन के पिता की माता के पिता की माता है। यह वंशज की कोई श्रेणी नहीं रखती, किन्तु पूर्वजों की चार कोटियां रखती है जो कि निम्न क्रम में हैं (१) वसीयतहीन का बाप, (२) पिता की माता, (३) उसका पिता और (४) उसकी माता (अर्थात् स्वयं उत्तराधिकारिणी)।

(३) विचाराधीन उत्तराधिकारिणी वसीयतहीन के पुत्र की पुत्री के पुत्र की पुत्री है। वह पूर्वज की कोई कोटि नहीं रखती, किन्तु वंशज की चार श्रेणियां रखती है जो कि निम्न क्रमानुसार हैं (१) वसीयतहीन का पुत्र, (२) इस पुत्र की बेटी, (३) उक्त बेटी का पुत्र और (४) इसकी पुत्री (अर्थात् उत्तराधिकारिणी)।

(४) विचारान्तर्गत उत्तराधिकारी, वसीयतहीन की माता के बाप के बाप की पुत्री का बेटा है। यह पूर्वज की तीन कोटि रखता है जो कि निम्न क्रमानुसार हैं :

(१) वसीयतहीन की माता, (२) इसका पिता तथा (३) उक्त पिता का बाप, और वंशज की दो श्रेणियों में से है जो कि निम्न क्रमानुसार हैं (१) समान पूर्वज की पुत्री, अर्थात्, माता के पिता की पुत्री और (२) इसका बेटा (अर्थात् उत्तराधिकारी स्वयं)।

हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तराधिकार

१०६. हिन्दू स्त्री के उत्तराधिकारी—जो स्त्री बिना वसीयत किये मर जाएगी तो उस की सम्पत्ति की उस हद तक कि जिस हद तक का इस भाग के विधानों में जिक्र किया गया है निम्न दर्शित उत्तराधिकारी होंगे—

(अ) पहिले तो पति और सन्तान, जिसमें कि मरे हुए किसी भी सन्तान की सन्तान का भी समावेश होगा, वह उत्तराधिकारी होंगे, और (इ) इसके बाद यदि वाक्य-खण्ड (अ) में निश्चित कोई उत्तराधिकारी ही न हो तो धारा १०१ में निश्चित किये हुए वारिस उसमें दर्शित क्रम अनुसार उत्तराधिकारी के हक़ रखेंगे।

१०७. उत्तराधिकारियों में हिस्सों का बटवारा—

जहां कोई हिन्दूस्त्री अपने पति और सन्तानों को छोड़ कर बेवसीयत मर जाती है तो उसहालत में वह सम्पत्ति जिसके कि सम्बन्ध में वह बगैर वसीयत किये ही मर जाती है उसके पति और सन्तानों में इस प्रकार बांटी जायगी जिससे कि उन सबको बराबर हिस्सा मिले।

(२) जहां कोई हिन्दू स्त्री पति के सिवा केवल सन्तानों को ही छोड़ कर बेवसीयत मर जाती है तो, उस हालत में वह सम्पत्ति जिसके कि सम्बन्ध में वह बगैर वसीयत के मर जाती है उसकी सन्तानों के बीच इस प्रकार बांटी जाएगी जिससे कि उन सबको समान हिस्सा मिले।

(३) यदि बेवसीयत मर जाने वाली हिन्दू स्त्री का कोई बच्चा उसके जीवन काल में ही ऐसी सन्तति छोड़ कर मर गया है जो कि उसके मृत्यु के समय जीवित थे तो, उस हालत में, ऐसे बच्चे की सन्तानों को सम्पत्ति का वह हिस्सा मिलेगा जो यदि उक्त बच्चा वसीयतहीन के मृत्यु पर जीवित होता तो उसको मिलता।

१०८. सन्तति के न होने पर पति ही उत्तराधिकारी होगा—

जहां कोई हिन्दू स्त्री पति को छोड़ कर बेवसीयत मर जाती है, परन्तु कोई सन्तान, जिसमें कि उसके जीवन-काल में ही मर जाने वाले बच्चे की ऐसी सन्तति का भी समावेश होगा जो कि धारा १०७ के अधीन उत्तराधिकारी के हक़ रख सकते हैं, नहीं छोड़ जाती तो, उस हालत में, वह सम्पत्ति जिसके सम्बन्ध में वह वसीयत किये बिना मर जाती है पति के उत्तराधिकार में आ जाएगी।

१०६. स्त्री-सम्पत्ति के अन्य वारिस—

जहां कोई हिन्दू स्त्री धारा १०७ और धारा १०८ में निश्चित वारिसों को छोड़े बगैरबेवसीयत मर जातीहै, तो उस हालत में, वह सम्पत्ति जिसके सम्बन्ध में वह बेवसीयत मर जाती है, निम्नांकित वारिसों के उत्तराधिकार में, निम्न क्रमानुसार चली जाएगी, यथाः—

(१) माता, पिता;

(२) पति के उत्तराधिकारी उसी क्रम से और उसी नियम के अनुसार होंगे जो उसकी अपनी सम्पत्ति होने पर लागू होता और वह उस सम्पत्ति का बिना वसीयत अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् तत्काल मर गया होता ;

(३) माता के उत्तराधिकारी उस क्रम और उसी नियम के अनुसार होंगे जो उसकी अपनी सम्पत्ति होने पर लागू होता और वह उस सम्पत्ति का बिना वसीयत किये हुए अपनी पुत्री की मृत्यु के तुरन्त ही बाद मर गई होती।

(४) पिता के उत्तराधिकारी उस क्रम से और उसी नियम के अनुसार होंगे जो उसकी अपनी सम्पत्ति होने पर लागू होता और वह उस सम्पत्ति के बिना वसीयत किये हुए अपनी पुत्री के देहान्त के पश्चात् तत्काल मर गया होता।

वानप्रस्थियों की सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तराधिकार

११०. वानप्रस्थियों इत्यादि के लिये नियम—उस हालत में जब कि कोई व्यक्ति वानप्रस्थी यति या सन्यासी अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर सम्पूर्ण रूप से या सदा के लिये संसार त्याग दे तो उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को उसी क्रम और उसी नियम के अनुसार प्राप्त होगी मानो कि वह संसार को त्याग देने के समय उस सम्पत्ति के सम्बन्ध में बिना वसीयत किये ही मर चुका था।

(२) संसार का त्याग करने के बाद यदि वह कोई सम्पत्ति उपार्जन करेगा तो वह उस की मृत्यु के बाद सम्बन्धियों को नहीं मिलेगी किन्तु निम्नांकित विधि अनुसार बांटी जाएगी :—

(अ) वानप्रस्थी की दशा में उसके ही आश्रम के उसके धर्म-बन्धु को;

(इ) यति एवं सन्यासी की दशा में उसके रस्म और रिवाज के अधीन उसके धर्मपरायण शिष्य को, और

(उ) नैष्ठिक ब्रह्मचारी की दशा में उसके आचार्य को सम्पत्ति मिलेगी।

उत्तराधिकार के सम्बन्ध में सामान्य विधान

१११. अर्ध-रक्त युक्त की अपेक्षा पूर्ण-रक्त-युक्त को विशेषता दी जायेगी—

वसीयत हीन के साथ सम्बन्ध रखने वाले उत्तराधिकारियों में, पूर्णरक्त-युक्त सम्बन्धी को अर्धरक्त-युक्त सम्बन्धी की अपेक्षा प्रथम विशेषता दी जाएगी बशर्ते कि अन्य तमाम हालतों में उक्त रिश्ते समान प्रकार के हों।

उदाहरण

(१) पूर्ण-रक्त युक्त भ्राता को अर्ध-रक्त-युक्त भ्राता की अपेक्षा विशेषता दी जाएगी, किन्तु अर्ध-रक्त-युक्त भ्राता को पूर्ण-रक्त युक्त भ्राता के पुत्र से पहिले उत्तराधिकार के हक हासिल होंगे, क्योंकि वह भ्राता के पुत्र से नज़-दीकी वारिस है।

(२) अर्ध-रक्त युक्त चाचा को पूर्णरक्त-युक्त चाचा के पुत्र की अपेक्षा विशेषता पहले मिलेगी क्योंकि एक चाचा बनिस्बत चचेरे भाई के निकटवर्ती वारिस है।

(३) पूर्ण-रक्त-युक्त भाई की बेटी की बेटी को अर्ध-रक्त-युक्त भ्राता की बेटी की बेटी की अपेक्षा विशेषता दी जाएगी किन्तु पूर्वोक्त को अर्ध-रक्त युक्त भ्राता की बेटी के पुत्र पर विशेषता नहीं मिलेगी क्योंकि इन दो दशाओं में रिश्ते की हालत एक जैसी नहीं। अन्तिम दर्शित वारिस को ही जो कि धारा १०४ के नियम ४ के अनुसार निकटवर्ती उत्तराधिकारी है, इस हकीकत के बावजूद कि वह सिर्फ अर्ध-रक्त युक्त सम्बन्धी है, विशेषता दी जायगी।

११२. दो या दो से अधिक वारिसों को किस प्रकार उत्तराधिकार हासिल होगा—

यदि दो अथवा दो से अधिक वारिसों को साथ साथ उत्तराधिकार मिलने वाला हो तो वह निम्न प्रकार सम्पत्ति प्राप्त करेंगे—

(अ) इस भाग में यदि स्पष्ट रूप से कोई परीतवि विधान मौजूद नहीं है तो, उस हालत में, उक्त सम्पत्ति प्रति मनुष्य के, और न कि प्रति परिवार के, अधिकार में चली जाएगी, तथा

(इ) बतौर सम्मिलित आसामी के और न कि संयुक्त आसामी के हासिल होगी।

११३. गर्भान्तर्गत बालक का अधिकार—

ऐसा व्यक्ति जो कि वसीयतहीन की मृत्यु पर गर्भ में था और जो बाद में जीवित जन्मा है, उसे, वसीयतहीन के उत्तराधिकार उसी प्रकार प्राप्त होंगे कि जिस प्रकार कि वह, यदि वसीयतहीन की मृत्यु के पहले पैदा हुआ होता, तो हासिल करता। ऐसी दशा में उत्तराधिकार वसीयतहीन की मृत्यु-तिथि से ही उक्त व्यक्ति के अधिकारान्तर्गत चले गये हैं ऐसा विचारा जाएगा।

११४. उत्तर-जीवन के बारे में अनुमान—

यदि दो व्यक्तियों का देहान्त ऐसी स्थिति में हुआ है जिस से कि इस बात का पता लगाना कठिन है कि आया दोनों में से कोई एक दूसरे के बाद जीवित रहा था या नहीं और यदि था तो वह कौन था, तो, इस दशा में ऐसे समस्त प्रयोजनों के लिये जो कि सम्पत्ति विषयक उत्तराधिकार पर प्रभाव डालते हैं, दोनों में से छोटा बड़े के बाद जीवित रहा, जहां तक कि इस के विरुद्ध कोई बात सिद्ध न होगी वहां तक ऐसा अनुमान किया जाएगा।

११५. किन्हीं खास हालतों में विभाजन ऐक्ट (Partition Act) सन् १८९३ ई० का लागू होना—

जहां इस कोड के आरम्भ हो जाने के बाद वसीयतहीन की किसी अचल सम्पत्ति में तथा उक्त वसीयतहीन द्वारा अकेले ही या किसी अन्य व्यक्तियों के साथ चलाये जाने वाले कारोबार में कोई हिस्सा वसीयतहीन के एक या एक से अधिक पुत्रों, पौत्र या प्रपौत्र को, बतौर विरासत के, अन्य रिश्तेदारों के, साथ साथ, मिलने वाला है और उत्तराधिकारियों में से कोई एक बटवारे के लिये कानूनी कार्यवाही करता है तो, इस हालत में सन् १८९३ ई० के विभाजन ऐक्ट के विधान इस प्रकार लागू होंगे गोया कि बटवारा हो चुका था और गोया कि उक्त उत्तराधिकारी अथवा उत्तराधिकारिणी वह व्यक्ति थी जिसको कि निवास-स्थान का हिस्सा हस्तान्तरित होने वाला था तथा वसीयतहीन का परिवार एक अविभक्त परिवार था।

उत्तराधिकारियों की अयोग्यता

११६. वानप्रस्थी, इत्यादि योग्यता नहीं रखते—

कोई व्यक्ति जिसने कि सम्पूर्ण रूप से और सदा के लिए धारा ११० की उपधारा (१) में वर्णित किसी तरीके से संसार का त्याग कर दिया है तो वह अपने निजी सम्बन्धी, और विवाह या दत्तक लिये जाने के रूप में सम्बन्धी की सम्पत्ति को पाने का हकदार नहीं होगा।

११७. अपतिव्रता पत्नी योग्यता नहीं रखती—

एक स्त्री जो कि विवाह के बाद अपने पति के जीवन काल में अपतिव्रता रही है वह अपने पति की सम्पत्ति पाने की हकदार नहीं होगी, जब तक कि उसके पति ने उसके अपतिव्रत को क्षमा न कर दिया हो।

किंतु प्रतिबन्ध यह है कि किसी स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति पाने के हक पर उपर्युक्त कारण से एतराज नहीं किया जायेगा जब तक कि किसी अदालत ने उसे किसी ऐसे मुकदमे में अपतिव्रत प्रमाणित न किया हो जिसमें कि वह और उसका पति फरीक थे और जिसमें विशेष रूप से यह बात विचाराधीन थी और जिसके निर्णय को बाद में किसी अदालत ने उलट न दिया हो।

११८. कुछ विधवायें पुनर्विवाह करने पर अयोग्य ठहराई जाएंगी—

पहिले से मरे हुए पुत्र की विधवा, पहिले से मरे हुए पुत्र के मृत पुत्र की विधवा, पिता की विधवा और भाई की विधवा को उत्तराधिकार सम्बन्धी कोई हक हासिल नहीं होंगे यदि विरासत के शुरू होने की तारीख पर उन्होंने पुनर्विवाह कर लिये होंगे।

११९. हत्यारा योग्यता नहीं रखता—

जो व्यक्ति हत्या करेगा या हत्या करने में सहायता देगा वह वध किये गये व्यक्ति की सम्पत्ति, या किसी अन्य ऐसी सम्पत्ति, कि जिसके पाने के लिए उस पुरुष या स्त्री ने हत्या की हो या हत्या करने में सहायता दी हो, पाने का हकदार नहीं होगा।

१२०. धर्म परिवर्तन करने वाला योग्यता नहीं रखता—

जहां इस कोड के प्रारम्भ होने से पहिले या बाद कोई हिंदू धर्म परिवर्तन करके अन्य धर्मावलम्बी बन जाने के कारण हिंदू न रह गया हो या अहिंदू बन चुका हो, तो इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन के पश्चात्, उस पुरुष या उस स्त्री से जो बच्चे उत्पन्न होंगे, तथा उनकी सन्तान, अपने किसी हिंदू सम्बन्धी की सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार न रखेगी जब तक कि ऐसे बच्चे या सन्तान उत्तराधिकार शुरू होने के समय हिंदू नहीं हैं।

१२१. उत्तराधिकारी के अयोग्य होने पर उत्तराधिकारी—

यदि इस भाग के अधीन कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को विरासत में पाने का हक़दार न हो तो उस सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धी इस प्रकार व्यवस्था की जाएगी कि मानो वह व्यक्ति वसीयतहीन से पहिले ही मर गया हो।

१२२. व्याधि, विकारादि से कोई अयोग्य नहीं होता—

व्याधि, विकार एवं कुरूप होने के कारण कोई व्यक्ति सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित नहीं होगा या किसी अन्य कारणवश वंचित नहीं किया जाएगा सिवाए कि जैसा इस भाग में वर्णित किया गया है।

उत्तराधिकारहीन सम्पत्ति

१२३. उत्तराधिकारियों का न होना—

यदि वसीयतहीन कोई ऐसा उत्तराधिकारी नहीं छोड़ जाता जो उस पुरुष या स्त्री की सम्पत्ति का इस भाग के विधानों के अनुसार उत्तराधिकारी होने की योग्यता रखता हो तो वह सम्पत्ति सरकार के अधिकारान्तर्गत चली जाएगी और सरकार उस सम्पत्ति को उस पर किये गये ऋण और उत्तरदायित्वों के साथ लेगी जिस प्रकार एक उत्तराधिकारी लेता है।

अध्याय ३

वसीयत द्वारा उपलब्ध सम्पत्ति के बारे में उत्तराधिकार

१२४. वसीयत द्वारा उपलब्ध सम्पत्ति के बारे में उत्तराधिकार—

(१) कोई भी हिन्दू ऐसी किसी भी सम्पत्ति के वसीयतनामा या मृत्यु-पत्र द्वारा व्यवस्था कर सकता है जो कि सन् १९२५ ई० के भारतीय उत्तराधिकार (इण्डियन सक्सेशन) ऐक्ट (सन् १९२५ ई० के ऐक्ट संख्या ३९) के विधानों के अनुसार, अथवा उस समय प्रवर्त्तमान हिन्दुओं पर लागू हो सकने वाले किसी ऐसे अन्य कानून के अनुसार, उस द्वारा इस प्रकार व्यवस्थित होने की योग्यता रखती है।

(२) इस धारा में उल्लिखित कोई बात किसी हिन्दू को यह सत्ता नहीं देती कि वह—

(अ) किसी व्यक्ति को भरण-पोषण के ऐसे अधिकार से वंचित करे जिसके लिये कि उक्त व्यक्ति प्रस्तुत कोड के विधानों के अनुसार, अथवा उस समय प्रवर्त्तमान किसी अन्य कानून के अनुसार, हक़दार है।

(इ) सम्पत्ति में ऐसा कोई हित अथवा हक़ को पैदा करे जो कि वह पुरुष एवं स्त्री कानूनन नहीं पैदा कर सकती।

भाग ८ : भरण-पोषण (गुजारा)

१२५. भरण-पोषण की व्याख्या—

प्रस्तुत भाग में शब्द प्रयोग 'भरण-पोषण' में निम्नांकित का समावेश होगा—

(१) सब हालतों में अन्न, वस्त्र, निवास, शिक्षण तथा भैषजिक सुविधाओं का प्रबन्ध करना; तथा

(२) बिन-ब्याही पुत्री की दशा में, उसके विवाह और तत्सम्बन्धी उचित खर्च परिवारगणों का भरण-पोषण व्यक्तिगत उत्तरदायित्व माना जायगा।

१२६. पत्नी का भरण-पोषण—

(१) प्रस्तुत कोड के विधानों की सीमा में एक हिन्दू पत्नी को यह हक़ हासिल होगा, फिर चाहे उसका विवाह इस कोड के प्रारम्भ से पहिले हुआ हो या बाद में, कि वह अपने पति के जीवन-काल में पति द्वारा, तथा उसकी मृत्यु के बाद उसके पिता द्वारा भरण-पोषण हासिल करे।

(२) एक हिन्दू पत्नी को सिर्फ उस हालत में जब कि वह अपने पति के साथ रहती है, तथा केवल मात्र उस वक्त तक जहां तक कि वह अपने पति के पास रहती है, भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार होगा।

लेकिन शर्त यह है कि वह निम्नलिखित दशाओं में जीविका (गुज़ारा) प्राप्त करने के अपने अधिकार से वंचित हुए बगैर भी उससे अलग रहने का हक़ रख सकती है—

(अ) यदि वह पति किसी घृणात्मक व्याधि से पीड़ित है;

(इ) यदि वह उसी निवासस्थान में जहां कि उसकी पत्नी रहती है किसी वेश्या को साथ रखता है;

(उ) यदि वह ऐसी क्रूरता का दोषी है जिसके कारण उसकी पत्नी का उसके साथ रहना भयावह एवं अवाञ्छनीय है;

(ऊ) यदि उसने अपनी पत्नी के परित्याग का जुर्म किया है अर्थात् अपनी पत्नी को किसी घटित कारण के बिना, या पत्नी की सम्मति के बगैर, अथवा उसकी इच्छा के खिलाफ़ छोड़ दिया है;

(ए) यदि वह धर्मपरिवर्त्तन द्वारा अन्य धर्म्मावलम्बी बनकर अहिन्दू बन चुका है;

(ऐ) यदि कोई अन्य ऐसा कारण है कि जिसके परिणामस्वरूप इसका अलग रहना जायज़ करार कर दिया जा सकता है।

(३) यदि कोई हिन्दू पत्नी अपतिव्रता है अथवा धर्मपरिवर्त्तन द्वारा अन्य धर्म्मावलम्बी बनकर अहिन्दू बन चुकी है तो, उस हालत में, उसे अलग रहने तथा भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार नहीं होगा।

१२७. विधवा पुत्र-वधू का भरण-पोषण—

धारा १२६ के अधीन ससुर का अपनी विधवा पुत्रवधू के भरण-पोषण के बारे में जो कर्त्तव्य नियत किया गया है वह केवल उक्त ससुर की आर्थिक समर्थता के अन्दर सीमित रहेगा, और इस कर्त्तव्य का पालन सिर्फ उस हालत में होगा जबकि विधवा पुत्रवधू अपनी स्वयं की सम्पत्ति में से, अथवा अपने पति की जायदाद से या अपने पुत्र द्वारा यदि कोई हो तो, अथवा उसकी जायदाद से, अपना जीवन-निर्वाह नहीं चला सकती। इसके पुनर्विवाह पर ऐसे किसी भी कर्त्तव्य का अन्त हो जाएगा।

१२८. बच्चों और जराग्रस्त माता-पिता का भरण-पोषण—

(१) इस धारा के विधानों की सीमा में, एक हिन्दू अपने जीवन काल में, अपनी जायज़ एवं नाजायज़ सन्तान तथा जराग्रस्त माता-पिता के भरण-पोषण के लिये बाध्य होगा।

(२) कोई जायज़ एवं नाजायज़ बालक, जब तक कि वह नाबालिग है, अपने पिता से भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार रख सकता है,

बशर्ते कि किसी अविवाहित बेटी की हालत में वह अपने पिता से उस वक्त तक जीविका हासिल करने का अधिकार रख सकती है जब तक कि वह उसके साथ रहती है और अविवाहिता है।

(३) एक पिता यदि वह जराग्रस्त तथा दुर्बल है तो अपने बेटे से भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार रख सकता है।

१२६. बच्चों का मां द्वारा भरण-पोषण—

एक हिन्दू स्त्री अपने जीवन काल में, अपने जायज़ और नाजायज़ (illegitimate) सन्तति के भरण-पोषण के लिये बाध्य होगी, यदि उसका पति ऐसा नहीं कर सकता, और इसके पास उनके भरण-पोषण के लिये आवश्यक साधन मौजूद हैं।

विरासत द्वारा उपलब्ध सम्पत्ति से आश्रितों के भरण-पोषण के बारे में उत्तराधिकारी की जिम्मेवारी

१३०. आश्रितों का भरण पोषण—

(१) धारा १३१ के विधानों की सीमा में मृत हिन्दू के उत्तराधिकारी, मृत व्यक्ति के आश्रितों का, मृत व्यक्ति द्वारा उत्तराधिकारी में मिली हुई सम्पत्ति में से भरण-पोषण करने लिये बाध्य होंगे।

(२) प्रस्तुत भाग के प्रयोजनों के लिये मृत व्यक्ति के निम्नांकित सम्बन्धी उसके आश्रित विचारे जाएंगे, यथाः—

(१) उसका बाप;

(२) उसकी मां;

(३) विधवा जब तक कि वह पुनर्विवाह नहीं करती;

(४) कोई पुत्र, या पहिले से मरे हुए पुत्र का पुत्र, अथवा पहिले मरे हुए पुत्र के पहिले मर गये पुत्र का पुत्र जो नाबालिग है, जब तक कि वह नाबालिग है बशर्ते कि उस हद तक जितना कि, पोते की हालत में अपने बाप की जायदाद से और परपोते की हालत में अपने बाप या बाप के बाप की जायदाद से, भरण-पोषण वह न पा सके;

(५) उसकी कुमारी पुत्री जहाँ तक कि वह अविवाहित रहे;

(६) उसकी विवाहिता पुत्री :

बशर्ते कि, तथा उस हद तक जिस तक, कि वह अपने पति से, या, यदि कोई हो तो, पुत्र से अथवा पुत्र को उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति में से कोई जीविका उपार्जित नहीं कर सकती;

(७) उसकी विधवा बेटी :

बशर्तें कि, तथा उस हद तक जिस तक कि वह निम्नलिखित में से कोई

जीविका उपार्जित नहीं कर सकती—

(अ) अपने पति को उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति में से,

(इ) अपने पुत्र से, यदि कोई हो तो, अथवा उसको उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति में से, या

(उ) अपने ससुर से, अथवा ससुर के बाप से, या उन दोनों में किसी को भी उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति में से;

(८) उसके पुत्र की कोई भी विधवा अथवा पहिले से ही मरे हुए पुत्र के बेटे की कोई भी विधवा जहां तक वह पुनर्विवाह नहीं करती :

बशर्ते कि, तथा उस हद तक कि जहां तक, वह अपने पति को उत्तराधिकार में मिली हुई सम्पत्ति में से, या, यदि कोई हो तो पुत्र से, अथवा पुत्र को विरासत में मिली हुई सम्पत्ति में से; या, पौत्र की विधवा की हालत में, अपने ससुर को उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त जायदाद में से भी कोई जीविका उपार्जित नहीं कर सकती;

(९) उसका नाबालिग नाजायज़, (illegitimate) बेटा, जब तक कि वह नाबालिग है;

(१०) उसकी अविवाहिता नाबालिग बेटी, जब तक कि वह नाबालिग है।

१३१. आश्रितों के भरण-पोषण के लिये उत्तराधिकारी कहां तक जिम्मेवार हैं—

जहां किसी आश्रित ने, वसीयती अथवा बेवसीयती उत्तराधिकार द्वारा, प्रस्तुत कोड के प्रारम्भ के पश्चात् मर जाने वाले किसी हिंदू पुरुष की जायदाद में, कोई हिस्सा हासिल नहीं किया, या

जहां, वसीयती उत्तराधिकार की हालत में, उक्त आश्रित द्वारा उपलब्ध हिस्सा, किसी ऐसी रकम से कम है जो कि इस भाग के अधीन उस स्त्री या पुरुष आश्रित को बतौर भरण-पोषण के दिया जा सकता है।

तो उक्त हालत में वह पुरुष या स्त्री आश्रित, इस भाग के विधानों की सीमा में, उन लोगों से भरण-पोषण हासिल करने की अधिकारी होगी जो कि उत्तराधिकार द्वारा सम्पत्ति पाते हैं :

बशर्ते कि प्रत्येक उत्तराधिकारी एवं उत्तराधिकारिणी की ज़िम्मेवारी उस द्वारा प्राप्त हिस्सा अथवा सम्पत्ति के भाग के मूल्य के अनुसार होगी।

अधिक शर्त यह है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) जो स्वयं एक आश्रित है, अन्य व्यक्तियों के भरण-पोषण के लिये किसी रकम की

अदायगी के लिये जिम्मेवार नहीं होगा, यदि उस पुरुष एवं स्त्री ने ऐसा कोई हिस्सा या भाग हासिल किया है जिसका कि मूल्य, ऐसी किसी रकम से कम है, या कम हो जाता है यदि भरण-पोषण की ज़िम्मेवारी उस पर आयद की जाती जो कि इस भाग के अधीन उस पुरुष अथवा स्त्री को बतौर भरण-पोषण के दी जाती।

१३२. भरण-पोषण की रकम—इस भाग के अधीन पत्नी, सन्तति और जराग्रस्त माता पिता को दिये जाने वाले भरण-पोषण की, यदि कोई हो तो, रकम का निश्चय करने के समय निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दिया जाएगा—

(अ) पक्षों की स्थिति तथा सामाजिक स्थान;

(इ) अधियाचन करने वाले की उचित आवश्यकतायें;

(उ) यदि याचना करने वाला पिता से अलग रहता है तो आया उसका ऐसा करना न्याय-संगत है;

(ऋ) भरण-पोषण के लिये याचना करने वाले की सम्पत्ति का मूल्य तथा उस सम्पत्ति द्वारा, अथवा याचना करने वाले की अपनी या किसी अन्य उपाय द्वारा, उपार्जित आमदनी;

(ए) उन व्यक्तियों की संख्या जो कि इस भाग के विधानों के अधीन भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

(२) इस भाग के अधीन आश्रितों को दिये जाने वाले भरण-पोषण की, यदि कोई हो तो, रकम का निश्चय करते वक्त निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दिया जायगा—

(अ) मृत व्यक्ति के सभी कर्जों की चुकती का प्रबन्ध करने के बाद उसकी जायदाद की नकद-बचत;

(इ) मृत व्यक्ति के वसीयत के अधीन किसी आश्रित के सम्बन्ध में की जाने वाली व्यवस्था, यदि कोई हो तो;

(उ) मृतक व्यक्ति और उसके आश्रित की स्थिति और सामाजिक स्थान;

(ए) आश्रित की वाजिब जरूरतें;

(ऐ) मृत व्यक्ति और आश्रित के बीच पहिले जैसा सम्बन्ध रहा हो;

(ओ) स्त्री एवं पुरुष आश्रित की सम्पत्ति का मूल्य तथा उस सम्पत्ति द्वारा अथवा उस स्त्री एवं पुरुष की स्वयं की कमाई या किसी अन्य उपाय द्वारा, उपार्जित आमदनी;

(औ) उन आश्रितों की संख्या जो कि इस भाग के विधानों के आधीन भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकारी हैं;

(अं) किसी विधवा की हालत में, उसका आचरण।

१३३. भरण-पोषण की रकम अदालत अपनी इच्छानुसार मुकर्रर करेगी—

अदालत को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि किसी आश्रित को, इस भाग के विधानों के आधीन, कोई भरण-पोषण मिलेगा या नहीं तथा यदि मिलेगा तो कितना मिलेगा, अदालत धारा १३२ की उपधारा (१) में, या उप धारा (२) में, जैसा कि सूरत होगी, बताई बातों का, जहां तक वे लागू हो सकेंगी, ख्याल करते हुए निर्णय करेगी।

(२) अविवाहित पुत्री के विवाह के लिये जो ..चें दिया जाएगा वह किसी भी दशा में उस रकम के अर्ध-भाग से अधिक न होगा जो उसको मृत व्यक्ति द्वारा विरासत में मिलती यदि वह मृत व्यक्ति बेवसीयत ही मर गया होता।

१३४. परिस्थितियों के परिवर्त्तन पर भरण-पोषण की रकम में कमीबेशी—भरण-पोषण की रकम में, जो कि इस कोड के प्रारम्भ से पहले या बाद, चाहे अदालत की डिगरी द्वारा निश्चित की गई हो अथवा आपस की रजामन्दी से, आगे चल कर कमीबेशी की जा सकती है यदि परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण भेद आ जाने से ऐसा अदल-बदल उचित विचारा जाय।

१३५. देन की चुकती सबसे पहले होगी—

इस भाग में सम्मिलित अन्य विधानों की सीमा में, मृत व्यक्ति द्वारा लिये हुए सभी किस्म के कर्ज़ अथवा देन की चुकती उसके आश्रितों के भरण-पोषण के दावे से पहिले होगी।

१३६. भरण-पोषण कब प्रभार(charge) होगा—

इस भाग के विधानों के अधीन आश्रित का भरण-पोषण का दावा मृत व्यक्ति की जायदाद या उसके किसी हिस्से पर बतौर एक प्रभार के तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि मृत व्यक्ति ने कोई ऐसा वसीयतनामा न किया हो, या अदालत से डिगरी न मिली हो, या जायदाद एवं उसके किसी हिस्सा के मालिक और आश्रित के बीच का कोई एकरारनामा न हुआ हो या और किसी प्रकार ऐसा न किया गया हो।

१३७. हस्तान्तरण (transfer) जहां कि तृतीय व्यक्ति को भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार है—

जहां कि किसी जायदाद से भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार

कोई तृतीय व्यक्ति रखता है और ऐसी जायदाद या उस जायदाद का कोई हिस्सा हस्तान्तरित हो चुका है तो, उस हालत में, जिसे वह जायदाद एवं हिस्सा हस्तान्तरित किया गया है उस व्यक्ति के ख़िलाफ़ भरण-पोषण करने का अधिकार लागू किया जायगा यदि जिसे हस्तान्तरण (इन्तकाल) किया गया है उस व्यक्ति को ऐसे अधिकार के अस्तित्व का पता हो, और ऐसी दशा में उक्त अधिकार सम्पत्ति के खिलाफ़ उस हद तक प्रभावकारी हो सकेगा जिस हद तक कि वह प्रस्तुत कोड स्वीकृत न होने की सूरत में प्रभावकारी होने योग्य होता।

भाग ६ : विविध

१३८. नियम बनाने के अधिकार :—

(१) इस कोड के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनार्थ प्रान्तीय सरकार नियम बना सकती है।

(२) ऐसे नियम विशेषरूप तथा पूर्वोक्त सत्ता की सार्वजनिकता को हानि पहुँचाये बगैर निम्न मामलों को नियन्त्रित कर सकते हैं, यथा—

(१) ऐसे शास्त्रीय विवाहों सम्बन्धी मामले जोकि हिन्दू शास्त्रीय विवाहों के रजिस्टर में दर्ज किये जा सकते हैं और वह तरीका और हालतें जिसके कि अधीन उक्त मदें दर्ज की जायेंगी।

(२) ऐसी हालतें और क्षेत्र जिसमें कि शास्त्रीय विवाहों के मामले मजबूरन दर्ज किये जायेंगे और इस बारे में किये गये किसी भी उल्लंघन के लिये सज़ा।

(३) वह क्षेत्र जिन के लिये कि मैरेज (विवाहों के) रजिस्ट्रार नियुक्त किये जायेंगे और इनके कर्त्तव्य तथा अधिकार।

(४) वह तरीका जिस के अनुसार हिन्दू शास्त्रीय विवाहों के रजिस्टर, और हिन्दू सिविल मैरेज नोटिस बुक, रखी जाएंगी तथा तरीका जिसके क अनुसार धारा १२ के अधीन दिये जाने वाले विवाहों के नोटिस (सूचनायें प्रकाशित होंगे।

(५) तरीका जिसके कि अनुसार धारा २१ के अधीन प्रार्थना-पत्र के नोटिस दिये जाएंगे।

६) विवाहों के रजिस्ट्रार द्वारा सम्पूर्ण सिविल मैरेज की क्रिया तथा किन्हीं भी अन्य कर्तव्यों के लिये अदा करने योग्य फीस शुल्क)

(७) हिन्दू शास्त्रीय विवाहों के रजिस्टर से और हिन्दू सिविल मैरेज सर्टिफिकेट बुक से दी जाने योग्य प्रमाणित प्रतियों (नकल) के लिये, तथा उनके निरीक्षण के लिये अदा करने योग्य फीस ।

(८) ऐसा फार्म कि जिसमें, और ऐसा समय कि जिनके अन्दर-अन्दर हिन्दू शास्त्रीय विवाहों के रजिस्टर, तथा हिन्दू सिविल मैरेज सर्टिफिकेट बुक, में दर्ज सूचियों की प्रतियां, जन्म, मृत्यु और विवाहों के रजिस्ट्रार जनरल को भेजी जायेंगी ।

(९) दत्तकों की रजिस्ट्री के लिये किये जाने वाले प्रार्थना-पत्रों में दर्ज करने योग्य मामले;

(१०) दत्तकों की रजिस्ट्री के लिये अदा करने योग्य फीस;

(११) फार्म जिस में कि दत्तकों का रजिस्टर रखा जायेगा, और

(१२) तरीका जिस के कि अनुसार दत्तकों के रजिस्टर में दर्ज की गई सूचियों की प्रतियों के बारे में प्रमाण-पत्र दिया जायेगा ।

१३९. संशोधनों और खण्डनों के विषय में—

प्रथम परिशिष्ट के तृतीय विभाग में उल्लिखित कानूनों का उस हद तक संशोधन किया जायेगा जो उसके चतुर्थ विभाग में निश्चित की गई है, और द्वितीय परिशिष्ट के तृतीय विभाग में वर्णित कानून उस हद तक खण्डित करार दिये जायेंगे जोकि उसके चतुर्थ विभाग में निश्चित की गई है ।

पहला परिशिष्ट

(देखो धारा १३६)

संशोधन

वर्ष	नम्बर	संक्षिप्त नाम	संशोधन
१	२	३	४
१८७२	३	स्पेशल मैरेज ऐक्ट सन् १८७२ ई०	१. भूमिका में शब्द : "और उन व्यक्तियों के लिए जो हिन्दू, बौद्ध, सिख या जैन धर्म के अनुयायी हैं" निकाल दिए जाएंगे। २. धारा २ में शब्द : "या व्यक्तियों के बीच जिनमें से प्रत्येक व्यक्ति निम्न दर्शित किसी एक धर्म का अर्थात् हिन्दू, बौद्ध, सिख या जैन धर्म का अनुयायी है" निकाल दिये जाएंगे। (३) धारायें २३ तथा २४, सिवा कि उस हालत में जब कि वह गवर्नरों के प्रान्तों में जमींदारी से सम्बन्ध रखने वाले उत्तराधिकार पर प्रभाव डालती हों, तथा धारायें २५ और २६ सम्पूर्णतया, खण्डित कराए दी जाएंगी।

दूसरा परिशिष्ट

(देखो धारा १३६)

खण्डन

वर्ष	नम्बर	संक्षिप्त नाम	खण्डन की सीमा
१	२	३	४
१८६६	२१	दी नेटिव कन्वर्टस् मैरेज् डिसोल्यूशन ऐक्ट, सन् १८६६ ई०	समस्त, जहां तक कि उसका प्रभाव, हिंदुओं की निस्बत इस कोड के विधानों के प्रतिकूल है।
१९२८	१२	दी हिन्दू इन्हेरीटेन्स (रिमूवल आफ डिसएबिलिटीज़) ऐक्ट, सन् १९२८ ई० ।	समस्त, सिवा कि उस हालत में जब कि वह गवर्नर के प्रांतों में जमींदारी सम्बंधी उत्तराधिकार पर लागू होता है।
१९२९	२	दी हिन्दू लॉ ऑव इन्हेरीटेन्स (एमेन्डमेन्ट) ऐक्ट, सन् १९२९ ई०	पूर्वोक्त प्रकार
१९३७	१८	दी हिन्दू विमेन्स राइटस् टु प्रोपर्टी ऐक्ट, सन् १९३७ ई०।	समस्त
१९४६	१९	दी हिंदू मैरेड वूमेन्स राइट टु सेपेरेट रेजीडेन्स एण्ड मेंटेनैन्स ऐक्ट, सन् १९४६ ई०।	पूर्वोक्त प्रकार
१९४६	२८	दी हिंदू मैरेज डिसएबिलिटीज़ रिमूवल ऐक्ट, सन् १९४६ ई०।	पूर्वोक्त प्रकार

तीसरा परिशिष्ट

(देखो धारा १२)

विवाह का नोटिस

बनाम...रजिस्ट्रार, हिंदू विवाहों के बमूजिब भाग २, हिंदू कोड, वास्ते जिला...................

हम इसके जरिये आपको यह नोटिस देते हैं कि हिंदू कोड के भाग २ के अधीन एक सिविल मैरेज, आज की तारीख से तीन अंग्रेजी महीने के भीतर हमारे बीच सम्पूर्ण होने वाला है।

नाम	अवस्था	स्थिति और पेशा	आयु	निवास स्थान	निवास अवधि
अ. इ.	अविवाहित / रण्डुवा	जमींदार	...	...	...
उ. ऋ.	अविवाहिता / विधवा	...	...	...	...

गवाह बः कलम खुद...............आज.......................................दिन

...........................मास................................सन् १९.......ई०

(हस्ताक्षर)

चौथा परिशिष्ट

(देखो धारा १७)

वर द्वारा किया जानेवाला एकरारनामा

मैं, अ, इ, निम्नांकितों का एकरार करता हूं :—

१. इस समय अविवाहित (या रण्डवा जैसी कि सूरत होगी) हूं

२. मैं हिन्दू (अथवा बौद्ध, सिख एवं जैन, जैसी की सूरत हो) अनुयायी हूं।

३. मैंने...वर्ष की आयु पूरी कर ली है।

४. मेरा उ. ऋ वधू) से ऐसी किसी कोटि का सम्बन्ध नहीं है जिस के बारे में हिन्दू कोड के भाग २ द्वारा प्रतिषेध किया गया है।

(और जब वर पूरे २१ वर्ष का नहीं हुआ हो :

५. मेरे पिता (या वली, जैसी सूरत हो) ए. ऐ. ने मुझे उ. ऋ. विवाह करने की अनुमति दे दी है और फिर उसे रद्द नहीं किया है)

६. मैं इसे जानता हूँ कि इस एकरारनामे में सम्मिलित कोई निवेदन यदि झूठा होगा और उक्त निवेदन करते हुए यदि मुझे इस बात का पता चल गया होगा या विश्वास हो गया होगा कि वह झूठा था अथवा यदि मुझे ऐसा विश्वास न हुआ होगा कि यह सत्य निवेदन है, तो मुझे जेल और जुर्माने दोनों की सजा हो सकती है।

(हस्ताक्षर) अ. इ. (वर)

वधू द्वारा किया जानेवाला एकरारनामा मैं, उ, ऋ, निम्नांकितों का एकरार करती हूं :—

(१) मैं इस समय अविवाहिता (या विधवा, जैसी की सूरत होगी) हूं

२. मैं हिन्दू (या बौद्ध, सिख अथवा जैन, जैसी कि सूरत हो) धर्म की अनुयायिनी हूं।

३. मैं ने......वर्ष की आयु पूरी कर ली है।

४. मेरा अ. इ. (वर) से कोई ऐसी कोटि का सम्बन्ध नहीं है, जिस के बारे में हिन्दू कोड के भाग २ द्वारा निषेध किया गया है।

(और जब कि वधू पूरे २१ वर्ष की हो चुकी हो जब तक कि वह विधवा न हो।

५. मेरे पिता (या वली, जैसी सूरत हो ओ. औ ने मुझे अ. इ. से विवाह करने की अनुमति दे दी है और फिर उसे रद नहीं किया है)

६. मैं इस बात को जानती हूँ कि इस एकरारनामे में सम्मिलित कोई [illegible] यदि झूठा होगा तथा उक्त निवेदन करते हुए यदि मुझे इस बात [illegible] गया होगा या विश्वास हो गया होगा कि वह झूठा था अथवा यदि मुझे ऐसा विश्वास न हुआ होगा कि यह सत्य निवेदन है, तो मुझे जेल और जुर्माने दोनों की सज़ा हो सकती है।

(हस्ता०, उ. ऋ. (वधू)

उपर्युक्त अ. इ. और उ. ऋ. द्वारा हमारे सामने दस्तख़त किये गये हैं। यहां तक कि हमें पता है उक्त विवाह के सम्पूर्ण होने में कोई भी कानूनी प्रतिबन्ध नहीं।

अं. अः.
क. ख. } (तीन गवाह)
ग. घ.

(और जब वर या वधू ने २१ वर्ष की आयु पूरी न की हो, सिवा किसी विधवा की हालत में।

मेरे सामने और मेरी अनुमति से उपर्युक्त अ. इ. और उ. ऋ. ए. ऐ. (ओ. औ.) पिता (या वली)—अ. इ. (या उ. ऋ. जैसी कि सूरत हो)।

(प्रति-हस्ताक्षर) च. छ.

हिन्दू कोड के भाग २ के अधीन

हिन्दू विवाहों के रजिस्ट्रार, जिला......

तारीख......मास......सन् १९......ई०।

पांचवा परिशिष्ट

(देखो धारा १६)

सिविल मैरेज के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार का सर्टिफिकेट

मैं च. छ. इस विषय का सर्टिफिकेट देता हूं कि तारीख......मास...... सन् १६......ई० को अ. इ. और उ. ऋ. मेरे सन्मुख उपस्थित हुए और उन में से प्रत्येक ने मेरी उपस्थिति में तथा तीन विश्वसनीय गवाहों की उपस्थिति में, जिन्होंने कि नीचे अपने अपने हस्ताक्षर अंकित कर दिये हैं, हिन्दू कोड के भाग २ द्वारा आवश्यक विचारे गए एकरार किये हैं और मेरी मौजूदगी में उन दोनों के बीच उक्त भाग के अधीन विवाह सम्पूर्ण कर दिया गया है।

(हस्ताक्षर) च. छ.

हिन्दू कोड के भाग २ के आधीन हिन्दू विवाहों के रजिस्ट्रार, जिला......

(हस्ताक्षर) अ. इ.

उ. ऋ

अं. अः.
क. ख.
ग. घ. } (तीन गवाह)

तारीख.........मास.........सन् १६......ई०।

छटा परिशिष्ट

(देखो धारा २१)

शास्त्रीय विवाह के सम्बन्ध में रजिस्ट्रार का सर्टिफिकेट

मैं च. छ. इस बात का सर्टिफिकेट देता हूं कि अ. इ. और उ. ऋ. मेरे सन्मुख उपस्थित हुए और उन में से प्रत्येक ने मेरी उपस्थिति में तथा तीन विश्वसनीय गवाहों की उपस्थिति में जिन्होंने नीचे अपने अपने हस्ताक्षर अंकित कर दिये हैं, यह एकरार किया है कि उन दोनों के बीच तारीख...... मास......सन् १९...ई० को शास्त्रीय विवाह हो गया है, और इन लोगों ने अपनी इस बात की इच्छा प्रकट की कि उनके विवाह की रजिस्ट्री कर दी जाय और इन लोगों की इच्छा के अनुसार उपर्युक्त विवाह की रजिस्ट्री हिन्दू कोड के भाग २ की धारा २१ के अधीन आज हो गई है और तारीख...... मास......सन् १९...ई० से, जो कि वह तारीख है कि जिस पर उपर्युक्त धारा २१ के अधीन उनका विवाह रजिस्टर करने के लिये प्रार्थना-पत्र दिया गया था, यह रजिस्ट्री प्रभावकारी हो जायेगी।

हिन्दू रस्मोरिवाज के मुताबिक उपर्युक्त प्रकार उनका विवाह सम्पूर्ण होने के बाद, उनके यहां जो निम्न दर्शित सन्तति का जन्म हुआ है, वह औरस (जायज़) सन्तति विचारी जायगी और सर्वदा जायज़ ही स्वीकार की जाएगी।

यहां पर बच्चों के नाम उनके जन्म तिथि के क्रमानुसार दर्ज किये जायेंगे तथा प्रत्येक बालक के नाम के सामने उसकी जन्म-तिथि दर्ज की जाएगी।

(हस्ताक्षर) च. छ.

हिन्दू कोड के भाग २ के अधीन हिन्दू विवाहों के रजिस्ट्रार, जिला......

(हस्ताक्षर) अ. इ.
उ. ऋ.
अं. अः.
क. ख. (तीन गवाह)
ग. घ.

सातवां परिशिष्ट

क्रमवार उत्तराधिकारी

वर्ग १.

(देखो धारा ६८)

पुत्र, विधवा, पुत्री, पहले से मर चुके पुत्र का पुत्र, पहिले से मरे हुए पुत्र की विधवा, मृत पुत्र के पहले से मरे हुए पुत्र का पुत्र, मृत पुत्र के पहले से मरे हुए पुत्र के पुत्र की विधवा।

वर्ग २

(देखो धारा ६८)

१. पिता, माता

२. (१) पुत्र की बेटी, (२) पुत्री का बेटा, (३) पुत्री की पुत्री।

३. (१) पुत्र की बेटी का बेटा (२) पुत्र के पुत्र की बेटी, (३) पुत्र की बेटी की बेटी. (४) बेटी के पुत्र का पुत्र, (५) पुत्री के बेटे की बेटी, (६) पुत्री की पुत्री का बेटा, (७) पुत्री की पुत्री की बेटी।

४. भाई बहिन।

५. (१) भाई का बेटा, (२) बहिन का बेटा, (३) भाई की बेटी, और (४) बहिन की बेटी।

६. पिता का बाप, बाप की माता।

७. पिता की विधवा, भाई की विधवा।

८. पिता का भाई, बाप की बहिन।

९. मां का बाप, मां की मां।

१०. मां का भाई, मां की बहिन।

व्याख्या—इस परिशिष्ट में प्रयुक्त 'भाई' अथवा 'बहिन' में केवल सहोदर भाई या बहिन का ही समावेश नहीं होगा।